

भक्तिग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

* नमः शिवाय *

शिव भक्त माल

(शिवभक्त-चरितमाला)

(पूर्वार्द्ध)

संगृहीता एवं प्रकाशक

गौरीशंकर गनेड़ीवाला

गोरखपुर

सम्पादक

अम्बिकादत्त उपाध्याय एम. ए., शास्त्री,

अस्सी, काशी

मुद्रक

जयकृष्णदास गुप्त

विद्याविलासप्रेस, गोपालमन्दिर लेन

बनारस सिटी

बिना जिल्द ॥।=) (सं० १९८७) मूल्य सजिल्द १)

समर्पण

पूज्य पिताजी !

आपके जीवन काल में मैं आपकी कुछ भी सेवा न कर सका इसका मुझे परम सन्ताप है । मैं बहुत दिनों से उसी अपराध के परिमार्जन के लिए सोच रहा था कि कौन सी सेवा आपको अधिक प्रसन्न कर सकेगी । इस दास को आपकी वह शिवभक्ति अभी तक यथावत् स्मरण है । जब मैं बालक था तब आपकी उस पार्थिव पूजा को बड़े ध्यान से देखा करता था । आपका भगवान् शिवजी में बड़ा प्रेम था । इसी लिए अन्त में यही निश्चय हुआ कि आप ऐसे शिवभक्त को शिव भक्त माल समर्पण करना सब से अधिक प्रिय कर होगा । हे वत्सवत्सल ! मैं यह भक्तमाल आपको समर्पण कर रहा हूँ । आशा है कि आप इसे स्वीकार कर अनुगृहीत करेंगे ।

दासानुदास

गौरीशंकर

शिव भक्त माल

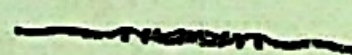
पूर्वार्द्ध

अनुक्रमणिका

भक्त	पृष्ठ	भक्त	पृष्ठ
१ भगवान् विष्णुदेवजी	१	२३ कर्कोटक नाग	३३
२ देवसमूह	३	२४ देवर्षि नारदजी	३४
३ चन्द्रदेव	४	२५ भगवान् परशुरामजी	३६
४ सतीजी	६	२६ महर्षि मृकण्ड	३८
५ ब्रह्मदेव	७	२७ ,, च्यवन	४१
६ यमराज	८	२८ ,, कपिल	४३
७ वरुणदेव	१०	२९ ,, उपमन्यु	४४
८ कुबेर	११	३० ,, श्वेत	४७
९ अग्निदेव	१३	३१ ,, पराशरजी	४९
१० नर-नारायण	१४	३२ ,, दधीच	५२
११ देवराज इन्द्र	१५	३३ ,, लोमशजी	५६
१२ शुक्राचार्य	१७	३४ ,, कालभीति	५८
१३ देवगुरु बृहस्पति	१८	३५ ,, शिलाद	६४
१४ बुध	१९	३६ ,, अश्वत्थामा	६८
१५ प्रभादेवी	२०	३७ ,, मंकि	७३
१६ स्वामिकार्तिक	२२	३८ ,, गौतम और अहल्या	७५
१७ रति	२३	३९ ,, अगस्त्यसोदर	७९
१८ पुष्पदन्ताचार्य	२५	४० ,, सुचरित	८२
१९ पितृगण	२६	४१ ,, दुर्वासा	८५
२० गरुड़	२८	४२ ,, वत्स	८९
२१ हनूमान्‌जी	३०	४३ ,, वसिष्ठ	९९
२२ गणनायक ढुण्ढ	३१	४४ ,, अत्रि और अनुसूया	१०४

भक्त	पृष्ठ
४५ महर्षि मार्कण्डेय	१०९
४६ ,, भृगु	११०
४७ मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम	११४
४८ शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी	१२१
४९ श्रीबलरामजी	१२६
५० लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी	१२९
५१ वीरशिरोमणि अर्जुन	१३१
५२ राजर्षि ध्रुवजी	१३७
५३ सत्यव्रती राजर्षि हरिश्चन्द्र	१३९
५४ महाराज भगीरथ	१४२
५५ राजा वेन और वैन्य	१४४
५६ ,, शतशृङ्ग की कन्या	१४८
५७ ,, ययाति	१५०
५८ ,, कुवलयाश्व	१५१
५९ राजसिंह श्वेत	१५३
६० महाराज भरत	१५७
६१ महाराज वसुसेन और सत्यसेन	१५९

❁ ❁ ❁



वक्तव्य

बीस वर्ष पहिले पूज्यपाद पण्डितप्रवर श्रीरामलालजी शास्त्री ने एक ऐसी पुस्तक के प्रकाशित कराने का उत्साह दिलाया जिसमें प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के मुख्य मुख्य शिव भक्तों की कथाएँ संगृहीत हों। और उसका नाम शिव भक्त माल रक्खा जाय। उक्त पण्डितजी स्वयं बड़े ही शिव भक्त हैं और सदा सत्कार्य में ही अपने जीवन का अधिक भाग व्यतीत करते हैं। आपने गोंड़ा में विद्वत् परिषत् साङ्गवेद विद्यालय, ऋषि कुल, संस्थापित किया है। इस में लग भग बीस सालों से आदर्श शिक्षा दी जा रही है और यहाँ शिक्षा पाए हुए विद्वान् इस समय संसार में विख्यात हो रहे हैं।

ऐसे महापुरुष का दिलाया हुआ उत्साह कभी व्यर्थ नहीं हो सकता था। वह उत्साह धीरे धीरे पुष्ट होता गया और उस उत्साह को पूज्यचरणसरोरुह परमहंस-परिव्राजकाचार्य श्री १०८ घनश्यामानन्द तीर्थ महाराजजी की आज्ञा ने सजीव एवं सफल कर दिया। उक्त महाराजजी का जीवन आदि से अन्त तक आदर्श जीवन रहा। चारों आश्रमों के नियमों का आपने अक्षरशः पालन किया है। इस समय आप संन्यास आश्रम में हैं और अपने आचारों और उपदेशों से संसार-सागर में डूबते हुए जीवों का उद्धार कर रहे हैं। आप की स्तुति में बनाया गया यह श्लोक आप की आधुनिक स्थिति का परिचय देता है:—

नित्यं ब्रह्मविचारणाप्रवणधीः संत्यक्त-सांसारिक-
व्यापारोखिलशास्त्रपाठनपरः प्रज्ञावतामग्रणीः ।
यस्याखण्डतपःप्रभावविगतक्रोधादिवैरिव्रजः
सौधोप्याश्रमवद्विभाति स घनश्यामो यती राजते ॥

आप की आज्ञा पाकर मैंने भिन्न भिन्न पुराणों से शिवभक्तों की कथाएँ एकत्रित कीं और काशीनिवासी कविविभूषण, कविरत्न, पं० अम्बिकादत्त उपाध्यायजी एम्० ए०, सांख्ययोगशास्त्री, काव्यतीर्थ, से प्रार्थना की कि वे इन सब कथाओं को अपने संशोधन द्वारा सुन्दर एवं मनोहर रूप देकर इस शिव भक्त माल नामक ग्रन्थ का सम्पादन करें। आपने बड़े परिश्रम और श्रद्धा से उक्त कार्य किया।

इस शिव भक्त माल का पूर्वार्ध आपके सामने उपस्थित है । इस में शिवजी की आराधना करके ऐहलौकिक एवं पारलौकिक उत्तम फलों को पाकर कृतकृत्य होने वाले देवता, नाग, देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षियों की मनोहर कथाओं का संग्रह किया गया है। बीच बीच में नीति और उपदेश के विषय भी रक्खे गए हैं जिनसे मनुष्यमात्र को लाभ हो सकता है। कहीं कहीं ललित और शुभ फल देने वाले ऐसे स्तोत्र भी दे दिए गए हैं जिनके पाठ करने से अनन्त फल मिलता है।

आशा है कि यह ग्रन्थ शिवभक्तों को प्रिय एवं हितकर होगा । आप लोग यदि इसका भक्तिपूर्वक पाठ करेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

गोरखपुर
गुरुपूर्णिमा सं० १९८७

निवेदक—
गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला



* श्रीः *

शिव भक्त माल

दुर्वास-कौशिक-विरञ्चि-मृकण्डुपुत्रान्
देवेन्द्र-बाण-हरि-शक्ति-दधीचि-रामान् ॥
कण्वादि-भार्गव-बृहस्पति-गौतमादी-
नेतानहम्परमपाशुपतान्नमामि ॥

परमात्मा और जीवात्मा दोनों सच्चिदानन्दमय हैं। दोनों में सत्, चित् और आनन्द विद्यमान हैं, भेद केवल इतना ही है कि परमात्मा के सत् आदि निर्मल, अपरिच्छिन्न और अनियन्त्रित हैं और जीवात्मा के मलिन परिच्छिन्न एवम् नियन्त्रित हैं इसी कारण जीवात्माको परमात्मा का अंश मानते हैं। अंश जब अंशी में मिल जाता है तो उसकी पूर्णता समझी जाती है इसी कारण जब जीवात्मा परमात्मा में मिल जाता है तब वह पूर्ण हो जाता है अर्थात् वह परमात्मा ही हो जाता है इसी को दूसरे शब्दों में मोक्ष कहते हैं। अतः परमात्मा की प्राप्ति ही जीवात्मा का एक मात्र प्रधान लक्ष्य है। शास्त्रकारों ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए अनेकों साधन बताए हैं पर उनमें से तीन साधन सर्वोत्तम हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म शब्दकी उत्पत्ति "कृ" धातु से है उसका अर्थ करना, व्यापार आदि होता है। किसी भी धर्मको लीजिए सब में अभीष्ट-सिद्धि के लिये कुछ न कुछ काम करने को कहा है, बिना काम किए कुछ भी नहीं होता। बुरे काम करने से बुरा फल अच्छा काम करने से अच्छा फल यहाँ तक कि परमात्मा की प्राप्ति भी हो सकती है। मीमांसा शास्त्र में कर्म ही को प्रधान माना है। ये कर्म कई प्रकार के हैं श्रौत स्मार्त आदि। यज्ञ, याग आदि वैदिक कर्म श्रौत कर्म कहे जाते हैं। मनुस्मृति आदि में वर्णित वर्णाश्रम भेदानुसार अन्य आवश्यक कर्म स्मार्त कर्म कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त व्रत उपवास आदि ये धार्मिक कर्म कहे जाते हैं।

इन सब कर्मों से दुःखका नाश और सुखकी प्राप्ति होती है परन्तु ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दुःखोच्छेद नहीं होता और इससे बहुत जन्मों में सिद्धि प्राप्ति होती है। अतः कर्म को विद्वानों ने उत्तम साधन नहीं समझा। दूसरा साधन ज्ञान है इसकी

उत्पत्ति "ज्ञा" धातु से है जिसका अर्थ जानना है। उस परमात्मा के असली रूपको जान लेना ही ज्ञान है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि "तत्त्वमसि" अर्थात् वह परब्रह्म तुम्हीं हो तुम्हारे अतिरिक्त कोई दूसरा परमात्मा नहीं। अपने रूपको जान लेना ही परमात्मा की प्राप्ति है। इस ज्ञान से सब कर्म उसी प्रकार जल जाते हैं जिस प्रकार अग्नि से लकड़ी और उनसे फलों की उत्पत्ति नहीं होती। ज्ञानी पुरुषों को कर्मों का लेप नहीं होता। जिस तरह कमल पत्र जल में रहते हुए भी जल से अलिप्त रहता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष कर्म करते हुए भी कर्मों से लिप्त नहीं होता। और इस कारण वह प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त कर परमात्मा में लीन हो जाता है। इसी का नाम मुक्ति है।

परन्तु यह साधन आसान नहीं। इसको प्राप्त करना परम कठिन है। बड़े बड़े योगी इस के पीछे पड़े रहते हैं पर इस की प्राप्ति नहीं होती। जिसे शीत उष्ण का भेद प्रतीत न हो मान और अपमान को जो बराबर समझे जिसने सब इन्द्रियाँ वश में कर ली हों और जो पत्थर और सुवर्ण को बराबर समझता हो जिसे संसारिक वासनाएँ न सताती हों ऐसे परमहंस को ज्ञान प्राप्त होता है।

इस ज्ञानकी प्राप्ति के लिये अनेक जन्मों के संस्कार की आवश्यकता है। इसी कारण विद्वज्जन इसे दुरधिगम कहते हैं और है भी सचमुच में ऐसा ही।

इसी के लिये दूरदर्शियोंने भक्ति को सब से उत्तम और सरल साधन बताया है भक्ति शब्द "भज" धातु से ति प्रत्यय करनेपर बनता है "भज" का अर्थ है सेवा और ति का अर्थ है भाव अर्थात् प्रेम इसके साथ ही साथ सब शब्दोंमें निरन्तर रूपसे रहने वाला ज्ञान भी उस में सम्मिलित है ही। इस प्रकार इस शब्द में तीनों अर्थ भरे हैं अत एव सेवा-सम्बन्धी आत्म-सम्बन्धी और ब्रह्म-सम्बन्धी ज्ञान सहित प्रेम होने के लिये जो विविध प्रकार की सेवा या कृति है उसे भक्ति कहते हैं। यद्यपि भक्ति से प्रेरित होकर की जाने वाली कृतियाँ क्रिया ही हैं तथापि उस में प्रेम फल का उद्देश्य मुख्य रहता है। इस लिये वे क्रिया के नाम से व्यवहृत न होकर भक्ति के नाम से व्यवहृत होती हैं इस भक्ति के प्रधानतः नौ भेद बतलाए गए हैं श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य और आत्म-निवेदन।

(१) श्रवण:— ईश्वर की लीला, कथा, महत्ता, शक्ति आदि को परम श्रद्धा समेत अतृप्त मनसे निरन्तर सुनना।

(२) कीर्तन:— ईश्वर के गुण, चरित, नाम, पराक्रम आदि का आनन्दपूर्वक बड़े उत्साह के साथ कीर्तन करना।

(३) स्मरण:— निरन्तर अनन्य भाव से परमेश्वर का स्मरण करना उन के माहात्म्य और शक्ति का स्मरण कर उस पर मुग्ध होना।

(४) पाद सेवन:— ईश्वर के चरणों का आश्रय लेना और उन्हीं को अपना आधार समझना।

(५) पूजन:— मनसा वाचा कर्मणा पवित्र सामग्री से भगवान् के चरणों का पूजन करना।

(६) वन्दना:—भगवान् की मूर्त्ति को अथवा भगवान् के अंश से व्याप्त भक्त-जन, आचार्य, ब्राह्मण, गुरुजन, माता, पिता आदि को परम आदर सत्कार के साथ पवित्र भाव से नमस्कार करना और उनकी सेवा करना।

(७) दास्य:—ईश्वर को स्वामी और अपने को दास समझ कर परम श्रद्धा के साथ सेवा करना।

(८) सख्य:—ईश्वर को ही अपना परम सखा समझ अपना सर्वस्व उसे समर्पण कर देना और सच्चे भावसे अपने पाप पुण्य का निवेदन करना।

(९) आत्मनिवेदन—अपने आप को भगवच्चरण में सर्वथा सर्वदा के लिये समर्पण कर देना और अपनी कुछ भी स्वतन्त्र सत्ता न रखना यह उच्चतम अवस्था है। अथवा यों कहना चाहिये कि यह भक्ति की अन्तिम सीढ़ी है इसपर आरूढ़ होते ही भगवत्प्राप्ति का द्वार खुला हुआ निर्बाध मिलता है।

भक्ति के इन नौ प्रकारों में से पहिले तीन श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण ईश्वर के नाम से सम्बद्ध हैं। अर्चन, वन्दन और पादसेवन ईश्वर के रूपसे समवेत हैं। और दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन भगवान् के भावसे सम्बद्ध हैं। ये सब ईश्वर के नाम, रूप और भाव से ही सम्बद्ध हैं। इन मार्गों पर आरूढ भक्त के लिए भगवान् प्रत्यक्ष हैं। प्रत्येक भक्त इन सभी मार्गों का पथिक रहता है पर भिन्न भिन्न भक्तों में भिन्न भिन्न अंगों की अधिकता पाई जाती है। कोई किसी अंग की ओर अधिक प्रवृत्त होता है और कोई किसी की ओर। यह प्रवृत्ति ऐच्छिक नहीं होती किन्तु स्वाभाविक होती है।

इस नवधा भक्तिसे मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है। भगवान् कृष्णने कहा है कि माया के बन्धन से मुक्ति पाने के लिये तो भक्ति ही एक मात्र उपाय है। भक्ति परम शान्ति और परमानन्द स्वरूपा है इस के साधन ही में शान्ति और आनन्द मिलते हैं। सत्य-सुखकी प्राप्ति के लिये संसार में इससे उत्तम कोई साधन ही नहीं। ईश्वर का इस में आश्रय रहता है और ईश्वरको इसकी चिन्ता रहती है अतः किसी प्रकार पतन का भय भी नहीं रहता। अतएव भक्ति को सब साधनो में उत्तम स्थान

दिया गया है भक्त लोग थोड़े में ही बाजी मार लेते हैं परन्तु इस के लिए सच्चा भक्त होना चाहिये। सच्चा भक्त वह है जो ईश्वरमें सच्चे हृदय से मन लगा कर इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करता हुआ भी सम्पूर्ण चराचर जगत् को ईश्वर की माया समझता हुआ किसी भी वस्तु में राग-द्वेष न रक्खे और ईश्वर-भजन में लीन होकर तृष्णा कामना आदि के वशीभूत न होवे।

सच्चा भक्त ईश्वर में मन लगा कर इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करता हुआ भी सम्पूर्ण चराचर जगत् को उसी सर्व शक्तिमान् की माया समझता है और किसी से राग-द्वेष नहीं रखता। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वश में वह नहीं होता। उसे केवल ईश्वर का भरोसा रहता है। जन्म-कर्म, वर्ण-आश्रम आदिकी उच्चताका उसे लेशमात्र अहंकार नहीं होता। सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों को वह समान दृष्टि से देखता है। त्रैलोक्य के राज्य मिलने पर भी वह भगवच्चरणका परित्याग एक क्षण के लिए भी नहीं करना चाहता। ऐसे भक्त को बिना प्रयास ही भगवत् प्राप्ति हो जाती है।

कर्म तथा ज्ञान के लिए तो बड़े बड़े नियम और बन्धन हैं पर भक्ति का द्वार सब के लिए खुला है। उसमें किसी के लिए रुकावट नहीं। पापात्मा हो चाहे पुण्यात्मा, नर हो चाहे नारी, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, बालक हो अथवा वृद्ध सभी भक्ति का आलम्बन कर परम पदको पा सकते हैं। परम दुराचारी भी भगवान् के शरण में पहुँचकर भगवत् स्वरूप ही हो जाता है।

भगवान् कृष्ण का कथन है कि—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौंतेय ! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

हृदय के मल को दूर करने के लिए सब से सरल उपाय भगवद्भक्तों की श्रद्धा पूर्वक चर्चा करना है। उन के चरित्र चिन्तन से मानसिक दुर्विकार दूर हो जाते हैं और भगवान् आशुतोष में मनोवृत्ति की एकाकारता होजाती है। पतञ्जलि भगवान् ने योगदर्शन में कहा है कि "वीतराग-विषयं वा चित्तम्" अर्थात् शुकदेव, दत्तात्रेय सनक आदि परम भागवत विरक्त योगिराजों का चिन्तन करने से चित्त की एकाग्रता होती है। ऐसे भक्त साक्षात् ईश्वर रूप हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने तो यहां तक कह डाला कि "राम ते अधिक राम कर दासा" अतः भक्तों की भक्ति से भी परम उपकार होता है।

इसी भक्ति का आश्रय लेकर असंख्य देवता, मुनि, दैत्य, दानव, मनुष्य तथा अन्य अधम जीव इस असार संसार-सागर को तर गए। उन्होंने इसीको सब से सीधा साधन समझा और ज्ञान आदि के झगड़े में नहीं पड़े। अपनी अपनी इच्छानुसार शिव विष्णु आदि भिन्न भिन्न देवों की उपासना कर लोगों ने अभीष्ट फल प्राप्त किए। परन्तु देवदेव महादेव परम कल्याणकारक एवं अत्यन्त आशुतोष हैं। शिव की उपासना सबमें श्रेष्ठ इसी लिए मानी गई कि वे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं और अभीष्ट फल देते हैं इसी कारण विष्णु आदि सर्व पूज्य देवों ने भी आपकी आराधना की है और बहुत शीघ्र अभीष्ट फल प्राप्त किए हैं। कुछ परम शैवों की कथाएँ इस ग्रन्थ में संगृहीत हैं जिनके पाठ मात्र से परम कल्याण और भगवच्चरणों में प्रेम होता है।





श्रीः

शिव भक्त माल

पूर्वार्द्ध

परमशैव भगवान् विष्णुदेव

समय के परिवर्तन से कभी तो देवता बलवान् हो जाते हैं और कभी दानव। एक बार दानवों की शक्ति बहुत अधिक होगई और वे देवों को बहुत अधिक कष्ट पहुंचाने लगे। देवता बहुत संत्रस्त और संतप्त हुए इस लिए अपने दुःखों की निवृत्ति के लिए भगवान् विष्णु के समीप गए और उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति से प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् ने उन लोगों के आने का कारण पूछा। तब देवों ने हाथ जोड़ कर विनती की कि हे महाराज! हम लोगोंको दानव लोग अपरिमित कष्ट पहुंचा रहे हैं और हम लोगों का एक स्थान पर रहना भी कठिन प्रतीत हो रहा है। अतः हे महाराज! आप इसका कुछ उपाय बताइये, आप के अतिरिक्त अन्य कोई हमें शरण देने वाला नहीं। देवों का ऐसा हृदयविदारक करुण क्रन्दन सुन कर विष्णु भगवान् ने उन से कहा कि मैं परम कारुणिक श्रीमहादेवजी की आराधना कर इस कार्य को करूंगा। उनके ऐसे वचन सुन सब देवता अपने अपने धाम को चले गए। इधर श्री विष्णुदेव क्षीरसागर का सुखद शयन छोड़ कैलास पर्वत के समीप पहुंचे और वहां अग्निका कुण्ड बनाकर और हरीश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग का संस्थापन कर देवदेव भगवान् महादेव की आराधना मानसरोवर समुत्पन्न कमलों से विधिपूर्वक करने लगे। इनका नियम था कि श्रीशिवसहस्रनाम का पाठ करते जाते और एक नाम पर एक एक कमल शिवजी को चढ़ाते जाते थे। इस प्रकार प्रतिदिन एक सहस्र कमलों से महादेव की पूजा करते थे। ऐसी आराधना करते बहुत समय व्यतीत होगया तब एक दिन महादेव जी ने भक्ति की परीक्षा करने के लिए उन हजार पुष्पों में से एक पुष्प अपनी लीला से कम कर दिया। सहस्र-नाम समाप्त करते करते जब अन्तिम नाम आया तो एक कमल कम देख विष्णु बड़े चिन्तित हुए और कहीं से कमल का आगम न देख झट अपना नेत्र-रूपी कमल चरणों में भक्तिपूर्वक समर्पण कर दिया। पुष्पदन्ताचार्य ने शिवमहिम्न स्तोत्र में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

हरिस्ते साहस्रं कमलवलिमाधायपदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् । म० स्तो० १९

इस अटल भक्ति को देख आशुतोष भगवान् परम प्रसन्न हुए और उसी समय प्रकट होकर प्रसन्न वदन से बोले कि हे विष्णु ! मैं आपकी भक्ति और प्रेम से परम सन्तुष्ट हूं आप मनोवाञ्छित वर मांगिए आपके लिए कुछ भी अदेय नहीं। भगवान का ऐसा वचन सुनकर विष्णुदेव हाथ जोड़कर इस स्तोत्र से स्तुति करने लगे।

एकाक्षराय रुद्राय अकारायात्मरूपिणे ।
उकारायादिदेवाय विद्यादेहाय वै नमः ॥ १ ॥
तृतीयाय मकाराय शिवाय परमात्मने ।
सूर्याग्निसोमवर्णाय यजमानाय व नमः ॥ २ ॥
अग्नये रुद्ररूपाय रुद्राणां पतये नमः ।
शिवाय शिवमन्त्राय सद्योजाताय वेधसे ॥ ३ ॥
वामाय वामदेवाय वरदायामृताय ते ।
अघोरायातिघोराय सद्योजाताय रंहसे ॥ ४ ॥
मोक्षाय मोक्षरूपाय मोक्षकर्त्रे नमो नमः ।
आत्मने ऋषये तुभ्यं स्वामिने विष्णवे नमः ॥५ ॥

लिं० पु० अ० ८

अन्त में उन्होंने कहा कि हे महाराज इस समय दैत्य बहुत प्रबल हो गए हैं और इतना उपद्रव कर रहे हैं कि देवताओं का रहना कठिन हो रहा है सम्पूर्ण त्रैलोक्य इस समय उन से पीड़ित है । विष्णुके ऐसे करुणाजनक वचन सुन भगवान् शिव जी ने तेजोमय सुदर्शन चक्र दिया और यह कह कर कि इस से सब दैत्यों का विनाश हो जाएगा वे अन्तर्धान होगए ।

विष्णु भगवान् ने उसी चक्र की सहायता से असुरों का विना परिश्रम बहुत शीघ्र विनाश कर डाला और तीनों लोकों में आनन्द की भेरी बजने लगी । उस चक्र को विष्णु भगवान् अभी तक बहुत आदरपूर्वक धारण किए रहते हैं और जब जब शत्रुओं का संहार करना होता है उसे काम में लाते हैं ।

दूसरा रत्न

देवसमूह

एकबार देवों और दानवों ने मिल कर विचार किया कि इस रत्नों के आकर रत्नाकरसे कुछ रत्न निकालने चाहिए और उसमें से निकले अमृतका पान करना चाहिए। इसी विचार से मन्दराचल पर्वत को मथानी बना कर और वासुकि नाग को मन्थन रज्जु बना कर समुद्र का मन्थन प्रारम्भ किया। मथते मथते पहिले तो दो चार अन्य रत्न निकले पर पश्चात् कालकूट विष निकला। इस विष से तीनों लोक जलने लगे और हाहाकार मचगया किसी में शक्ति नहीं कि उसके तेज को सह सके। तब सब ने विचार किया कि आशुतोष भगवान् से इस के लिए प्रार्थना करनी चाहिए वे ही इस आपत्ति में रक्षा कर सकते हैं। ऐसा निश्चय कर सब देव और दानव उनकी शरण गए और परम आर्त होकर स्तुति करने लगे। वे कहने लगे कि हे आदिदेव महादेव जगदात्मन् भूतपालक! हम सब आपकी शरण आए हैं। हम लोगों की रक्षा कीजिए, अभयदान दीजिए। इस समय सचराचर जगत् कालकूट विषकी महाग्नि से जला जा रहा है इसकी रक्षा आपको छोड़ और कोई नहीं कर सकता। यह विश्व आपही का रूप है–अग्नि आप का मुख, भूमि आपके चरण, दिशाएं आपके कान, वरुण आपकी रसना, और आकाश आप की नाभि है। सत्व, रज और तम ये तीनों गुण आप के तीन नेत्र हैं। अपनी गुणमयी शक्ति के द्वारा आप ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ये तीन नाम धारण करते हैं और संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार किया करते हैं। अतः आपही इस महाविष से भस्म होते हुए विश्व की रक्षा कर सकते हैं। हे सर्वशक्तिमन्! इस समय हम लोगों की रक्षा कीजिए।

इस प्रकार करुणोत्पादक स्तुति को सुन कर करुणावरुणालय श्री महादेवजी प्रसन्न होकर सती देवी से कहने लगे कि हे प्रिये! इस महाविष से संसार भस्म हुआ जा रहा है और स्थावर जङ्गम सभी संतप्त एवं पीडित हो रहे हैं। ऐसी आपत्ति के समय में दीनों की रक्षा करना परम कर्तव्य है। इस लिए अब मैं इस कालकूट विष का पान करता हूं।

ऐसा कह उन्होंने उस का पान किया और पान करतेही उस के प्रबल प्रभाव से उनके गले का रँग नीला हो गया और तभी से उनका नाम ही नीलकण्ठ पड़ गया। इस प्रकार परम कारुणिक श्री महादेव ने भक्तों के ऊपर प्रेमकर संसार की

रक्षा की। इसी कथा का सारांश श्री पुष्पदन्त आचार्य ने बड़े सुन्दर शब्दों में कह दिया है:—

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिभुवनविषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाध्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥ म० स्तो०१

तीसरा रत्न

चन्द्रदेव

दक्ष प्रजापति ने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओं का विवाह चन्द्रदेव से कर दिया। चन्द्रमा के समान लोक-विभूषण और लोकानन्दकारी पतिको पाकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और इसी प्रकार उन सत्ताईस देवियों को पाकर चन्द्रदेव भी बहुत सन्तुष्ट हुए। पर उनका सब से अधिक प्रेम रोहिणी पर था इस कारण अन्य देवियों के हृदय में बहुत दुःख हुआ। यह भेददृष्टि सपत्नी होने के कारण उनके लिए असह्य थी। जब उनसे न रहा गया तो वे अपने पिता दक्षके शरण गईं और उन से यथार्थ स्थिति का वर्णन किया। यह वृत्तान्त सुन कर दक्ष चन्द्रमा के समीप गए और कहने लगे कि सब पत्नियों पर बराबर प्रेम रखना यह सब का कर्तव्य है। जो व्यक्ति भेदभाव रखता है वह अदक्षिण समझा जाता है। इस लिए आपका यह धर्म है कि मेरी सब पुत्रियों पर समान प्रेम रक्खें और किसी एक पर अधिक आसक्ति न रक्खें। अब जो हुआ सो हुआ पर भविष्य में ऐसी बात नहीं होनी चाहिए।

ऐसा कह कर दक्ष तो अपने धाम को चले गए पर चन्द्रमा ने यह भेद भाव नहीं छोड़ा और रोहिणी पर उनका और भी अधिक अनुराग हो गया। अपने पिता के उपदेश का उलटा असर देख कर उन देवियों के मनमें और भी अधिक खेद हुआ और वे पुनः अपने पिता के शरण गईं। दक्ष प्रजापति अपनी सरल-हृदया पुत्रियों का यह दुःख देख अत्यन्त व्यथित हुए और फिर चन्द्रमा को समझाने चले। चन्द्रमा के समीप जाकर उन्हों ने बहुत समझाया और इस

भेददृष्टि के अनेक दोष बताए। आपने यहां तक कहा कि जो समान श्रेणीवालों में विषमता का व्यवहार करता है वह नरकगामी होता है अतः विषमता रखना अनर्थकारी है। परन्तु चन्द्रमा की वह अमिट आसक्ति दूर नहीं हुई। अन्त में दक्ष प्रजापति को अपने वचनों की अवहेलना देख कर क्रोध आगया और उन्होंने चन्द्रमा को शाप दे दी कि जा तू क्षयी हो जा। शाप के देते ही चन्द्रमा का क्षय होना प्रारम्भ हो गया। ओषधीश द्विजराज के क्षय को देख देवता ऋषि आदि सभी चर अचर बहुत चिन्तित हुए और सोचने लगे कि अब तो संसार का नाश हुवा।

तब चन्द्रमा की प्रार्थना से इन्द्र आदि देव तथा वशिष्ठ आदि मुनि पितामह ब्रह्मदेव के यहां गए और प्रार्थना करने लगे। पर ब्रह्माजी ने कहा कि जो भावी था सो तो हो गया। उसमें तो अब कुछ परिवर्तन हो नहीं सकता। परन्तु एक उपाय बताता हूं उसके करने से चन्द्रमा की अवश्यमेव रक्षा हो सकती है।

उन्हों ने कहा कि चन्द्रमा को देवताओं समेत प्रभासतीर्थ में जाकर मृत्युञ्जय भगवान् की आराधना करनी चाहिए। वहां शिवलिंग की स्थापना कर उन के सामने घोर तपस्या करने से श्री महादेव प्रसन्न हो जाएँगे और वरदान देकर चन्द्रमा को अक्षय कर देंगे।

इस प्रकार ब्रह्माजी के वचन सुन कर सब देवता लौटकर चन्द्रमा के समीप आए और सब वृत्तान्त सुनाया। यह सुन चन्द्रमा सब देवताओं को साथ लेकर प्रभासतीर्थ में गए और पार्थिव शिवार्चन बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ विधिविहित रीति से करने लगे। मृत्युञ्जय मन्त्रसे पूजा करते और मृत्युञ्जयमंत्र ही का जप करते थे। इस प्रकार चन्द्रमाने छ महीने घोर तप किया और इस बीच दस करोड़ मृत्युञ्जय मन्त्र का जप कर डाला। अन्त में भगवान् देवदेव ने प्रकट होकर चन्द्रमा से कहा कि मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं अभीष्ट वर माँगो। चन्द्रमा ने हाथ जोड़ कर स्तुति की और कहा कि हे महाराज! यदि आपही मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे किस बात की कमी है। मैं क्षयरोग से बहुत पीडित हूं उससे मुझे मुक्त कीजिए।

ऐसी प्रार्थना करने पर शिवजी ने वरदान दिया कि कृष्ण पक्ष में तुम्हारी एक एक कला क्षीण होगी और शुक्ल पक्ष में तुम्हारी एक एक कला बढ़ेगी और पूर्णमासी तक तुम पूर्ण हो जाया करोगे। उसी समय सब देवता और मुनि हर्षोत्फुल्ल होकर पहुंचे और शिवजी की स्तुति करते हुए चन्द्रमा को आशीर्वाद देने लगे।

सब ने शंकर भगवान् से प्रार्थना की कि इसी प्रभासतीर्थ में आप पार्वती समेत

भक्तोंके उद्धार के लिए निवास करें। तब से इस तीर्थ में निराकार प्रभु साकार रूप धारण कर ज्योतिर्लिंग के रूपमें विराजमान हुए। इस लिंगकी देवता, गन्धर्व ऋषि आदि सभी ने पूजा की जैसा कि महाभारत में लिखा है :—

ऋषयश्चैवगन्धर्वा देवाश्चाप्सरसस्तथा ।
लिंगमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥

चौथा रत्न

सती

एक समय लीलाधारी परमेश्वर शिव एकान्त में बैठे हुए थे। वहीं पर सती भी विराजमान थीं। आपस में वार्तालाप हो रहा था। उसी वार्तालाप में शिवजी के मुख से सती के श्याम वर्ण को देख काली ऐसा शब्द निकल गया। इस वचन को सुन कर सती को हार्दिक दुःख हुआ और वे शिवजी से बोलीं कि हे महाराज! आपने मेरे काले रंग को देख मार्मिक वचन कहे हैं इस लिए मैं वहां जाऊंगी जहां मेरा नाम गौरी पड़े और जब तक गौरी न हो जाऊंगी तब तक आपको मुख न दिखाऊंगी। ऐसा कह कर अपनी सखियों को साथ लेकर परम ऐश्वर्यवती सती प्रभास तीर्थ में तपस्या करने चलीं। वहां गौरीश्वरनामक लिङ्गका संस्थापन कर विधि-विहित रीति से साङ्गोपाङ्ग पूजा करने लगीं। और दिन रात एक पैर पर खड़े होकर कठिन तपस्या करने लगीं। ज्यों ज्यों उनका तप बढ़ता त्यों त्यों उनका वर्ण गौर होता जाता था और धीरे धीरे उनके सब अङ्ग पूर्ण रूपसे गौर हो गए।

तदनन्तर भगवान् चन्द्रभाल प्रकट हुए और सती को भाव पूर्ण शब्दों में गौरी नाम से सम्बोधित किया और कहा कि हे प्रिये! अब तुम उठो और अपने मन्दिर को चलो। हे कल्याणि! अभीष्ट वर मांगो तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं। तुम्हारी तपस्या से मैं परम प्रसन्न हूँ।

तब सती जी हाथ जोड़ प्रार्थनापूर्वक बोलीं कि हे महाराज! आपके चरणों की दया से मुझे किसी बात की कमी नहीं। मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। परन्तु यह प्रार्थना अवश्य करूंगी कि जो नर या नारी इन गौरीश्वर का दर्शन करे वह सात जन्म तक सौभाग्य-समृद्धिसे पूर्ण हो और उसके वंश में किसी को भी

दारिद्रय और दौर्भाग्यका सामना न करना पड़े। मेरे संस्थापित लिंग की पूजा करने से परम पद की प्राप्ति हो। गौरी की इस प्रार्थना को श्रीमहादेव जी ने परम हर्ष के साथ स्वीकार कर लिया और उन्हें अपने साथ लेकर कैलास को पधारे।

पाँचवाँ रत्न

ब्रह्मदेव।

प्रजापति ब्रह्मदेव ने सृष्टि रचने का परम प्रयत्न किया परन्तु उसकी वृद्धि होती हुई न दिखाई दी। तब वे बड़े ही चिन्तित हुए और अन्त में उन्हों ने विचार किया कि देवदेव महादेव की शरण में जाने से मेरी मनःकामना सिद्ध हो सकती है क्योंकि वे त्रैलोक्य की रचना में समर्थ उस शक्तिसे सम्पन्न हैं जो सम्पूर्ण सचराचर जगत् का नियन्त्रण करती है। सृष्टि रचना में मेरी सहायता करने की शक्ति उनमें है। ऐसा निश्चय कर ब्रह्मदेव ने भगवान् त्रिलोचन के सन्मुख चिरकाल तप किया। उनके कठिन तप को देखकर सदाशिव बहुत प्रसन्न हुए और अर्धनरनारीश्वर का रूप धारण कर प्रकट हुए।

उन परम तेजके धाम मन और वाणी के अगोचर महामहिम, अविनाशी, अद्वितीय, अमोघशक्ति, अतुलनीय पराक्रम अर्द्धाङ्गिनी पार्वती समेत देवदेव के दर्शन पाकर ब्रह्मदेव परम प्रसन्न हुए और साष्टाङ्ग प्रणाम कर हाथ जोड़ विनय पूर्वक स्तुति करने लगे। श्रद्धाविनयसम्पन्न सारगर्भित भावपूर्ण शब्दों में वे कहने लगे कि हे देवदेव परम पूज्य शिव! आपकी जय हो सर्वशक्तिमान् सर्व-देवाधिपति आपकी जय हो। हे परम शक्तिमती, जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करने में समर्थ पार्वती! आपकी जय हो। आपकी माया अपरम्पार है। हे पार्वतीश! आपकी यथार्थ स्तुति करने में सहस्रमुख वाले शेषनाग भी असमर्थ हैं दूसरों की तो कथा ही क्या। आपकी महिमा अपार है उसे बड़े बड़े ऋषि मुनि भी नहीं जान सकते। आप वाणी और मन के अगोचर हैं और श्रुतियां और स्मृतियां चकित हो कर आपकी स्तुति करती हैं पर पार नहीं पातीं। आपका ऐश्वर्य जगत् की उत्पत्ति, रक्षा, और प्रलय करने में समर्थ है। चारों वेदों के, छओ शास्त्रों के और अठारहो पुराणों के प्रतिपाद्य पर तत्व आप ही हैं। अभीष्टसिद्धि के लिए सभी देवों ने और सभी मुनियों ने आपकी आराधना

की और यथेप्सित वर पाकर जगत्पूज्य बन गए। यह समस्त संसार आपकी सत्ता से व्याप्त है और आपही के प्रकाश से प्रकाशमान है। हे परमप्रकाशस्वरूप! आप अज्ञानान्धकार में भटकते हुए जीवों को सूर्यके समान प्रकाश दे कर सन्मार्ग दिखा देते हैं। हेमहाशिव! जब जब भक्तों के ऊपर कष्ट आता है तब तब आप उनका उद्धार करते हैं और उनका कष्ट दूर करते हैं। हे महादेवि! आपकी ही शक्ति से इस संसार की उत्पत्ति है और उसीसे इसकी रक्षा होती है और संहार भी उसी शक्ति से होता है। हे महाशक्ति! प्रजा के लिए कठिन प्रयत्न करने पर भी मुझे सफलता नहीं हो रही है। अतः असहाय होकर मुझे आपकी शरण आना पड़ा हे जगन्मातः! आपकी दया बिना सृष्टिक्रम सुचारु रूपसे नहीं चल सकता।

इस प्रकार कोमल कान्त पदावली से स्तुति करते हुए वे बारम्बार प्रणाम करने लगे। इस परम मनोहर स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शंकर और भगवती परमेश्वरी ने परम प्रसन्न हो कहा कि इस तपस्या और आराधना से हम बहुत प्रसन्न हैं। हमें अच्छी तरह ज्ञात है कि प्रजा-वृद्धिके लिए यह कठिन तपस्या की गई है इस लिए हम वर देते हैं कि तुम्हारी अभीष्ट-सिद्धि हो। इतना कहते ही महादेवी पार्वती के भ्रूमध्य से उन्हीं के समान कान्ति वाली एक शक्ति उत्पन्न हुई। उसको देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और उस शक्ति से कहने लगे कि तुम ब्रह्माजी की अभीष्टसिद्धि में सहायता करो ऐसे वचन कहकर श्री महादेवजी अन्तर्धान हो गए और शक्ति शिवजी के आदेशानुसार प्रजापति ब्रह्मा के कथन से दक्ष की पुत्री हुई। तदनन्तर सृष्टिका क्रम सुचारु रूपसे चलने लगा और ब्रह्माजी को परम आनन्द और सन्तोष हुआ।

छठवाँ रत्न

परम भक्त यमराज

प्राचीन काल में माण्डव्य नाम के एक परम तेजस्वी मुनि हो गए हैं। अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करने के अनन्तर वे लोकान्तरित हुए और पूर्व जन्म में अर्जित कर्म के अनुसार उन्हें शूली पर चढ़ने का दण्ड दिया गया। शूली के अग्रभागसे उतर कर वे महर्षि परम आनन्दित होते हुए यमराज के समीप गए और उनसे पूछने लगे कि आप कृपा कर यह बताइये कि मैंने इस जन्म में अथवा

पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा घोर पातक किया था जिसके फल में मुझे यह शूली का कष्ट भोगना पड़ा। यमराज ने उत्तर दिया कि हे विप्रशिरोमणे! किसी जन्म में आपने शैशवावस्था में अनेक जीवों के शरीरों का शूलाग्र से वेधन किया था। उसी अपराध के कारण आपको यह नरक यातना भोगनी पड़ी। माण्डव्य ऋषिने यमराज से कुपित हो कर कहा कि इस छोटे से अपराध के लिए आपने मुझे इतना कठोर दण्ड देकर वड़ा अन्याय किया अतः इसके वदले में आपको शाप देता हूं कि आप देवयोनि से मनुष्य योनि में जाएँ और उसमें भी शूद्र के घर में उत्पन्न हों।

माण्डव्य की ऐसी कठिन शाप सुन कर यमराज हृदय में अत्यन्त व्यथित हुए और इस शाप के प्रतीकार के लिए भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगे। पवित्र तीर्थ में शिवलिङ्ग का संस्थापन कर षोडशोपचार से भक्तिपूर्वक पूजन कर उनके सन्मुख कठिन तपस्या करने लगे। रात दिन कठोर तपस्या करते करते उन्हें वहुत दिन व्यतीत हुए। तव अन्त में भगवान् शङ्कर यमराज पर प्रसन्न हो कर प्रकट हुए और वोले कि हे यमराज! मैं तुम्हारी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूं। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हारे लिए अदेय हो। इस लिए अभीष्ट वर मांगो। यमराज ने हाथ जोड़ विनय पूर्वक कहा कि हे प्रभो! न्याय करना और सांसारिक जीवों को उनके कर्मों के अनुसार फल देना मेरा कर्तव्य और धर्म है। उसी कर्तव्य के पालन के लिए मैंने माण्डव्य ऋषि को उनके कर्मों के अनुसार शूलदण्ड दिया। उससे कुपित होकर उन्होंने मुझे शाप दे दी कि मैं शूद्रयोनि में जन्म पाऊं। हेसदाशिव! कृपया इस घृणित योनि से मुझको मुक्त कीजिए। यमराज के ऐसे करुण वचन सुन कर शिवजी कहने लगे कि माण्डव्य समान महामुनि के वचन को अन्यथा करना मेरी शक्ति के वाहर है। परन्तु इतना वर मैं देता हूं कि शूद्रयोनि में रहते हुए भी तुम्हें ब्रह्मज्ञान वना रहेगा और इस कारण पाप-पुण्यसे अलिप्त रहोगे। तुम्हें क्षुद्र योनि में उत्पन्न होने की ग्लानि नहीं होगी। कुटुम्बियों के कारण तुम्हें कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। तुम एक सौ वर्ष मनुष्य योनि में रहकर अपने उपदेशों द्वारा असंख्य मनुष्यों का उद्धार करोगे और संसार की भलाई करोगे। अन्त में योग-द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से प्राणों का परित्याग कर परम पदको प्राप्त होगे। ऐसा वचन कह कर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गए।

इधर यमराज ने दासी के घरमें जन्म लिया और उनका विदुर नाम पड़ा।

ये यमराज के अवतार होनेके कारण एवं श्रीमहादेवजी के वरदान से शैशवावस्था से ही परम विद्वान् और पूर्ण ज्ञानी हुए। धृतराष्ट्र और पाण्डु इन्हें अपने भाई के समान मानते थे और सभी आवश्यक कार्यों में सलाह लेते थे। आप त्रिकालदर्शी थे और कहाँ कब क्या होता है यह सब एक ही स्थान पर बैठे जान लिया करते थे। आप ब्रह्मज्ञानी थे अतः आपके ऊपर जाति का कुछ असर नहीं पड़ा और न पाप-पुण्य का कुछ बन्धन हुआ। जो ज्ञानी पुरुष होता है वह कितने भी पाप अथवा पुण्य करे सर्वदा निर्लिप्त रहता है जैसा कि शिवजी ने शिव गीता में कहा है:—

ज्ञानादूर्ध्वं तु यत् किञ्चित् पुण्यं वा पापमेव वा।
क्रियते बहु वाल्पं वा न तेनायं विलिप्यते ॥

शिवगीता १३—३७

सातवाँ रत्न

वरुणदेव

एक बार महर्षि अगस्त्य ने तीन आचमन कर समूचा समुद्र पी डाला। उस समय नदियों के पति समुद्र बहुत दुःखित हुए। उसमें के अगणित जीव निराधार हो मरने लगे। संसार भरमें हाहाकार मच गया। देव, दनुज, नर, नाग आदि सभी परम चिन्तातुर हुए।

जलके अधिष्ठाता देवता वरुण भी बहुत सन्तप्त हुए। वे सागर की पूर्ति की कामना से परम पावन प्रभास क्षेत्र में तपस्या करने के लिए गए।

वहाँ एक शिव लिंग का विधिविहित रीति से संस्थापन किया और प्रति दिन षोड़श उपचार से परम भक्तिपूर्वक शिवार्चन करने लगे। दस हजार वर्ष तक वरुणदेव ने उस तीर्थ में घोर तप किया और अन्त में अपनी कठिन तपस्या से कल्याणमूर्ति शिव को अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। महादेव जी प्रसन्न होकर प्रकट हुए और कृपापूर्ण वचन बोले। उन्होंने कहा कि हे वरुण! तुम किस फल की आकांक्षा से इतना कठिन तप चिरकाल से कर रहे हो?

वरुण देव ने साष्टाङ्ग प्रणाम कर प्रार्थना की कि हे महाराज! आपतो सर्वज्ञ हैं और आप को यह बात ज्ञात ही है कि समुद्र के सूख जाने से संसार का विनाश हो रहा है। इस लिए कृपा कर ऐसा प्रबन्ध कीजिए जिसमें सागर फिर पहिले के ऐसा ही भर जाए। वरुण के ऐसे वचन सुन कर महादेव जी ने अपने जटाजूट में स्थित गङ्गा जी को खोल दिया और समुद्र को क्षण भर में गङ्गाजल से परिपूर्ण कर दिया। तदनन्तर उस स्थान से श्री महादेव जी अन्तर्धान हो गए।

वरुण द्वारा संस्थापित उस लिंग का नाम वरुणेश्वर पड़ गया। इन वरुणेश्वर के दर्शन करने से सब तीर्थों का फल मिलता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; बहिरे, गूँगे, अन्धे जो भक्ति पूर्वक इनका अर्चन करते हैं वे सभी शिव लोक को प्राप्त होते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये वरानने।
मूकान्धबधिरा बालाः स्त्रियश्चैव नपुंसकाः।
दृष्ट्वा गच्छन्ति ते देवि स्वर्गं धर्मपरायणाः॥

स्कन्द पुराण प्रभा० ७०-११.

आठवाँ रत्न

प्राचीन काल में यज्ञदत्त नामक एक परम तपस्वी ब्राह्मण थे। वे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गों के ज्ञाता थे और सर्वदा श्रौत एवं स्मार्त कर्मों में ही प्रवृत्त रहते थे। उनके गुणनिधि नामक एक पुत्र हुआ जो कि यज्ञोपवीत होने के अनन्तर सब विद्याओं को पढ़कर पूर्ण विद्वान् हो गया। दैववशात् कुसङ्ग से उसमें जुआ खेलने का दुर्व्यसन लग गया। वह अपने पिता से छिपा कर घर के आभूषण आदिक चुरा ले जाता और जुआ में हरा आता। जब यज्ञदत्त को इस के दुर्व्यसन का पता लगा तो उसने उसे घर से निकाल दिया। वह घर से निकल कर भोजन की खोज में एक मन्दिर में पहुंचा और वहाँ द्वार पर बैठ कर शिवकीर्तन सुनने लगा। रात को जब सब लोग सो गए तो शिव के भोग को चुराने के लिए वह मन्दिर में घुसा। उस समय दीपक की ज्योति

कुछ मलिन हो रही थी इस लिए उसने अपना कपड़ा फाड़ कर बत्ती जला और भोग चुरा कर भागने लगा। इतने में उसके पैर के लग जाने से ए आदमी जाग पड़ा और उसने ऐसा दण्ड-प्रहार किया जिससे उसके प्रा निकल गए।

उस दीपदान के फल से वह दूसरे जन्म में कलिङ्ग का राजा हुआ औ पूर्व जन्म की स्मृति कर उसने सब शिवालयों में दीप दान करने का अ उठाया। इस उत्तम व्रत के प्रभाव से वह उस जन्म में अनेक भोग भोग क अन्त में सद्गति को प्राप्त हुआ। दूसरी बार पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा के घर उनका जन्म हुआ। इस उत्तम कुल में जन्म पाकर वे शम्भु की आराधना लग गए और शिवलिङ्ग का संस्थापन कर कठिन तपस्या करने लगे। त करते हुए उनको लाखों वर्ष बीत गए और उनके शरीर में केवल अस्थि-च मात्र रह गया। तब उस तीव्र तप से प्रसन्न हो कर भगवान् महादेव उमासहि प्रकट हुए और कहने लगे कि हे वैश्रवण! तुम्हारी तपस्या से मैं परम प्रसन्न हूं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने आया हूं। तुम अभीष्ट वर माँगो।

इतना मधुर वचन सुनते ही वैश्रवण ने आँखें खोलीं परन्तु शिवजी के ती तेज के मारे उनकी आंखें बन्द हो गईं और उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की ि हे महाराज! मुझे ऐसी शक्ति दीजिए जिसमें आपके सर्वफलप्रदायक दर्शन क सकूँ। आपके दर्शन मात्र से मेरी अभीष्ट सिद्धि हो जाएगी। श्री महादेवजी उनके ऊपर कृपापूर्वक हाथ फेरा और हाथ के फेरते ही उनकी दिव्य दृष्टि ह गई। आँखोंके खुलते ही उनकी दृष्टि सबसे पहिले परम सुन्दरी गिरिजा के ऊपर पड़ी। वे क्रूर दृष्टि से उन्हीं को घूर घूर देखने लगे। इस घूरने का फल य हुआ कि उनकी बाईं आँख फूट गई। पार्वती जी उनका यह दुर्व्यवहार देख कर कहने लगीं कि यह तापस तो बड़ा दुष्ट मालुम होता है, यह मुझे बड़ी क्रूर दृष्टि से देखता है। तब शिवजी ने हँस कर कहा कि हे देवि! यह तो तुम्हारा पुत्र है, यह तुम्हें किसी बुरी भावना से नहीं देख सकता। यह तुह्मारी तपस्या के फल के ऊपर आश्चर्य कर रहा है।

तदनन्तर वे वैश्रवण से बोले कि हे प्रिय! मैं तुह्मारी तपस्या से बहुत सन्तुष्ट हूं और वर देता हूं कि तुम्हें निधियों का स्वामित्व प्राप्त हो। गुह्यक यक्ष, किन्नर, और पुण्यजनों के तुम अधिपति हो जाओ। तुह्मारी प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हारी अलका पुरी के समीप ही निवास करूंगा। पार्वतीजी ने भी अनेक वर दिए और कहा कि तुह्मारा नाम कुबेर होगा क्योंकि तुमने

मेरे रूप को बड़ी ईर्ष्या के साथ देखा है। तुम्हारे संस्थापित इस शिवलिङ्ग का जो विधिपूर्वक अर्चन करेंगे वे कभी निर्धन नहीं होंगे और किसी प्रकार के पाप उन्हें नहीं लगेंगे। ऐसा वर देकर पार्वती समेत शिव अन्तर्धान हो गए और कुबेर अलका पुरी का अनुत्तम भोग पाकर परम सन्तुष्ट हुए।

नवाँ रत्न

अग्नि

एक समय तीर्थ यात्रा करते हुए श्री महादेव जी अनेक देवों के साथ भृगु-कच्छ नामक तीर्थ में पहुंचे। वहाँ पर अग्निदेव कठिन तपस्या कर रहेथे। वे रोग के कारण परम पीड़ित हो रहे थे और उनकी आँखें पीली पड़ गई थीं। रोगों से छुटकारा पाने के लिए वे सैकड़ों वर्षों से महेश्वर शिव की आराधना कर रहे थे। देवों ने प्रार्थना की कि हे देवदेव! ये अग्निदेव हम लोगों के मुख हैं, इन्हीं के द्वारा हम लोगों को भोजन मिलता है। इन्हें इस समय अनेक रोगों से कष्ट हो रहा है। इसलिए इनका रोग दूर कर हम लोगों की रक्षा कीजिए। अग्निदेव ने भी व्याघ्राम्बर पहिने हुए, सम्पूर्ण शरीर में विभूति रमाए, अनेकों सर्पों को देह भर में लपेटे हुए जटाजूटधारी परम कल्याणकारी शिवजी के दर्शन कर स्तुति करना प्रारम्भ किया।

उनकी भावमयी स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा कि मैं तुम्हारी तप-स्या से अत्यन्त सन्तुष्ट हूं। जो वर माँगना हो वह माँगो। ऐसे आनन्दप्रद वचन सुन कर अग्निदेव ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि हे महा-राज! मैं अनेकों रोगों से पीड़ित हूं और अनेक कष्टों का अनुभव कर रहा हूं आपसे यही प्रार्थना है कि आप मुझको इन कष्टों और रोगोंसे मुक्त करें।

अग्नि के ऐसे दीन वचन सुन कर शंकर भगवान् ने आदित्य का रूप धारण कर उनके सब रोगों को हर लिया और कहने लगे कि इस तीर्थ में मेरा अंश सदा वर्तमान रहेगा और यहाँ स्नान करने से कुष्ठ, कामल, क्षय आदि सभी रोग उसी तरह भाग जाएँगे जिस प्रकार गरुड़ को देखतेही सर्प। पिङ्गलाक्ष अग्निके संस्थापित इन पिङ्गलेश्वर के दर्शन मात्र से कायिक, वाचिक और मानसिक सभी पाप नष्ट हो जाएँगे। इस पावन देवखात नामक तीर्थ में स्नान, दान आदि जो कुछभी पुण्य कार्य किया जाए वह अक्षय होता है और उसके

अनन्त फल मिलते हैं। श्री भगवान् शंकर का वचन है:—

वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यत्पुरा कृतम् ।
पिङ्गलेश्वरमासाद्य तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥
तत्र स्नानं च दानं च देवखाते कृतं नृप ।
अक्षयं तद्भवेत् सर्वमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥

रेवाखण्ड १७६-२.३

दसवाँ रत्न

नर-नारायण

प्राचीन काल में भगवान् के अंश नर और नारायण ने तपस्या करने की अभिलाषा से बद्रिका वन में आश्रम बनाया। उन्होंने भगवान् शङ्कर से प्रार्थना की कि वे पार्थिव लिङ्गमें विराजमान हों। यह प्रार्थना भगवान् शिवने स्वीकार करली और नर-नारायण निर्मित लिङ्ग में प्रविष्ट हो उसमें निवास करने लगे। वे देव उस लिङ्ग की षोड़शोपचार से परम श्रद्धाके साथ आराधना करते लगे और वहीं कठिन तपस्या करने लगे। निराहार तथा जितेन्द्रिय हो कर वे रातदिन भगवच्चरणचिन्तन ही करते थे, अन्य कुछ भी व्यापार नहीं था।

इस प्रकार तप करते करते बहुत समय व्यतीत हो गया। तब श्री आशुतोष भगवान् प्रकट होकर बोले कि हे नर! हे नारायण! मैं तुम लोगों की तपस्या से परम सन्तुष्ट हूं। जो इच्छा हो सो वर माँगो। मैं बहुत प्रसन्नतापूर्वक दूँगा।

शङ्कर भगवान् के ऐसे वचन सुन कर नर और नारायण ने हाथ जोड़ प्रार्थना की कि हे देवेश! हे जगन्निवास! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिए कि आपका निवास सदा इस तीर्थ में हो। आप स्वयं अपने रूपसे इस क्षेत्र में भक्तों की पूजा स्वीकार करें और उन्हें संसार-बन्धन से मुक्त होने में सहायता करें। भगवान् सदाशिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और ज्योतिः स्वरूप हो स्वयं उस तीर्थ में विराजमान हुए।

यह ज्योतिर्लिङ्ग केदारेश्वर के नाम से विख्यात हुआ। उस स्थान में

जाकर अनेकों देवता तथा असंख्यों मुनियों ने भगवान् की आराधना की और अभिलषित फल पाया।

एक बार पाण्डव लोग इस पवित्र बद्रिकाश्रम में गए। भगवान् शिवने उन्हें वहाँ देख माया से महिष का रूप धारण कर लिया और वहाँ से चलने लगे। परन्तु पाण्डवों ने भगवान् को पहचान लिया और उन्हें पकड़ लिया और परम भक्ति-पूर्वक स्तुति की। उनकी भावमयी स्तुति सुन कर भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हुए और अपना रूप धारण कर प्रकट हुए। तब भगवान् ने कहा कि मैं तुम लोगों से बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हें जो वर माँगना हो माँगो। पाण्डवों ने भगवान् की स्तुति कर अनेक वर प्राप्त किए और संसार में अनेक प्रकार के सुख भोग कर वे अन्त में परमपद को प्राप्त हुए।

इन केदारेश्वर के दर्शनों के लिए अभी भी असंख्य स्त्री पुरुष जाते हैं। योगियों की सिद्धि का तो यह प्रधान स्थान है। यहाँ पिण्डदान करने से पितरों का उद्धार होता है। इनके पूजन का माहात्म्य स्कन्द पुराण में इस प्रकार लिखा है:—

यः पूजयति केदारं स गच्छेच्छिवमन्दिरम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पितॄनुद्दिश्य भारत।
श्राद्धं ददाति विधिवत्तस्य प्रीताः पितामहाः॥

रेवा ख० १२३-१७

ग्यारहवाँ रत्न

देवराज इन्द्र

इन्द्र के द्वारा अपने पुत्र विश्वरूप का वध सुनकर महर्षि त्वष्टा अत्यन्त दुःखित और कुपित हुए। उन्होंने परम दारुण तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया और वर में देवों को भीत करने वाला पुत्र माँगा। उनके वरदान से उसी समय वृत्र नाम का परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता की आज्ञा के अनुसार वह इन्द्र से बदला लेने के लिए घोर तपस्या करने लगा। उसकी घोर तपस्या देख कर इन्द्र को बहुत भय हुआ और उन्होंने दधीच ऋषि की हड्डियों के बने वज्र से उसे मार डाला।

वृत्र ब्राह्मण को मार कर ज्यों ही इन्द्र चलने लगे त्यों ही ब्रह्महत्या ने उनका पीछा किया। जहाँ जहाँ इन्द्र जाते वहाँ वहाँ उनके पीछे वह हत्या जाती। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-पत्नी-गमन एवं विश्वासघात ये महापातक

हैं, इनसे मुक्ति पाना कठिन है

परम दुःखित देवराज इन्द्रासन और इन्द्राणी का परित्याग कर तप करने के लिए चले वे अनेक तीर्थ, मन्दिर, समुद्र, नदी, तड़ाग आदि में गए पर उस हत्या से उन्हें मुक्ति नहीं मिली। अन्त में स्कन्द तीर्थ में पहुंचे और वहाँ परम कारुणिक शङ्कर भगवान् की आराधना करने लगे। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि अनेक दुष्कर व्रत किए। ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तपते थे, वर्षा में खुले मैदान में बैठे रहते थे और शीत काल में भींगे कपड़े पहने हुए भगवान् की आराधना करते थे। इस प्रकार उग्र तप करते करते दस हजार वर्ष बीत गए। तब भगवान् आशुतोष प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उसी समय सब देवता और ऋषि भी आ पहुंचे और उनमें से बृहस्पति बोले कि आप ही लोगों की आज्ञा से इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। उस वध के कारण इनके ऊपर ब्रह्महत्या सवार है। ये सम्पूर्ण जगत् में घूम चुके पर कहीं शान्ति नहीं मिली। हे देवदेव उमापते! इनको ऐसा वर दीजिए जिसमें इस महापातक से छुटकारा मिले। तब ब्रह्माजी ने भगवान् शङ्कर की आज्ञासे उस ब्रह्महत्या को चार हिस्सों में बाँट दिया। एक भाग नदी में डाल दिया, दूसरा पृथ्वी में, तीसरा रजस्वला स्त्री में और चौथा शूद्र-सेवक ब्राह्मण में। इस प्रकार इन्द्र को उस हत्या से मुक्त कर भगवान् शङ्कर इन्द्र से बोले कि मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूं तुम वर माँगो। इन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे परमेश्वर! मैं इस तीर्थ में शिवलिंग स्थापित करता हूं आप उसमें सदा विराजमान रहें और आराधना करने वाले भक्तों को सर्वदा महा-पातकों से मुक्त किया करें। भगवान् सदाशिव इस प्रार्थना को स्वीकार कर अन्तर्हित हो गए और देवराज ने विधिविहित रीति से शिवलिङ्ग का संस्था-पन किया। इस इन्द्रतीर्थ में स्नान करने से तथा इन्द्र के संस्थापित इन्द्रेश्वर नामक शिव लिङ्ग की पूजा करने से महापातकी भी सब पातकों से मुक्त हो जाता है। इसका माहात्म्य स्कन्द पुराण में इस प्रकार दिया गया हैः—

इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा तर्पयेत् पितृदेवताः।
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४१ ॥
इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत परमेश्वरम्।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य पुष्कलं फलमश्नुते ॥ ४१ ॥

रेवा खण्ड ११८

बारहवाँ रत्न

शुक्राचार्य

देवों और दैत्यों में सदा युद्ध होता चला आया है। अधिकतर देवों को ही विजय प्राप्त होती है और वे ही दैत्यों को भगा कर स्वर्ग का अनुत्तम सुख भोगते हैं। इसका कारण यही है कि देवों के पक्ष में विष्णु, शङ्कर, इन्द्र आदि बड़ी बड़ी शक्तियाँ हैं।

एक बार दैत्यों के आचार्य शुक्र को अपने शिष्यों का पराजय देख बहुत दुःख हुआ और उन्होंने तपस्या के बल से देवों को हराने की प्रतिज्ञा की।

ऐसी प्रतिज्ञा कर वे अर्बुद पर्वत पर तपस्या करने चले। वहाँ भूमि के भीतर एक सुरंग में प्रवेश कर शुक्रेश्वर नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की और प्रतिदिन भक्ति-श्रद्धा पूर्वक षोड़शोपचार से भगवान् शङ्कर की अर्चना करने लगे। अनाहार और अनन्यमनस्क होकर वे परम दारुण तप करने लगे। इस प्रकार तप करते करते एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गए तब श्री महादेव जी ने उन्हें दर्शन देकर ये वचन कहे। वे बोले कि हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हारी आराधना से परम सन्तुष्ट हूँ जो वर माँगना हो माँगो।

शुक्राचार्य ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि हे देवदेव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे वह विद्या दीजिए जिससे मरे हुए जीव जी उठें। शङ्कर भगवान् ने प्रसन्नता-पूर्वक वह वर देकर कहा कि तुम्हें और कुछ माँगना हो तो माँगो। तब शुक्र ने कहा कि महाराज! कार्तिक शुक्ल अष्टमी को इन शुक्रेश्वर का जो भक्तिपूर्वक अर्चन करे उसे अल्पमृत्यु का कभी भय न हो। महादेव जी ने यह वर भी देकर कैलास को प्रयाण किया।

पहिले वर के प्रभाव से शुक्र ने युद्ध में मरे हुए असंख्यों दैत्यों को फिर जिलाया और इस प्रकार देवों के नाकों दम कर दिया। दैत्यों को पराजित करना देवों के लिए कठिन हो गया।

इस शुक्र तीर्थ में स्नान करने से एवम् शुक्रेश्वर के अर्चन से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है और उसे अल्प-मृत्यु का कभी भय नहीं होता। इस लोक में अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। सब सुख मिलते हैं। अन्त में वह शिवलोक को प्राप्त होता है और शिवगणों के साथ आनन्द भोगता है।

स्कन्द पुराण में शुक्राचार्य ने इस प्रकार भगवान् से याचना की थीः—

एतत्कार्तिकमासस्य शुक्लाष्टम्यान्तु यः स्पृशेत् ।
ततो लिङ्गं पूजयेच्च यः पुमाञ्छ्रद्धयान्वितः ॥ १० ॥
अल्पमृत्युभयं तस्य मा भूत्तव प्रसादतः ।
इष्टान् कामानवाप्नोतु इह लोके परत्र च ॥ ११ ॥

अर्बुद खण्ड

तेरहवाँ रत्न

देवगुरु बृहस्पति

संसार की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा आदि सात मानस पुत्र उत्पन्न किए। उन में से अङ्गिरा के आङ्गिरस नामक पुत्र हुए। वे शैशवावस्था में ही बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् थे। वे सब शास्त्रों के तत्व जानने वाले और वेदों के पारङ्गत थे। बड़े रूपवान्, गुणवान् एवं शील-सम्पन्न थे। इन्होंने भगवान् शङ्कर की आराधना करना प्रारम्भ किया। परम पावनी काशी नगरी में शिवलिङ्ग की संस्थापना कर वे घोर तप करने लगे।

तपस्या करते करते दस हजार वर्ष बीत गए तब जगदीश्वर परमेश्वर उस लिङ्ग से प्रकट होकर कहने लगे कि मैं तुम्हारी तपस्या से परम प्रसन्न हूं अभीष्ट वर माँगो। अपने सामने उत्कृष्ट तेजोमय जटाजूटधारी परम कल्याण कारी भगवान् शङ्कर की मूर्ति देख कर प्रहृष्ट वदन से वे स्तुति करने लगे कि हे देवदेव जगन्नाथ! आप त्रिगुणातीत हैं, जरामरण से रहित हैं, त्रिजगन्मय हैं, भक्तों के उद्धार करने वाले हैं, शरणागत-वत्सल हैं, आपके दर्शनों ही से मैं कृतकृत्य होगया हूं, मेरी सब कामनाओं की पूर्ति हो गई। ऐसी आङ्गिरस की स्तुति सुन कर भगवान् आशुतोष और अधिक प्रसन्न हुए और अनेक वर दिए। उन्होंने कहा हे आङ्गिरस! तुमने बृहत् तप किया है इस लिए इन्द्रादि बृहतों (देवों) के तुम पति होओ और तुम्हारा नाम बृहस्पति हो। तुम बड़े वाग्मी और विद्वान् हो इस लिए तुम्हारा नाम वाचस्पति भी हो। तुम्हारे द्वारा संस्थापित इस लिङ्ग की जो आराधना करेगा उसे

मनोवाञ्छित फल मिलेगा। इस प्रकार अनेक वर देकर भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब देवों को बुलाया और ब्रह्माजी से कहा कि बृहस्पति को सब देवों का आचार्य बना दो। ब्रह्मा जी ने उसी समय देवाचार्य पद पर उनका अभिषेक कर दिया। उस समय देवों की दुन्दुभियाँ बजने लगीं और अप्सराएँ नाचने लगीं। इस प्रकार भगवान् शङ्कर के अनुग्रह से आङ्गिरस ने वह पद पाया जिस से बढ़ कर स्वर्ग लोक में दूसरा पद हो नहीं सकता।

उनके संस्थापित बृहस्पतीश्वर के पूजन से प्रतिभाकी प्राप्ति होती है और अभीष्टसिद्धि होती है। स्कन्दपुराण में इसका माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है:—

गुरुपुष्यसमायोगे लिङ्गमेतत् समर्च्य च।
यत्करिष्यन्ति मनुजास्तत् सिद्धिमधियास्यति ॥ ६० ॥
अस्य संदर्शनादेव प्रतिभा प्रतिलभ्यते।
आराध्य धिषणेशं वै गुरुलोके महीयते ॥ ६१ ॥

काशीखण्ड अ० १७

चौदहवाँ रत्न

बुध

तारा के गर्भ से उत्पन्न होते ही परम तेजस्वी, रूपवान्, बलवान् बुध ने सोम की आज्ञा ले कर तप करने का निश्चय किया। उन्होंने विश्वेश्वर से सुरक्षित परमपावनी काशी पुरी में जाकर बुधेश्वर नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की। बालेन्दुतिलक भगवान् शिव के सामने अत्यन्त उग्र तप करना प्रारम्भ कर दिया। दस हजार वर्ष तप करने के अनन्तर श्री भगवान् शङ्कर उस बुधेश्वर नामक लिङ्ग से प्रकट हुए और बुध से कहने लगे कि हे बुध! मैं तुम्हारे तप से परम सन्तुष्ट हूं जो वर माँगना हो सो माँगो। इस प्रकार हृदय को आनन्द देने वाले वचन सुन कर बुध ने आँखे खोलीं और सामने उसी लिङ्ग से उत्पन्न शशिशेखर परमेश्वर को देखा। वे हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे कि हे देवदेव! आप ज्योतिः स्वरूप हैं, विश्वरूप होते हुए भी रूपातीत हैं, भक्तों के सब दुःखों को दूर करने वाले हैं, परम कृपालु हैं और शरणागत

जनों की सब प्रकार रक्षा करते हैं। हे गिरिजेश ! मैं स्तुति करना नहीं जानता हे महादेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि आप के चरण कमलों में मेरी अटल भक्ति तथा प्रेम हो। बुध के ऐसे भक्ति पूर्ण वचन सुन श्रीमहादेव जी बोले कि हे महाभाग ! तुम्हारा लोक सब नक्षत्र लोकों से ऊ होगा और सूर्यादि ग्रहों के साथ तुम्हारी पूजा होगी। इन बुधेश्वर की आ धना से दुर्बुद्धि का विनाश होगा और सद्बुद्धि उत्पन्न होगी। इतना कह भगवान् शम्भु कैलास को चले गए और बुध स्वर्ग लोक में विराजमान हु बुधेश्वर के पूजन का माहात्म्य स्कन्द पुराण में इस प्रकार बताया गया है:-

काश्यां बुधेश्वर समर्चनलब्ध बुद्धिः
संसार सिन्धुमधिगम्य नरो ह्यगाधम्।
मज्जेन्न सज्जन विलोचन चन्द्रकान्तिः
कान्तानन स्त्वधिवसेच्च बुधेऽत्र लोके ॥ ६६ ॥

काशीखण्ड अ० ।

पन्द्रहवाँ रत्न

प्रभा

सूर्यदेव की पत्नी प्रभा सौन्दर्य विहीन होने के कारण चित्त में बहुत दुःखि रहती थीं। उनके पति सूर्य भी उनसे उतने सन्तुष्ट नहीं रहते थे जितना कि प को अपनी पत्नी के साथ रहना चाहिए। इस कारण उन्हें अपने मन में और अधिक सन्ताप होता था। इस लिए सौन्दर्य-प्राप्ति के लिए प्रभा ने वाञ्छितफल प्रदाता आशुतोष भगवान् शङ्कर की आराधना करने का निश्चय किया।

इस निश्चय के अनुसार उन्होंने तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। शिवलि स्थापित कर उनके सामने निराहार रह कर केवल वायु पीकर एक वर्ष उग्र त किया। वे सर्वदा अनन्यमनस्क हो भगवच्चरण चिन्तन ही किया करती थीं और सांसारिक सभी व्यापार छोड़ शिवार्चन में ही तत्पर रहती थीं। उनकी इस उग्र तपस्या से भगवान् आशुतोष बहुत शीघ्र प्रसन्न हो गए और पार्वती को साथ ले प्रभा के सन्मुख आकर पूछने लगे कि हे देवि ! तुम किस फल की प्राप्ति

के लिए इतना उग्र तप कर अपने कोमल शरीर को कष्ट दे रही हो? सूर्य मेरी ही मूर्ति हैं अतः मुझ से निःसङ्कोच भाव से अपना अभिप्राय कह दो। परम कल्याणमूर्ति प्रसन्नवदन महादेव जी को अपने सामने खड़े देख कर प्रभा देवी हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगीं कि महाराज! आप सर्वान्तर्यामी हैं, हृदय की बात जानते ही हैं आप से कुछ छिपा नहीं है। भगवन्! मैं सौन्दर्यहीन हूं अतः अपने पति सूर्य देव को पूर्णरूप से सन्तुष्ट और प्रसन्न नहीं कर सकती। पति चाहे पत्नी के उपर प्रेम रखता हो चाहे न रखता हो, गुणवान् हो चाहे गुणहीन, निर्धन हो या सधन, कुरूप हो अथवा सुरूप वह नारी के लिए आराध्य देव ही है स्त्रियों के लिए पति से बढ़ कर और कोई पूजनीय नहीं। अतः पति को सन्तुष्ट और प्रसन्न करना ही स्त्री का एक मात्र धर्म है। हे परमेश्वर! मैं कुरूपा हूं अतः अपने पति देव को प्रसन्न नहीं कर सकती हूं। यही एक मात्र मुझे दुःख है। इसी अगाध दुःख से मेरा उद्धार कीजिए।

प्रभा के ऐसे मर्मस्पर्शी वचन सुनकर भगवान् शङ्कर ने वर दिया कि तुम सूर्य की बड़ी प्यारी होगी और सूर्य तुम्हारे ऊपर अब बहुत प्रेम करेंगे। शिवजी ने सूर्य का ध्यान किया और सूर्य देव नर्मदाके उत्तर तट से आते हुए दिखाई पड़े। सूर्यने आकर पार्वती समेत भगवान् सदाशिव को अभिवादन किया और हाथ जोड़ पूछने लगे कि हे देवदेव! आज मेरे ऊपर कैसी कृपा हुई और मुझे क्यों स्मरण किया? शिव ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया कि हे सहस्ररश्मे! यह तुम्हारी प्रभा नाम की पत्नी परम पतिव्रता है। पतिसेवा करना ही इसने अपना एक मात्र ध्येय बना रक्खा है। इसके ऊपर तुम प्रसन्न होओ और सदा अपने साथ रक्खो।

सूर्यदेव ने भगवान् के वचनों को नत मस्तक से स्वीकार किया। तब प्रभा ने प्रार्थना की कि हे सदाशिव! मैं यह एक और वर माँगती हूं कि इस लिङ्गमें आप सदा अपने अंश से वर्तमान रहें और भक्तों के सब प्रकार के पापों को दूर किया करें। भगवान् ने तथास्तु कह कर शिवलोक को प्रयाण किया और प्रभा देवी सूर्यके साथ रह कर परम आनन्द को प्राप्त हुईं। प्रभेश्वर का माहात्म्य इस प्रकार लिखा हैः—

वाचिकं मानसं पापं कर्मणा यदुपार्जितम्।
तत्सर्वं नाशमायाति तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥

सोलहवाँ रत्न

स्वामिकार्तिक

जब स्वामिकार्तिक ने युद्ध में तारकासुर को मार डाला तो देवता लोग दुन्दुभियाँ बजाने लगे और पुष्पोंकी वर्षा करने लगे पर स्वामिकार्तिक शिवभक्त तारक के वध से अत्यन्त दुःखित हुए। उन्होंने कहा कि यद्यपि पापी के मारने में दोष नहीं है तथापि शिव भक्त के मारने का पाप अवश्य लगता है। इस प्रकार उनके चिन्तित होने पर विष्णु भगवान् बोले कि हे शिवात्मज! श्रुति स्मृति, इतिहास, पुराण आदि इस में प्रमाण हैं कि दुष्ट के वध में दोष नहीं होता। जो व्यक्ति दूसरे के प्राणों से अपने प्राणों का पालन करता है उसके वध करने में किसी प्रकार का प्रायश्चित्त नहीं। शक्ति रहते हुए भी जो पापी पुरुष को दण्ड नहीं देता वह उसके आधे पाप का भोक्ता होता है। इस लिए हे देवसेनापते! तुमने इस दुष्ट को मार कर पुण्य ही पाया पाप नहीं।

विष्णु देव ने कहा कि यदि तुम्हें रुद्रभक्त के हनन का पश्चात्ताप ही हो तो तुम शिव का आराधन करो जिससे सब पाप दूर हो जाते हैं। भुक्ति-मुक्ति की इच्छा करने वाले को शिव की उपासना करनी चाहिए। स्कन्द ने विष्णु देव के ऐसे वचन सुनकर विश्वकर्मा से तीन शुद्ध शिवलिङ्ग बनवाए। ब्रह्मादिक देवों ने उन लिङ्गों की विधिविहित रीति से प्रतिष्ठा की और उन लिङ्गों के नाम प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर रक्खे गए। भगवान् शङ्कर स्वयम् आकर उन लिङ्गों में विराजमान हुए और उन्होंने प्रसन्न हो कर स्कन्द को अपने दर्शन दिए।

उनके दर्शन पाते ही कुमार उनके चरणों पर गिर गए और अनेक प्रकार की स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा कि हे महाराज! मैंने अज्ञानवश आप के अनन्य भक्त तारक का वध किया है। उसका पाप मेरे ऊपर सवार है। शिवभक्त के मारने के पाप से छुटकारा मिलना कठिन है। परन्तु आप सरीखे शरणागत वत्सल की शरण में आया हूं। आप मेरे अपराध को क्षमा कर अनुगृहीत करें। इस प्रकार स्वामिकार्तिक ने शिवजी से मधुर वचनों में शिवभक्त-वध-जनित अपराध से मुक्त करने की प्रार्थना की। भगवान् शम्भु ने प्रसन्न हो कर कहा कि हे कुमार! तुमने जो काम किया है उससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुमने देवों का बड़ा उपकार किया है। तुम्हारे द्वारा

संस्थापित इन लिङ्गों की आराधना करने से और इस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाएगा। कुमारेश्वर की अर्चना करने से तो सम्पूर्ण भूमण्डल के तीर्थों में स्नान करने का और सम्पूर्ण शिव लिङ्गों की आराधना करने का पुण्य प्राप्त होता है। स्कन्द पुराण में इस का माहात्म्य इस प्रकार लिखा है:—

यन्महीतलतीर्थेषु स्नाने स्यात्तुमहत्फलम्।
यच्चार्चितेषु लिङ्गेषु सर्वेषु स्यात् फलं च यत् ॥ ७० ॥
आरोग्यं पुत्रलाभं च धनलाभं सुखं सुतम्।
निश्चितं लभते मर्त्यः कुमारेश्वरपूजया ॥ ७१ ॥

कौमारखण्ड अ० ३४

सत्रहवाँ रत्न

रति

सृष्टि के आदि काल में एक बार ब्रह्माजी प्रजा की कामना से ध्यान कर रहे थे। उसी समय एक परम सुन्दर अलङ्कारों से अलङ्कृत परम तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी ने उसका नाम कामदेव रख दिया और उसके रहने के लिए कामिनियों के कटाक्ष, केशपाश, जघन, स्तन, नाभि, कुक्षि, अधर, वसन्त, कोकिलालाप एवं चन्द्रमा की चाँदनी ये दस स्थान दिए। सदसद्विवेकी विद्वान्, उग्र तापस, जितेन्द्रिय वीर, सर्व शक्तिमान् देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, भूत, प्रेत पिशाच, कृमि, कीट, पतङ्ग आदि सभी जीवधारियों के मन को चञ्चल कर देने की शक्ति कामदेव में थी। कामदेव ने अपनी इस शक्ति की परीक्षा के लिए भगवान् शङ्कर के ऊपर अपना प्रभाव डालना चाहा और उसने इसी उद्देश्य से पुष्पबाण की वर्षा से शिवजी का मन चञ्चल कर दिया। भगवान् को बड़ा क्रोध आया और उन्हों ने अपने तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया।

कामदेव के दग्ध होने से उनकी पतिव्रता पत्नी रति पतिवियोग से परम दुःखित हो कातर स्वर से विलाप करने लगीं। उनका करुण क्रन्दन सुन कर प्राणिमात्र व्याकुल हो उठे। सभी को इस पतिवियोग से अत्यन्त कष्ट हुआ

इतने में आकाश वाणी हुई कि हे विशालाक्षि! तुम रुदन मत करो। भगवान् आशुतोष की आराधना करो। उनके वरदान से तुम्हारे पति पुनः जीवित हो जाएँगे।

ऐसी आशाप्रद आकाशवाणी सुन कर रति को धैर्य हुआ और वे तपस्या करने के लिए उद्यत हुईं। उन्होंने बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ भगवान् का आराधन किया। उनकी आराधना से शङ्कर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और वर देने के लिए रति के सन्मुख उपस्थित हुए। रति ने हाथ जोड़ कर स्तुति की और कहा कि हे त्रिलोचन! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरे पतिको जीवन-दान दीजिए। मैं और कुछ नहीं चाहती।

भगवान् शङ्कर ने कहा कि इस समय तो यह अङ्ग रहित होकर समस्त संसार में अपना प्रभाव फैलाएगा। जीव मात्र इस के वश में रहेंगे। बड़े बड़े देवता, ब्रह्मर्षि और राजर्षियों पर भी इसका अमित प्रभाव रहेगा। द्वापर युग में यह रुक्मिणी के गर्भ से भगवान् कृष्ण के यहाँ जन्म लेगा और इसका नाम प्रद्युम्न होगा। उस समय यह साकार रूप धारण करेगा। इतना कह कर भगवान् अन्तर्धान हो गए और कामदेव ने पुनर्जीवन पाया। उन्हों ने अवन्ती में जाकर शिवलिंग स्थापित किया। उसकी आराधना के फल से कामदेव ने चिरकाल तक रति के साथ रमण कर परमानन्द प्राप्त किया।

कामदेव के संस्थापित लिंग का नाम कामेश्वर पड़ा। इन के दर्शन करने से ऐश्वर्य, उत्तम भोग, सर्वगुण सम्पन्न रमणी आदि वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। उनकी सन्तति सुन्दर और नीरोग होती है। अन्त में देव लोक में प्राप्त हो मनुष्य सब सुखों को भोगता है। स्कन्दपुराण के आवन्त्य खण्ड में इनकी आराधना का बड़ा माहात्म्य बताया गया है।

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां ये मां पश्यन्ति भक्तितः।
ऐश्वर्यं परमान् भोगान् स्त्रियो दिव्यकलान्विताः॥ ५०॥
अरोगा सन्ततिस्तेषां भविष्यति न संशयः।
देवलोकं समासाद्य मोदिष्यन्ति हि ते नराः॥ ५१॥

अ० च० लिं० मा० १३ अ०

अठारहवाँ रत्न

पुष्पदन्त

पुष्पदन्त नामक एक परम शिव भक्त गन्धर्व राज थे। वे शिव की आराधना के लिए सुन्दर सुगन्धित पुष्प लाने को एक राजा के उपवन में आकाश मार्ग से उड़कर प्रतिदिन जाते और वहाँ से प्रातः काल ही सर्वोत्तम पुष्प चुन लाते थे। उपवन के रक्षक पुष्प ले जाने वाले का बहुत पता लगाते पर किसी प्रकार पता न लगता। राजा जब पूजा करने बैठता और अर्चना के लिए मनोहर सुगन्धित पुष्प न पाता तो उसे बहुत क्रोध आता और मालियों को बहुत दण्ड देता। बिचारे माली बहुत पता लगाने पर भी पता न लगा सके और तब राजा के सामने जाकर निवेदन करने लगे कि हे महाराज! शरणागतपालक! हम लोग रात दिन उपवन में पहरा देते हैं पर चोर का किसी प्रकार पता नहीं लगता। आप अन्नदाता हैं जो चाहें सो करें। आप हम लोगों को चाहे मारें चाहे पीटें, चाहे शूली पर चढ़ा दें।

मालियों के ऐसे आर्त वचन सुन कर राजा बहुत चिन्तित हुआ और अपने सचिवों से सलाह करने लगा। सचिवों ने निवेदन किया कि हे महाराज! फूल ले जाने वाला कोई अपूर्व शक्तिशाली पुरुष है। ज्ञात होता है कि उस में अन्तर्धान होने की शक्ति है। इसी कारण सब रक्षकों के सामने से ही वह फूलों को तोड़ ले जाता है और कोई उसे पकड़ नहीं सकता। इसका उपाय एकमात्र यही है कि उपवन की चारो ओर शिवनिर्माल्य फैला दिया जाय। जब वह पुरुष शिव निर्माल्य को लाँघ कर बगीचे में प्रवेश करेगा उसी समय उसकी सब शक्ति नष्ट हो जाएगी और रक्षकों के दृष्टिगोचर हो जाएगा।

राजा ने मन्त्रियों की सलाह के अनुसार बागीचे की चारो ओर शिवनिर्माल्य फैलवा दिया। जब पुष्पदन्त उस उपवन में प्रवेश करने लगे उसी समय शिव निर्माल्य लंघन से उनकी अन्तर्धानिका शक्ति नष्ट हो गई और रक्षकों ने उन्हें पकड़ लिया। राजा इतने दिनों से कुपित तो था ही बिना कुछ पूछे ताछे उसने तुरन्त जेलमें बन्द कर देने की आज्ञा दे दी। राजा की आज्ञा के अनुसार वे तुरन्त जेल में बन्द कर दिए गए।

कारागार में बन्द हो जाने पर वे गन्धर्वराज अपनी शक्ति नष्ट होने का कारण अपने मन में सोचने लगे। बहुत ध्यान लगा कर विचार करने

पर उन्हें ज्ञात हो गया कि शिव-निर्माल्य के लाँघने से शिवजी का अपराध हुआ और इसी कारण उनकी अन्तर्धानिका शक्ति नष्ट हो गई। सर्वश्रेष्ठ देवदेव शिव के अपराध का मार्जन शिवोपासना से ही हो सकता है। ऐसा निश्चय कर वे भगवान् शिव की स्तुति करने लगे। उन्होंने भगवान् आशुतोष का ३९ श्लोकों द्वारा भक्तिपूर्ण हृदय से स्तवन किया और इस महिम्न स्तोत्र से भगवान् शङ्कर परम सन्तुष्ट हो वर देने के लिए उपस्थित हुए। उनके वर से पुष्पदन्त का पुष्पापहार जनित पाप दूर हो गया और वे कारागार से मुक्त हो गए। इस पुष्पदन्त रचित महिम्नस्तोत्र के प्रतिदिन पाठ करने से मनुष्य सम्पत्ति सम्पन्न होता है, आयु की वृद्धि होती है, सन्तान की प्राप्ति होती है और परमधवल यश प्राप्त होता है। इसका माहात्म्य इस प्रकार कहा गया है:—

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥ ३४ ॥

म० स्तो०

उन्नीसवाँ रत्न

पितृगण

पितृगण ने देखा कि उनके अनेकों पूर्वज तथा सन्तान उचित दाह आदि क्रिया एवं विधिविहित पिण्डदान आदि के अभाव से दुष्ट योनियों में अथवा नरकों में पड़े हुए अनेक प्रकार की यातनाएँ भोग रहे हैं और उनके उद्धार का कोई उपाय नहीं। इस दुःख से दुःखित हो वे सब मिल कर प्रभासतीर्थ में तपस्या करने के लिए उपस्थित हुए। वहाँ उन्हों ने शास्त्र निर्दिष्ट विधि से शिव लिङ्ग की संस्थापना की और चिर काल तक घोर तप करते रहे। दिन रात श्री भगवान् के चरणों में ही ध्यान लगाए रहना और उनकी अर्चना करना ही एक मात्र उनका कार्य था।

दीर्घकाल तक तपस्या करने के अनन्तर भगवान् शिव सन्तुष्ट हुए और पितृगण को दर्शन दे कर बोले कि हे पितृगण! तुम लोगों की तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूं, अभीष्ट वर माँगो, मैं देने के लिए प्रस्तुत हूं। भगवान् के ऐसे मधुर वचन सुन कर पितरों ने अभिवादन कर प्रार्थना की कि हे महाराज! आप विश्व में सब से परे हैं। आपकी दया के लेशमात्र से संसार का उद्धार हो सकता है। आपसे यही वर माँगना है कि जो मनुष्य इस पावन तीर्थ में आ कर शिवलिङ्ग की अर्चना कर अपने पितरों का तर्पण करे वह पितृ ऋण से मुक्त हो जाए। उसके पितरों की मृत्यु चाहे साँप के काटने से हुई हो, चाहे आग में जल कर हुई हो अथवा विषप्रयोग से हुई हो वे सद्गति को पाएँ। पुत्र के अभाव से अथवा पुत्र रहते हुए भी किसी कारणवश जिनका सपिण्डीकरण न हुआ हो अथवा जिनका एकोद्दिष्ट श्राद्ध न हुआ हो उन्हें भी परम गति मिले। जिनके लिए वृषोत्सर्ग न हुआ हो अथवा जिनका अन्त्येष्टि संस्कार न हुआ हो उन सब का इस तीर्थ में तर्पण करने से उद्धार हो जाए यही आप से प्रार्थना है।

भगवान् सदाशिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा कि इस तीर्थ के पवित्र जल में स्नान कर जो नर पितृभक्ति के साथ अपने पितरों का तर्पण करेगा उसके सैकड़ों पातकों से युक्त भी पितरों को मैं अवश्य तार दूँगा। इस तीर्थ में स्नान कर जो इस लिङ्ग की पूजा करेगा वह पितृ ऋण से मुक्त हो जाएगा। इस लिङ्ग के दर्शनों से मनुष्य पितृ ऋण से मुक्त होएँगे अतः इसका नाम ऋणमोचनेश्वर होगा। इतना कह कर भगवान् शिव अन्तर्धान होगए और पितृगण प्रसन्न होते हुए पितृलोक को चले गए। इस तीर्थ का स्कन्द पुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है।

स्नात्वा तु सलिले पुण्ये पितॄणां चैव तर्पणम्।
ये करिष्यन्ति मनुजाः पितृभक्तिपरायणाः ॥ १२ ॥
अहं वरप्रदस्तेषां तारयिष्यामि तत्क्षणात्।
पितॄन् सर्वान्न सन्देहो यदि पापशतैर्वृताः ॥ १३ ॥

प्रभासखण्ड प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य २२१ अ०

बीसवां रत्न

गरुड़

एक बार विष्णु भगवान् के परम भक्त वाहन गरुड़ के पंखे अचानक गि[र] गए। यह देख विष्णु भगवान् को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने विचार कि[या] कि बड़े शक्तिशाली वज्रों के प्रहार से भी जिन गरुड़ का एक रोम नहीं गि[र] सकता उन्हीं गरुड़ के पंखे कैसे गिर पड़े। संसार के किसी भी अस्त्र-शस्त्र [में] इतनी शक्ति नहीं कि इनके पंखों को गिरा दे। इतने में उनकी दृष्टि परम त[प]स्विनी शाण्डिली के ऊपर पड़ी जो समीप ही में खड़ी थीं। उन्हें देख विष्णु [को] निश्चय हो गया कि इसी तपस्विनी का कुछ अपराध गरुड़ ने किया है। इ[सी] अपराध के प्रतिफल में शाण्डिली के कोप से यह भयङ्कर दण्ड गरुड़ को मि[ला] है। भगवान् ने शाण्डिली से पूछा कि हे देवि! कौन सा अपराध गरुड़ [ने] किया जिसका इतना भयानक दण्ड इन्हें मिला? इनके पंखों के गिराने [की] शक्ति बड़े बड़े आयुधों में भी नहीं है। यह बिना आपके कोप के कभी ना[हीं] हो सकता।

भगवान् के ऐसे वचन सुन कर शाण्डिली ने उत्तर दिया कि हे पुरुषोत्तम [!] इन्होंने मेरे सामने ही नारी जाति की घोर निन्दा की है और अनेक दू[षण] बताए हैं। इन्होंने मेरा कुछ भी संकोच नहीं किया और जो मनमें आया सो क[ह] दिया। नारी जाति का इतना अपमान मेरे लिए असह्य था इस लिए मैं[ने] इनको दण्ड दिया। भगवान् ने मधुर शब्दों में उत्तर दिया कि हे महाभागे [!] यद्यपि गरुड़ ने स्त्रियों की निन्दा की और उनके अवगुण बताए परन्तु स्त्री [जाति] जातिमात्र को दूषित करने के उद्देश्य से नहीं कहा। उन्होंने तो केवल साधार[ण] तौर से नारियों में जो स्वाभाविक कमजोरियां हैं उनका वर्णन किया है नारी जाति को कलङ्कित करने की मनसा उनकी कदापि नहीं थी। इस लिए इ[स] छोटे से अपराध के लिए इतना कठिन दण्ड देना आप ऐसी तपस्विनी [को] शोभा नहीं देता। अतः इनके ऊपर कृपा कर आप अपराध क्षमा करें तो ब[हु]त अच्छा हो।

भगवान् के ऐसे वचन सुन कर शाण्डिली बोलीं कि मेरे मन में जो शु[भ] या अशुभ भावना उत्पन्न होती है और जो मेरे मुख से वचन निकल जा[ता] है उसको कोई अन्यथा नहीं कर सकता। मैंने जो कह दिया है वह तो हो क[र] ही रहेगा। इसका एकमात्र उपाय यही है कि भगवान् शङ्कर की गरुड़ आरा[धना]

धना करें। एकमात्र ये ही इस काम में समर्थ हैं दूसरे देव की शक्ति नहीं। उनकी आराधना के बिना पंखे नहीं मिल सकते और पक्ष विहीन हो कर ही जीवन व्यतीत करना होगा।

शाण्डिली के ऐसे वचन सुन कर भगवान् पुण्डरीकाक्ष ने अपने भक्त-शिरोमणि गरुड़ को एकाग्र चित्त हो कर भगवान् आशुतोष की अहर्निश आराधना करने का आदेश दिया। गरुड़ उनकी आज्ञा के अनुसार महादेव जी की आराधना भक्तिपूर्वक करने लगे। उन्होंने एक शिवलिङ्ग संस्थापित किया और उसकी षोडशोपचार से वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ पूजा करने लगे। चान्द्रायण, प्राजापत्य प्रभृति अनेक व्रत उपवास किए। सैकड़ों वर्ष केवल वायु पीकर कठिन तपस्या की। उनकी मनोवृत्तियाँ शिव के अतिरिक्त किसी अन्य विषय में कभी न जातीं। इस प्रकार घोर तप करते एक हजार वर्ष बीत गए। तब भगवान् शिव उनकी अपूर्व तपस्या से प्रसन्न हो प्रकट हुए और वर माँगने के लिए कहा। गरुड़ जी महादेव जी के हृदयानन्दकारी सर्व दुःखहारी दर्शन पा कर आनन्द-पुलकित हो गए और प्रहृष्टवदन से स्तुति करने लगे। स्तुति के अनन्तर निवेदन किया कि मेरे पक्ष गिर गए हैं इस लिए उड़ने में सर्वथा असमर्थ हूं। पक्ष-विहीन होने के कारण बेकाम हो गया हूं। हे महाराज! मुझे और कुछ नहीं चाहिए मैं केवल यही चाहता हूं कि मेरे पंख हो जाएँ। इसी के साथ साथ एक प्रार्थना यह भी है कि आप इस शिवलिंग में सर्वदा विराजमान रहें और विपत्ति-पतित भक्तों का उद्धार किया करें।

भगवान् शम्भु ने प्रसन्नता पूर्वक दोनों प्रार्थनाएँ स्वीकार कीं और कहा कि हे गरुड़! तुम्हारा पहिले के ऐसा ही रूप हो जाएगा और पक्षयुत होकर उसी महावेग से उड़ सकोगे जैसे कि पूर्वावस्था में उड़ते थे। इस लिंग का नाम गरुड़ेश्वर होगा। इनकी आराधना से भ्रूणहत्या, ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नी-गमन आदि महापातक भी दूर हो जाएँगे। जो त्रिकाल इनकी पूजा करेगा वह शिवलोक में पहुंच कर शिव के समान आसन पर स्थान पाएगा। जो भक्त एक साल तक प्रति सोमवार को इनकी अर्चना करेगा वह अवश्यमेव विमान पर चढ़ शिवभक्तों से घिरा हुआ शिव लोक को प्राप्त होगा। ऐसा वर देकर भगवान् शङ्कर तो कैलास को पधारे और इधर गरुड़ अपने पूर्वरूप को प्राप्त होकर बहुत हर्षित होते हुए भगवान् कमलापति की सेवा में उपस्थित हुए।

इक्कीसवां रत्न

हनुमान्

अपने पूज्य पिता के सत्य की रक्षा के लिए मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रा चन्द्र वनवास करने गए। वहाँ मुनि का वेष धारण कर रावण सीता को हर गया। तब राम ने सुग्रीव हनुमान् आदि वानरों की सहायता से लङ्का पर चढ़ की। वहाँ हनुमान् ने बड़ा पराक्रम दिखाया। वन-उपवनों को तोड़ डाला। अने राक्षसों को युद्ध में पीस डाला। रावण के पुत्र अक्षकुमार को मार डाला। श्रीरा चन्द्रने रावण का वध कर सीता को छुड़ाया। तदनन्तर रामचन्द्रजी अपने दल समेत अयोध्यापुरी लौट आए। महाराज रामचन्द्रसे छुट्टी लेकर हनुमान् भगव शङ्कर के दर्शनों के लिए कैलास पहुँचे। उस समय नन्दीश्वर शिव-मन्दिर के द्वा पर पहरा दे रहे थे। उन्होंने हनुमान् को द्वार पर ही रोक दिया और कहा राक्षसों के वध से तुम्हारे ऊपर हत्या लगी है तुम भीतर नहीं जा सकते।

तब हनुमान् ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे नन्दीश्वर! कृपाकर आ भगवान् शङ्कर से पूछिए कि यह मेरा पाप किस प्रकार छूट सकेगा और मैं कै भगवान् के दर्शन कर कृतकृत्य हो सकूँगा। नन्दीश्वर ने उत्तर दिया पृथ्वी लोक में परम पावनी नर्मदा विराजमान हैं। वे परमपूज्य भगवा देव देव के शरीर से उत्पन्न हुई हैं। उनके नाम सुनने से एक जन्म के पाप दू हो जाते हैं। नाम कीर्तन से दो जन्म के पाप क्षीण हो जाते हैं। उनमें भक्ति पूर्वक स्नान करने से तीस जन्मों के पाप उसी तरह जल जाते हैं जैसे अग्नि सूखी तृणराशि। इस लिए तुम नर्मदा के पवित्र तटपर जाकर तप करो तुम्हा ब्रह्महत्या दूर हो जाएगी। नन्दीश्वर के उपदेश के अनुसार हनुमान् नर्मदा के ती पर गए और वहां पवित्र भाव से नागों का यज्ञोपवीत पहने हुए समस्त शरीर में भस्म रमाए हुए डमरू बजाते हुए त्रिशूल लिए हुए अर्द्धाङ्गि उमा समेत जटाजूट धारी सर्व कल्याणकारी भगवान् शिव का ध्यान करने लगे। इस प्रकार कठिन तप करते हुए उन्हें बहुत वर्ष व्यतीत हो गए तब उमा समेत भगवान् प्रसन्न होकर हनुमान् के समीप आए और मधुर पर गम्भीर शब्दों में बोले कि हे प्रिय वत्स! तुमने बहुत कष्ट किया। अपने लिए तो तुमने ब्रह्महत्या की नहीं थी, अपने स्वामी की सेवा के लिये की थी। अस्तु मेरे दर्शन से तुम अब सिद्ध हो गए। तुमसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूं जो वर माँगना हो सो मागो। भगवान् के ऐसे प्रिय वचन सुन कर हनुमान् साष्टाङ्ग प्रणाम कर स्तुति करने

लगे और कहने लगे कि हे महाराज! मुझे ब्राह्मण-वध-जनित पाप लगा है, कृपया मुझे उससे मुक्त कर दीजिए। भगवान् शिव ने उत्तर दिया कि नर्मदा तीर्थ के माहात्म्य से, धर्माचार करने से तथा मेरी मूर्ति के दर्शनों से तुम पाप रहित हो गए। अपनी ओर से मैं तुम्हें एक यह वर और देता हूं कि तुम्हारे नाम के स्मरण से मनुष्यों के पातक उसी प्रकार भाग जाएँगे जैसे गरुड़ को देख कर साँप।

इतना कह कर उमा सहित भगवान् अन्तर्धान हो गए और हनुमान् जी ने वहीं एक शिवलिङ्ग स्थापित किया। इस लिङ्ग की साङ्गोपाङ्ग पूजा करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। जिसकी हड्डियाँ इस क्षेत्र में पड जाएँ वह सुन्दर विमान में चढ़ कर गन्धर्वों और अप्सराओं से घिरा हुआ स्वर्गलोक को चला जाता है। स्वयं शङ्कर भगवान् ने बताया है कि इस तीर्थ के सेवन से ब्रह्महत्या, मदिरा-पान, गुरु-पत्नी-गमन, सुवर्ण-चौर्य, धरोहर का अपहरण मित्रद्रोह आदिक पातक बिना किसी प्रयास के नष्ट हो जाते हैं। स्कन्द पुराण में लिखा है कि:—

ब्रह्महत्या, सुरापानं, गुरुदारनिषेवणम्।
सुवर्ण हरणन्यास मित्रद्रोहोद्भवं तथा॥
नश्यते पातकं सर्वमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत्॥ १००॥

रेवा खण्ड अ० ८३

बाईसवाँ रत्न

गणनायक ढुंढ

कैलास में ढुंढ नाम का एक गणनायक था। वह कामी, दुराचारी और परम विषयासक्त था। वह एक बार इन्द्र की सभा का तमाशा देखने के लिए इन्द्रपुरी में गया। उस समय परम लावण्यमयी रम्भा देवराज इन्द्र के सामने सब देवों और गन्धर्वों के बीच नृत्य कर रही थी और अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखा कर उनको मुग्ध कर रही थी। लय और ताल से समन्वित सङ्गीत में लोग ऐसे मग्न हो रहे थे कि किसी को यह पता नहीं था कि कौन आया और कौन गया।

ढुंढ उस दृश्य को देख कर चकित हो गया और रम्भा के अलौकि सौन्दर्य को देख उसके मन में कामवासना उत्पन्न हो गई। उस दुष्ट वासन से प्रेरित हो कर उसने भरी सभा में रम्भा के गाल में फूलों का गुच्छा मारा इस उद्दण्डता को देख इन्द्र ने अत्यन्त कुपित हो उसे शाप दिया कि तुमने रंग-भं किया है इस लिए तुम्हें मनुष्ययोनि प्राप्त हो। इन्द्र के शाप देते ही वह चेतना रहित हो कर मनुष्य लोक में गिर गया और अनेक प्रकार विलाप औ पश्चात्ताप करने लगा।

उसने अपने मन में विचार किया कि तपस्या करने से मैं पुनः अपने प को पहुंच सकता हूं, इस लिए तप करना ही मनुष्ययोनि से छुटकारा पा के लिए एक मात्र उपाय है। ऐसा निश्चय कर उसने श्रीशैल, मलय, विन्ध पारियात्र आदि अनेक पवित्र पर्वतीय तीर्थों की यात्रा की। तदनन्तर यमुन चन्द्रभागा, वितस्ता, नर्मदा, गोदावरी, चर्मण्वती, गङ्गा आदि अनेक पाव नदियों में उसने स्नान किए परन्तु उस योनि से उसे मुक्ति नहीं मिली। इस सब कष्ट को निष्फल हुआ जान वह अपने मन में दुःखित हो रहा था उसी समय आकाशवाणी हुई। उससे ढुंढ ने सुना कि पृथ्वी के प्रयाग आदि सभी तीर्थों में महाकाल नामक तीर्थ सर्वोत्तम है। वहाँ पिशाचेश्वर के समीप एक शिव लिङ्ग है उसकी आराधना से शिवलोक की प्राप्ति अवश्य होगी।

ऐसी आकाशवाणी सुन कर ढुंढ ने महाकाल वन में जाकर सब सम्पत्ति के देने वाले शिव लिंग का दर्शन किया और बड़ी भक्ति के साथ आराधना की। इस निष्कपट अर्चना से भगवान् शंकर तुष्ट हुए और उस लिङ्ग में से यह वाणी निकली कि हे भक्त! तुम्हारी आराधना से मैं प्रसन्न हूं अभीष्ट वर माँगो। ढुंढ ने स्तुति करते हुए कहा कि हे शरणागत वत्सल भगवन्! मुझे यही वर चाहिए कि आप के चरण कमलों में मेरी अटल भक्ति हो और आपका सान्नि-ध्य प्राप्त हो। दूसरा वर यह कि इस लिंग का नाम ढुंढेश्वर हो तथा इसके दर्शन मात्र से मनुष्यों को सब सिद्धियाँ प्राप्त हों एवं निखिल पातकों का विनाश हो। उसकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए उस देववाणी ने कहा कि हे ढुंढ! तुम्हारे सब पातक नष्ट हो गए और तुम शिवलोक को बहुत शीघ्र पहुंच जाओगे। इस लिंगके दर्शन मात्र से मनुष्य के जन्म भर के कायिक, वाचिक एवं मानसिक पाप क्षण भर में नष्ट हो जाएँगे। उसी समय ढुंढ शिवलोक को प्राप्त हुआ और पुनः अपने सब गणों का नायक बनाया गया। स्कन्द पुराण में ढुंढेश्वर का बड़ा माहात्म्य कहा गया है:—

स एव सुकृती लोके स एव मम वल्लभः ।
यः पश्यति नरो भक्त्या लिङ्गं ढुंढेश्वरम्परम् ॥ ३० ॥
मानसं वाचिकं वापि कायिकं गुह्यसम्भवम् ।
प्रकाशं वाप्रकाशं च प्रसङ्गादपि यत्कृतम् ॥ ३१ ॥
तत्सर्वं यास्यति क्षिप्रं श्री ढुंढेश्वरदर्शनात् ॥

आवन्त्यखण्ड अ० च० लिं० मा० ३ अ०

तेईसवाँ रत्न

कर्कोटक नाग

एक बार कद्रू ने अपने पुत्रों को आज्ञा भङ्ग करने के कारण यह शाप दिया कि तुम सब जन्मेजय के यज्ञ में भस्म कर दिए जाओगे। अपनी माता के दिए हुए इस शाप को सुनते ही सब नाग अपने अपने जीवन की रक्षा के लिए इधर उधर सुरक्षित स्थानों को भागे। शेषनाग हिमाच्छन्न हिमालय पर्वत पर गए और वहाँ तप करने लगे। कालिय नाग मारे डरके यमुना के अगाध जल में निवास करने लगे। शंखचूड़ नामक नागेन्द्र मणिपूर को गए। अन्य असंख्य नाग कुरुक्षेत्र में तप करने लगे। कर्कोटक नागराज ब्रह्मलोक को गए और ब्रह्मदेव को सादर अभिवादन कर कहने लगे कि हे महाराज! हम लोग माता की गोद में ही बैठे थे उसी समय माता ने ऐसा भयङ्कर शाप दे दिया, आपने उनको रोका भी नहीं।

ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि क्या किया जाय, ऐसा ही होना था। राजा जन्मेजय का यज्ञ अवश्य होगा और उसमें तुम लोग अवश्य जलाए जाओगे। मेरी आज्ञा से तुम महाकाल वन में जाओ। वहाँ सब नागों के कल्याण के लिए भगवान् शङ्कर की आराधना करो उनकी कृपा से तुम लोगों का कल्याण होगा। पितामह के आदेश के अनुसार कर्कोटक महाकाल वन में जाकर बहुत शान्त-चित्त हो भगवान् सदाशिव की आराधना करने लगे। उनकी आराधना से परम प्रसन्न हो भगवान् शम्भु ने प्रकट हो कर वर दिया कि जो सर्प बड़े क्रूर, विषैले और पापाचरण करने वाले हैं उन्हीं का नाश होगा और धर्माचरण

करने वाले परम सात्विक सर्पों का दहन नहीं होगा। मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूं और वर देता हूं कि तुम्हें मेरी सायुज्य मुक्ति प्राप्त हो। इस वर के प्रभाव से जन्मेजय के यज्ञ में जितने क्रूर और खल सर्प थे वे तो नष्ट हो गए पर शेष, वासुकि, तक्षक आदि सत्वप्रधान नागों को कुछ भी कष्ट नहीं हुआ।

इन कर्कोटकेश्वर महादेव की आराधना से सब व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं, अभीष्टसिद्धि होती है, सौभाग्यवृद्धि होती है, पापों से मुक्ति होती है और सर्पों का भय नहीं होता। स्कन्द पुराण में इस का बड़ा माहात्म्य लिखा है:--

यं यं काममभिध्यायेन्मनसा भक्तिमान्नरः ।
तं तं दुर्लभमाप्नोति कर्कोटेश्वरदर्शनात् ॥ २१ ॥
व्याधितो व्याधितो मुक्तो दुःखी दुःखात् प्रमुच्यते ।
दर्शनात्तु भवेत् सद्यः सर्वपातकवर्जितः ॥ १८ ॥

आवन्त्यखण्ड अ० च० लिं० मा० १० अ०

चौवीसवाँ रत्न

देवर्षि नारद

एक बार देवर्षि नारद विविध लोकों में पर्यटन करते हुए श्वेतद्वीप पहुंचे। वहाँ के एक सरोवर में परम सुन्दरी कोई कन्या दिखाई पड़ी। नारद ने उसके समीप जा कर पूछा कि हे भद्रे! तुम इस निर्जन स्थान में क्यों निवास करती हो? तुम कौन हो और यहाँ किस कार्य से आई हो? यदि मेरे लायक कोई कार्य हो तो मुझे बताओ मैं यथाशक्ति सहायता करने को तयार हूं। नारद के वचन को सुन कर उसने क्षण भर के लिए आँखें बन्द कर लीं और मौन धारण कर लिया। इतने ही समय में नारद का सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो गया और सब वेद, शास्त्र आदि विस्मृत हो गए। अपनी ऐसी हालत देख कर नारद को बड़ा आश्चर्य और विषाद हुआ। बहुत दुःखित हो कर नारद उसी कन्या की शरण गए और उसे ध्यानपूर्वक देखने लगे। उसके शरीर में एक पुरुष दिखाई दिया। उस पुरुष के वक्षःस्थल में एक अन्य पुरुष और उसके भी हृदय में एक तीसरा पुरुष दिखाई दिया। यह दृश्य देखकर नारद के मन में और

भी अधिक आश्चर्य हुआ और वे उस कुमारी से अपनी विद्या के लोप का कारण पूछने लगे।

उस कन्या ने उत्तर दिया कि मेरे शरीर में स्थित यह दिव्य पुरुष ऋग्वेद है, दूसरा यजुर्वेद है और तीसरा सामवेद। तीनों अग्नि और तीनों देव मेरे शरीर में स्थित हैं। इतना कह कर वह कुमारी उनके सामने से ही गायब हो गई। यह देख कर तो नारद को और अधिक आश्चर्य हुआ। वे अपने मन में सोचने लगे कि तीर्थराज प्रयाग में जाने से कदाचित् मुझे वेद प्राप्त हो जाएँ। ऐसा सुना जाता है कि वहाँ अक्षयवट के समीप सावित्री का निवास है।

ऐसा विचार कर वे प्रयाग गए और वहाँ परम दुष्कर तप करने लगे। उनके तप से संतप्त होकर प्रयाग मूर्ति धारण कर उनके समीप आए। वे कहने लगे कि हे ब्रह्मपुत्र नारद! मैं आपके भीषण तप से डर रहा हूं अब मुझे अधिक संतप्त न कीजिए। आइये, हम लोग महाकाल वन में चल कर भगवान् शंकर की आराधना करें। उनकी आराधना से आपको पुनः सब विद्याएँ प्राप्त हो जाएँगी। नारदजी उनके विचार से सहमत हो गए और वे दोनों महाकाल वन में पहुँचे। वहाँ प्रयागराज ने भगवान् जी की साङ्गोपाङ्ग पूजा की और शुद्ध हृदय से बड़ी स्तुति की।

प्रयागराज द्वारा पूजित होने पर भगवान् शिव बहुत प्रसन्न हुए और प्रकट हो कहने लगे कि हे प्रयागराज! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो कर वर देने के लिए आया हूं। मेरे दर्शनों से तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि होगी। मेरे दर्शन कभी विफल नहीं हो सकते। तीर्थराज ने जब ऐसे वचन सुने तो वे साष्टाङ्ग प्रणाम कर प्रार्थना करने लगे कि हे महाराज! सावित्री के प्रभाव से महात्मा नारद का सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो गया है सभी वेद, और वेदाङ्ग उन्हें विस्मृत हो गए हैं। इस कारण वे परम आर्त हो रहे हैं। हे भगवन्! ऐसा वर दीजिए कि उनको पहिले का सम्पूर्ण ज्ञान पुनः प्राप्त हो जाए।

इस प्रकार प्रयागराज प्रार्थना कर ही रहे थे कि इतने में उसी लिंग के मध्य से सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग और पुराणों समेत ब्रह्मा जी प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि हे नारद! इन शिवलिङ्ग की आराधना से तुम्हें वेद और धर्मशास्त्रों का पूर्ण ज्ञान पुनः प्राप्त हो जाएगा। इतना कहते ही नारद ऋषि को पूर्ववत् ही सब विद्याओं की स्फूर्ति हो गई। सभी वेद, वेदाङ्ग तथा शास्त्र उन्हें तत्क्षण करतलामलक के समान भासित होने लगे।

इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति से नारद महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहने कि तीर्थराज प्रयाग की कृपा से ही मुझे ज्ञान की प्राप्ति हुई है अतः महादेव का नाम प्रयागेश्वर होगा। इनके दर्शनों से स्वर्ग और अपवर्ग यास प्राप्त होंगे। सौ अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्य इनके दर्शनमात्र से प्राप्त हो शरीर को सुखा देने वाले तप करने से कोई लाभ नहीं, इनके दर्शनों ही से वा फल की प्राप्ति होती है। जो गति ऊर्ध्वरेता योगियों को प्राप्त होती है वही गति श्रीप्रयागेश्वर के भक्तिपूर्वक दर्शन करने वालों को मिलती है। स्कन्द पु के आवन्त्यखण्ड में इनके दर्शनों का बड़ा माहात्म्य लिखा है।

यो गतिर्योगयुक्तस्य सत्वस्थस्य मनीषिणः।
सा गतिर्जायते सम्यक् प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥ ४८ ॥
माघमासे समेष्यन्ति प्रयागेश्वरदर्शनम्।
कर्तुं ये मानुषास्तेषामश्वमेधः पदे पदे ॥ ४९ ॥

अ० च० लि० मा० ५८ अ०

पच्चीसवाँ रत्न

परशुराम

त्रेता युग में पृथ्वी का भार हरने के लिए अपने अंश से परशुराम के में भगवान् ने अवतार लिया। वे बड़े ही ऊर्जस्वी एवं सर्व-गुण-सम्पन्न थे पिता की भक्ति तो उनसे बढ़ कर और कहीं पाई नहीं जा सकती। पिता आज्ञा के पालन के लिए उन्होंने अपनी माता का सिर काट लिया। इसी भ से प्रसन्न होकर उनके पिता ने उन्हें वर दिया था कि संसार का कोई भी रा तुम्हें नहीं जीत सकेगा।

एक बार हैहय कुलमें समुत्पन्न सहस्रबाहु ने इनके पिता जमदग्नि का कामधेनु को लालच से काट लिया। उसके द्वारा अपने पिता का वध देख उन्होंने सहस्रार्जुन के हजारों हाथों के काट डालने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रति के अनुसार वे आँखें लाल कर गर्जते हुए सहस्रार्जुन के समीप पहुँचे और उसकी हजार बाहुओं को उसी प्रकार काट डाला जिस प्रकार हाथी कमलव में हजारों कमलनालों को एक क्षण में अनायास छिन्न-भिन्न कर डालता है

उसे रथ पर से नीचे पटक दिया। इतने पर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने इक्कीस वार भूमण्डल के समस्त क्षत्रियों का विनाश कर दिया। पृथ्वी में क्षत्रियों का कहीं नाम तक नहीं रह गया। जो गर्भ में बालक रह गए थे उन्हीं से आज कल के क्षत्रियों की उत्पत्ति है।

इन क्षत्रियों के वध करने का परशुराम जी को पाप लगा। उस पाप के मार्जन के लिए उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ में सम्पूर्ण वसुन्धरा दान कर कश्यप ऋषि को दे डाली। असंख्य ब्राह्मणों को हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, सोना, चाँदी आदि दिए। यह सब करने पर भी परशुराम जी को अनेक प्राणियों के वध के पाप से मुक्ति नहीं मिली। तदनन्तर वे रैवतक पर्वत पर गए और वहाँ पर बहुत सालों तक उग्र तप करते रहे। कठिन तप करने पर भी हत्या से मुक्ति न मिलने पर परशुराम ने महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमालय आदि पवित्र पर्वतों की यात्रा की। तत्पश्चात् नर्मदा, यमुना, चन्द्रभागा, गङ्गा, इरावती, वितस्ता, चर्मण्वती, गोमती, गोदावरी आदि पुण्यसलिला नदियों में श्रद्धापूर्वक अवगाहन किया। इसी के साथ साथ गया, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर, प्रभास आदि तीर्थों का सेवन किया पर हत्या-जनित पाप से मुक्ति नहीं मिली।

अपने इस कठिन परिश्रम को निष्फल देख कर श्री परशुराम जी अपने मन में सोचने लगे कि मैंने तीर्थों का सेवन किया, पवित्र नदियों के जल से अपने पापों के प्रक्षालन का प्रयत्न किया, घोर तपस्या की उस पर भी मुझे हत्या से छुटकारा नहीं मिला। इससे ज्ञात होता है कि आज कल ये सब निःसत्व हो गए हैं और इनका सेवन करना व्यर्थ है। मैंने अपने शरीर को व्यर्थ ही कष्ट दिया। वे इस प्रकार दुःखित हो ही रहे थे कि इतने में देवर्षि नारद आ पहुँचे। उन्हें सादर अभिवादन कर परशुरामजी कहने लगे कि हे देवर्षि नारद! पिता की आज्ञा से मैंने अपनी माता का वध किया और पिता के वध करने वालों से बदला लेने के लिए भूमण्डल के समस्त क्षत्रियों का विनाश किया। यह सब करने पर मुझे हत्याजनित पाप का भय हुआ और मैंने उसके निवारण के लिए अनेक तप और तीर्थ किए पर किसी से हत्या का प्रायश्चित्त नहीं हुआ।

तब नारद जी बोले कि महाकाल वन में ब्रह्महत्या-जनित पाप का निवारण करने वाला सब सिद्धियों का देने वाला जटेश्वर नामक शिव महालिंग है। हे परशुराम! तुम वहाँ बहुत शीघ्र जाओ और उनकी आराधना करो उनके प्रसाद से सब पापों से मुक्त हो जाओगे।

उनके उपदेश के अनुसार परशुराम जी उसी समय उनको प्रणाम क सर्व कामना परिपूरक पवित्र महाकाल वन को प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँच श्रीजटेश्वर की आराधना चिरकाल तक की। उनकी एकनिष्ठ आराधना प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने उन्हें दर्शन दिए। उनके परमानन्दप्रद दर्शन पा परशुरामजी मुग्ध हो गए और स्तुति करने लगे। वे कहने लगे कि हे महारा आप शरणागतवत्सल हैं, दीन जनों के हित करने के लिए ही आप अनेक धारण करते हैं। हे करुणावरुणालय! मैं इस समय हत्याजनित पाप से द जा रहा हूं। मेरा इससे उद्धार कीजिए। आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे य वर दीजिए कि आपके चरणपङ्कजों में मेरा अविचल एवं गाढ़ प्रेम हो।

भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर उन्हें हत्या के पाप से मुक्त कर दिया औ कहा कि आज से इस लिङ्ग का नाम तुम्हारे ही नाम पर होगा। इसे रामेश्वर कहेंगे। जो लोग रामेश्वर की पूजा भक्तिपूर्वक करेंगे उनके जन्म के पाप जल जाएँगे। हजारों ब्रह्महत्या करने का भी पाप श्री रामेश्वर के दर्श करने से ही विलीन हो जाएगा। स्कन्द पुराण के आवन्त्य खण्ड में इसक बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

भक्त्या ये पूजयिष्यन्ति देवं रामेश्वरम्परम्।
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात्॥ ४७॥
यच्चापि पातकं घोरं ब्रह्महत्यासहस्रकम्।
तत्पापं विलयं याति रामेश्वरसमर्चनात्॥ ५०॥

अ० च० लि० मा० २९ अ

छब्बीसवाँ रत्न

महर्षि मृकण्ड

प्राचीन काल में मृकण्ड नामक एक बड़े तपोनिष्ठ महर्षि थे। वे सब वेदों के पूर्ण ज्ञाता एवं सम्पूर्ण शास्त्रों के विद्वान् थे। परन्तु किसी कारणवश उनके कोई पुत्र नहीं था। पुत्र के अभाव से वे बड़े चिन्तित रहते थे क्योंकि सन्तान-रहित मनुष्य पितृ ऋण से मुक्त नहीं हो सकता और इसी कारण उसे सद्गति

नहीं प्राप्त हो सकती। इसी दुःख से दुःखित हो कर पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने तप करने का निश्चय किया।

तपस्या करने के लिए वे अपने आश्रम से हिमालय पर्वत को चले गए और वहाँ अनेक प्रकार के कठिन तप करने लगे। वर्षों उन्होंने केवल वायु पीकर ही समय बिताया। वे कुछ काल तक सिर नीचे किए और पैर ऊपर किए तप करते रहे। चिर काल तक साग पात खा कर शरीर की रक्षा की। इस प्रकार कठिन तप द्वारा भगवान् शङ्कर की आराधना करते हुए उन्हें बारह वर्ष बीत गए।

इतना कठिन तप करने पर भी शिव जी जब प्रसन्न नहीं हुए तब पार्वती जी उनसे प्रार्थनापूर्वक पूछने लगीं कि हे महाराज! महर्षि मृकण्ड चिर काल से पुत्रप्राप्ति के लिए उग्र तप कर रहे हैं पर आप उनके ऊपर कृपा क्यों नहीं करते? वे अपने तेज से समस्त पर्वत को देदीप्यमान कर रहे हैं और सलिलाशयों को शुष्क कर रहें हैं। उनके दुष्कर तप से स्वर्गवासी क्षुभित हो रहे हैं। सूर्य और चन्द्रमा थर्रा रहे हैं। पृथ्वी और आकाश कप रहे हैं। यदि आप इस तप का अन्त नहीं करेंगे तो अकाल ही में प्रलय हो जाएगा।

तब शिवजी ने पार्वती जी से कहा कि हे प्रिये! ये ऋषि अयोनिज पुत्र चाहते हैं। उनकी कामना यह है कि उनका पुत्र चन्द्रमा के समान मनोहर एवं लोकप्रिय हो। नील कमल के समान उसके नेत्र हों। इन्द्र के समान प्रभावशाली तनय वे पाना चाहते हैं। भला ऐसा पुत्र कभी मिल सकता है।

पार्वती जी ने उनके वचन सुन कर विनयपूर्वक कहा कि हे महाराज! यदि ऐसी कठिन तपस्या करने वाले महामुनि को भी आप अभीष्ट वर न देंगे तो किस को देंगे। आप तप के फल देने वाले कहे जाते हैं आप को तो इस यश की रक्षा करनी चाहिए। यदि आप अभीष्ट वस्तु नहीं देंगे तो आपकी शरण कौन आएगा। इस तपस्वी ब्राह्मण ने अपना शरीर सुखा दिया है और तप के प्रभाव से अपने पाप भी जला दिए हैं। उसे यथेच्छित पुत्र अवश्य मिलना चाहिए। इसके लिए मैं आप से आग्रहपूर्वक प्रार्थना करती हूं।

पार्वतीजी ने जब इस प्रकार प्रार्थना की तो शिव जी पार्वती जी को अपने साथ लेकर मृकण्ड ऋषि के समीप पहुंचे और उन्हें महाकाल वन में तपस्या करने का उपदेश दिया। मृकण्ड मुनि आशापूर्ण हृदय से महाकाल वन को गए और वहाँ सब पापों के हरने वाले तथा पुत्र के देने वाले शिव लिङ्ग को

देखा। उसी लिङ्ग के समीप मुनिने कठिन तप करना प्रारम्भ किया। कुछ का के अनन्तर उनके तप से प्रसन्न होकर भगवान् आशुतोष उमा के सहित उस लिङ्ग से प्रकट हुए और कहने लगे कि हे महामुने! मैं शिव हूं। तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो कर वर देने आया हूं। मैं जानता हूं कि तुम अयोनिज पुत्र चाहते हो। इस लिए मैं तुम्हें वर देता हूं कि तुम्हारे अयोनिज पुत्र हो और वह अल्प काल ही से ऐश्वर्य तथा ज्ञान से सम्पन्न हो। उसकी आयु बहुत बड़ी हो और वह सर्वज्ञ विद्वान् हो।

शिवजी के मुख से ऐसे वचन निकलते ही मृकण्ड के सामने एक पुत्र प्रादुर्भाव हुआ और उसका नाम मार्कण्डेय रक्खा गया। मार्कण्डेय जी उत्पन्न होते ही शिव जी को, पार्वती जी को और अपने पिता को प्रणाम कर तप करने बैठ गए और भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगे। इस प्रकार तप कर मार्कण्डेय जी ने भी शिवजी से वर पाया। मृकण्ड और मार्कण्डेय द्वारा पूजित उस शिवलिङ्ग का नाम मार्कण्डेयेश्वर पड़ गया। सर्वगुणसम्पन्न परमतपोनिधि सर्वविद्याविशारद पुत्र पाकर मृकण्ड परम सन्तुष्ट हुए और मार्कण्डेयजी भी अनेक वर पा कर उसी महाकाल वन में तप करने लगे

मार्कण्डेयेश्वर के दर्शन करने से मनुष्यों को परम आनन्द देने वाली गति मिलती है। कोई तो साक्षात् शिव हो जाते हैं, कोई गणनायक बन जाते हैं, कोई सिद्ध हो जाते हैं। जो भक्त सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से इन की अभ्यर्चना करते हैं वे सब दुःखों से मुक्त हो दीर्घायु का आनन्द लेते हैं। स्कन्द पुराण में मार्कण्डेयेश्वर के पूजन और दर्शन का बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

त्र्यक्षा गणेश्वराः सिद्धाः सिद्धगन्धर्वसेविताः।
ते भविष्यन्ति सततं मम भक्ताश्च ये नराः॥ ४१॥
ये मां सम्पूजयिष्यन्ति हृद्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः।
दीर्घायुषो भविष्यन्ति ते सदा दुःखवर्जिताः॥ ४२॥

आवन्त्य खण्ड--अ० च० लिं० मा० ३६ अ०

सत्ताईसवाँ रत्न

महर्षि च्यवन

च्यवन ऋषि भृगु महर्षि के पुत्र थे। उन्होंने अपने जीवन का बड़ा भाग नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के साथ उग्र तप में ही बिताया। परम पावनी वितस्ता नदी के सुरम्य तट पर आहार-विहार छोड़ कर एक आसन से बैठ बहुत वर्षों तक कठिन तपस्या की। उनके शरीर पर बामी जम गई और उसके ऊपर घास जम गया। बहुत समय व्यतीत होने के कारण वह मिट्टी के टीले के समान प्रतीत होने लगा। दैववशात् उनकी चमकती हुई आँखों के आगे चीटियों ने छेद कर दिया।

एक बार परम धर्मात्मा राजा शर्याति अपनी चार हजार रानियों को तथा एक मात्र तनया सुकन्या को अपने साथ लेकर विहार करने के लिए उसी वन में गए। सुकन्या अपनी सहेलियों को साथ ले कर इधर उधर घूमती हुई उसी बामी के सन्निकट जा पहुंची। वह बड़े कुतूहल के साथ उसे देखने लगी। देखते देखते उसकी दृष्टि महर्षि च्यवन की आँखों पर जा पड़ी जोकि चीटियों के बनाए छिद्रों में से चमक रही थीं। सुकन्या ने परीक्षा करने के लिए एक काँटे से उन नेत्रों में छेद कर दिया। छेद करते ही उसमें से रक्त की धारा निकल पड़ी।

इस महा अपराध के कारण शर्याति के सब सहचारियों का मूत्रावरोध हो गया और समस्त सेना में हलचल मच गई। राजा इस बात से बहुत दुःखित और कुपित हुए। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति से पूछा कि किसी ने कोई अपराध तो नहीं किया। तब सुकन्या ने अपने पिता को दुःखित होते देख मुनि की आँखें फोड़ने का सब वृत्तान्त यथावत् कह सुनाया।

यह समाचार सुनते ही शर्याति दौड़े हुए उस बामी के समीप गए उसकी मिट्टी को हटवाते ही महर्षि च्यवन दिखाई दिए। उन्हें देख वे साष्टाङ्ग प्रणाम कर कहने लगे कि हे महाराज! इस बालिका ने अज्ञान से आप को दारुण कष्ट पहुंचाया। इस के लिए आप क्षमा करें। इस कन्या को मैं आप की सेवा में समर्पण करता हूं। इसे आप भार्या के रूप में स्वीकार करें। यह आप की सेवा प्रेम से करेगी। परम दयालु महर्षि च्यवन ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपराध क्षमा किया। राजा तो अपनी राजधानी को चले गए और सुकन्या महर्षि की सेवा में अनन्य मन से प्रवृत्त हुई।

एक बार अश्विनी कुमार उस आश्रम में आए। सुकन्या के पातिव्रत्य धर्म से प्रसन्न हो कर उन्होंने च्यवन महर्षि को परम मनोहर यौवन-सम्पन्न

रूप दे दिया। यौवन और सुन्दर रूप पाकर च्यवन महर्षि परम आनन्दित और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि देवों के वैद्य अश्विनीकुमारों को यज्ञ में भाग दिला मानूँगा और सोमरस पिला कर छोड़ूँगा। इस बात से इन्द्र बहुत असन्तुष्ट और कहने लगे कि अश्विनी कुमार वैद्य हैं। वैद्य की वृत्ति निन्दनीय हो अतः ये यज्ञ भाग के भागी कभी नहीं हो सकते। यदि तुम उन्हें सोम पिलाने प्रयत्न करोगे तो मैं तुम्हें वज्र से मार डालूँगा।

देवराज इन्द्र की ऐसी बातें सुन कर च्यवन ऋषि ने विचार किया कि महेश के इन्द्र वरुण आदि देवता नौकर चाकर हैं जिनकी आज्ञा से ही वे काम करते हैं जो सृष्टि, संरक्षण और संहार में सर्वथा समर्थ हैं उन्हीं आराधना करनी चाहिए। इसी से अभीष्ट-सिद्धि होगी। ऐसा निश्चय च्यवन मुनि महाकाल वन में गए। वहां पर शिवलिङ्ग संस्थापित कर भग का पूजन करने लगे। उनके तप को देखकर इन्द्र कुपित हुए और उनके मा के लिए वज्र चलाया पर भगवान् शङ्कर ने पहिले ही उन्हें अभय कर दिया इस लिए इन्द्र की बाहु का स्तम्भन हो गया और च्यवन ऋषि के ऊपर चल ही न सका।

इसी बीच उस लिङ्ग में से एक ज्योति निकली जिसकी ज्वाला से त्रैलो जलने लगा। सब देवता उस ज्वाला से सन्तप्त हो गए और उनकी आँखें से अन्धी हो गईं। वे सब चिल्ला कर इन्द्र से अश्विनी कुमारों को यज्ञ बनाने की प्रार्थना करने लगे। देवों के कहने पर इन्द्र ने मारे डरके च्यवन ऋ को प्रणाम करते हुए कहा कि हे महर्षे! आज से अश्विनी कुमारों को का भाग मिलेगा और वे सोमपान कर सकेंगे। इन शिवलिङ्ग का नाम अब च्यवनेश्वर होगा और उनके दर्शन से जन्म जन्मान्तर के पाप क्षण भर में नष्ट जाएँगे। मन की दुर्लभ कामनाएँ भी इन की आराधना से अवश्य पूर्ण होंगी इतना कह कर इन्द्र सब देवों को साथ लेकर स्वर्ग को गए और तभी से अश्वि कुमारों को यज्ञ में भाग मिलने लगा।

स्कन्दपुराण के आवन्त्यखण्ड में श्रीच्यवनेश्वर महादेव का बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

भक्ता ये पूजयिष्यन्ति देवेशं च्यवनेश्वरम्।
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात्॥ ५१॥

यं यं काममभिध्यायेन्मनसाभिमतं नरः ।
तं तं दुर्लभमाप्नोति च्यवनेश्वरदर्शनात् ॥ ५३ ॥

अ० च० लिं० मा० ३० अ०

अट्ठाईसवाँ रत्न

महर्षि कपिल

महाराज सगर ने एक बार सौ अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। उसी निश्चय के अनुसार सगर ने ९९ यज्ञ कर डाले। जब अन्तिम यज्ञ करने के लिए अश्वमेधीय अश्व पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए छोड़ा गया तो इन्द्र को अपने सिंहासन के जाने का भय हुआ। इसी भय से भीत हो कर वे उस घोड़े को महर्षि कपिल के समीप जहाँ वे बैठे तप कर रहे थे बाँध आए।

सगर के साठ सहस्र पुत्र उस अश्व को खोजते खोजते थक गए पर कहीं उसका पता नहीं चला। अन्त में पृथ्वी को खोद कर वे सातवें पाताल में पहुँचे। वहाँ उन्होंने समाधि में मग्न महर्षि कपिल के समीप ही एक खूँटे से बँधे हुए उसी घोड़े को देखा। उसे देखते ही वे सब परम कुपित हुए और मुनि को ढोंगी और कपटी समझ कर दुर्वचन सुनाने लगे।

उन दुर्वचनों के सुनने से महर्षि कपिल की समाधि टूट गई और उन्होंने क्रोध से लाल आँखों से उन सगरात्मजों की ओर देखा। उनके दृष्टिपातमात्र से वे क्षण भर में भस्म हो गए और मुनि के सामने राख का ढेर लग गया।

राजकुल का इस प्रकार अपने शरीर से विनाश देख कर परम कारुणिक कपिल महर्षि अत्यन्त दुःखित और चिन्तित हुए। वे अपने मन में विचारने लगे कि मैंने सब प्रकार के संग का परित्याग कर दिया है, चित्त को सभी लौकिक वासनाओं से पूर्णतया हटा लिया है, एकान्त में बैठ कर तप कर रहा हूं। इस पर भी मेरे शरीर से साठ हजार राजपुत्रों का विनाश हो जाय तो मुझे शतशः धिक्कार है।

इस प्रकार पश्चात्ताप करते करते उनके मन में यह बात आई कि इस पाप से मुक्त होने के लिए भगवान् शङ्कर की आराधना को छोड़ अन्य कोई उपाय नहीं। अतः उन्हीं आशुतोष भगवान् की आराधना करनी चाहिए। ऐसा निश्चय कर वे पाताल के एकान्त वास का परित्याग कर पावनसलिला नर्मदा नदी के तट पर आसन जमा कर तप करने के लिए बैठ गए।

७

उसी पवित्र रमणीक तट पर उन्होंने एक शिव लिङ्ग स्थापित किया। उं लिङ्ग के सामने परदुःखकातर महर्षि उग्र तप करने लगे। अनेक प्रकार के व्र उपवास, स्नान, दान, जप आदि से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर कपिल ऋ ने उस दारुण पाप से मुक्ति पाई। सगर के वंश में उत्पन्न भगीरथ ने स्वर्ग भागीरथी को ला कर अपने पूर्वपुरुषोँ का उद्धार किया।

कपिल महर्षि ने इन शिवलिंग की आराधना कर के घोर पापोँ से मुि पाई इस लिए इनका नाम कपिलेश्वर पड़ गया। श्रीकपिलेश्वर के पूजन करने एक हजार गोदान करने का पुण्य मिलता है। सात जन्मोँ तक अतुल रूप, ऐश्वर्य, सौभाग्य एवं सन्तान की प्राप्ति होती है। स्कन्द पुराण में इ पूजन का बड़ा माहात्म्य बताया गया है।

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत् परमेश्वरम्।
गोसहस्रफलं तस्य लभते नात्र संशयः॥ १२ ॥
रूपमैश्वर्यमतुलं सौभाग्यं सन्ततिं पराम्।
लभते सप्त जन्मानि नित्यं नित्यं पुनः पुनः॥ १६ ॥

रेवाखण्ड—अ० १

उन्तीसवाँ रत्न

उपमन्यु

उपमन्यु एक महर्षि के पुत्र थे। वे शैशवावस्था में अपनी माता के साथ मा के घर में रहते थे। मामी अपने लड़के पर अधिक प्रेम करती थी। वह उसी अच्छी अच्छी चीजें खाने को देती थी और खूब दूध पिलाती थी। उपमन्यु न तो स्वादिष्ट भोजन ही देती और न यथेच्छ दूध ही पीने को देती।

एक बार अपने ममेरे भाई को दूध पीते देख उपमन्यु ने अपनी माता से दू माँगा पर उस तपस्विनी के पास दूध नहीं था इस लिए उसने चावल पीस उसे पानी में मिला कर सफेद रँग का दूध सा बना कर उसे दे दिया। उपमन् को इतनी समझ थी कि वह दूध पहचान सके। इस लिए उसने चावल के पा को मारे क्रोध के फेंक दिया और दूध के लिए रोने लगा।

उसका रोना देख कर माता को बहुत दुःख हुआ और वह अपने बच्चे को गोद में बैठा कर सिर चूम कर अपने हाथोँ से उसके आँसू पोछ कर कहने लगी कि हे प्रिय वत्स ! संसार में सभी सुख के सामान वर्तमान हैं पर भाग्यहीन पुरुष को प्राप्त नहीं होते। यह वसुन्धरा रत्नोँ से भरी है पर वह भाग्यशाली को ही रत्नमयी दिखाई देती है अन्य को एक दम शून्य। स्वादिष्ट पान-भोजन, सुखद राज्य, स्वर्ग, मोक्ष आदि तभी प्राप्त होते हैं जब भगवान् शङ्कर तुष्ट होते हैं। हम लोगोँ ने पूर्व जन्म में महादेवजी की सेवा में कुछ समर्पण नहीं किया इस लिए इस जन्म में कहाँ से मिलेगा।

माता के ऐसे करुण वचन सुन कर महाप्रतापी उपमन्यु बोले कि हे माता जी ! आप शोक का परित्याग करें; मैं शिव जी को किसी प्रकार से अवश्य प्रसन्न करूँगा। उनको प्रसन्न कर के मैं दूध का समुद्र प्राप्त करूँगा।

इस प्रकार सान्त्वनापूर्ण वचनोँ से माता को धैर्य दे कर उपमन्यु हिमालय पर्वत पर तपस्या करने चले गए। केवल वायु पी कर वे अनेक वर्षों तक उग्र तप करते रहे। उनके तप के तेज से संसार जलने लगा और इन्द्रादि देवता भी उस सन्ताप को नहीं सह सके। तब वे भगवान् विष्णु की शरण गए और उस सन्ताप से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे।

भगवान् विष्णु ने ध्यान लगा कर देखा तो उन्हें इस सन्ताप का सब कारण मालूम हो गया। वे झटपट सब देवोँ को साथ लेकर शङ्कर भगवान् के मन्दिर में पहुँचे और कहने लगे कि उपमन्यु नामक ब्राह्मण-पुत्र आपको प्रसन्न करने के लिए उग्र तप कर रहा है। उसके तप के तेज से संसार जला जा रहा है। इस लिए आप वर दे कर उसकी अभीष्टसिद्धि कीजिए और संसार को सुखी और शान्तिपूर्ण कीजिए।

विष्णु के ऐसे वचन सुन कर भगवान् शिव इन्द्र का रूप धारण कर ऐरावत हाथी पर सवार हो कर अनेक सुर, असुर, सिद्ध, चारण आदि के साथ उसी तपोवन में पहुँचे। उपमन्यु ने अपने सामने इन्द्र को देख कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा कि आप के चरणोँ की रज से मेरा आश्रम पवित्र हो गया। आप के सर्वकल्याणप्रद दर्शनोँ से मेरा जीवन कृतकृत्य हो गया।

उपमन्यु को इस प्रकार प्रार्थना करते हुए देख कर इन्द्ररूपधारी शङ्कर भगवान् ने उनसे कहा कि मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूं जो वर माँगना हो माँगो। तुम्हारी सभी कामनाएँ पूर्ण करने के लिए मैं प्रस्तुत हूं। उपमन्यु ने

हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि हे महाराज ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि शङ्कर भगवान् के चरण कमलों में मेरी अविचल भक्ति हो।

उपमन्यु की प्रार्थना से कुछ कुपित से होते हुए इन्द्ररूपी शिव कहने लगे कि मैं सब देवों का राजा हूं। तीनों लोकों का अधिपति हूं। सभी देवता, महर्षि, गन्धर्व मुझे सविनय नमस्कार करते हैं। शिव की सेवा में क्या रक्खा है? वे तुम को क्या दे सकते हैं? हे विप्रर्षे! तुम मेरी ही भक्ति करो। मैं तुम्हें सब प्रकार का कल्याण दूँगा।

इन्द्र के ऐसे कर्णकटु वचन सुन कर उपमन्यु ने कहा कि इन वचनों से प्रतीत होता है कि कोई शिवद्रोही राक्षस इन्द्र का रूप धारण कर मेरे तप में विघ्न डालने के लिए आया है और भगवान् सदाशिव की निन्दा कर रहा है। शास्त्र में लिखा है कि जो मनुष्य शिव की निन्दा करने वाले का वध कर स्वयं शरीर का परित्याग कर देता है उसे शिव लोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य शिवनिन्दक की जीभ उखाड़ लेता है वह इकोस पीढ़ी का उद्धार कर स्वयं शिव लोक को चला जाता है। अब मैं दूध पीने की इच्छा को दूर रख कर शिवास्त्र से इसको मार कर अपना शरीर त्याग दूँगा। माता ने ठीक कहा था कि पूर्व जन्म में शिव की आराधना किए बिना ऐहिक अथवा पारलौकिक भोग कदापि प्राप्त नहीं हो सकते। अब शरीर त्याग कर दूसरे जन्म में सुख भोगूँगा।

ऐसा निश्चय कर उपमन्यु ने मुट्ठी भर भस्म उठा ली और अथर्वास्त्र से इन्द्र को भस्म करने के लिए उद्यत हो गए। उसी समय भगवान् शम्भु ने अपना असली रूप धारण कर लिया और जगदम्बा पार्वती समेत उपमन्यु के सामने उपस्थित हुए और कहने लगे कि हे वत्स! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूं। मैं तुमको अपना पुत्र बनाता हूं। यह जगतपालनकर्त्री तुम्हारी माता हैं। तुम यथेष्ट भोगों का भोग करो। तुमको मैं केवल क्षीर का सागर ही नहीं किन्तु मधु, दधि, घृत आदि के समुद्र भी देता हूं। इनका तुम यथेष्ट उपभोग करो। जितने भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थ हैं वे सब तुम्हारे सामने उपस्थित रहेंगे। तुमको मैं अमर बनाए देता हूं। इसके अतिरिक्त तुम्हें जिस वस्तु की अभिलाषा हो कहो मैं अवश्य दूँगा। पार्वती जी ने भी उपमन्यु की अटल भक्ति देख कर ब्रह्मविद्या एवं योग की सम्पूर्ण विभूतियाँ दे दीं और उनसे कहने लगीं कि तुम सदा कुमार ही बने रहोगे और रोग और वार्धक्य से कभी पीड़ा नहीं पाओगे।

जगत्पिता परमेश्वर को तथा जगन्माता जगदीश्वरी को अपने ऊपर परम

प्रसन्न देख कर उपमन्यु हर्षगद्गदवाणी से उनकी स्तुति करने लगे और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगे कि मुझे आपने सब कुछ दे दिया, अब कुछ नहीं चाहिए। मैं केवल यही प्रार्थना करता हूं कि आपके चरण कमलों में मेरी अटल भक्ति बनी रहे और आपका सान्निध्य मुझे सदा प्राप्त हो। श्री महादेवजी तथा पार्वती जी तथास्तु कह कर अन्तर्धान हो गए और उपमन्यु अपनी माता के चरणों की सेवा करते हुए सब प्रकार के भोग भोगने लगे। इस प्रकार भगवच्चरणों के अनुग्रह से उन्होंने सब भोग प्राप्त किए।

तीसवाँ रत्न

श्वेत मुनि

प्राचीन काल में श्वेत नाम के एक बड़े तपस्वी मुनि थे। उनकी आयु समाप्त हो चुकी थी और मरणासन्न थे इस लिए वे बहुत दुःखित हुए। अधिक आयु पाने के लिए वे बहुत उत्कण्ठित थे अतः भगवान् मृत्युञ्जय की आराधना करने लगे। वे एक पर्वत की कन्दरा में निराहार रह कर शङ्कर भगवान् की शास्त्रोक्त विधि से पूजा करते और अनेक प्रकार की स्तुति करते थे। पवित्र रुद्राध्याय का पाठ भगवान् को सुनाते थे।

परन्तु जब उनके दिन पूरे हो गए तो महातेजस्वी काल उनके सामने आ धमका। श्वेत मुनि को विश्वास था कि मैं तो काल के भी काल की उपासना कर रहा हूं, काल मेरा क्या बिगाड़ सकता है। अतः वे और भी अनन्यमनस्कता के साथ महामृत्युञ्जय मन्त्र से त्र्यम्बक भगवान् की पूजा करने लगे।

काल भला क्यों मानने लगा। वह कर्कश स्वर में बोला कि हे श्वेत! मेरे साथ यमलोक को चलो। इस पूजा पाठ से कुछ नहीं हो सकता। मेरे फन्दे में पड़ने पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों में से कोई भी नहीं बचा सकता। हे मुने! अब तुम्हारी आयु समाप्त हो चुकी है इस लिए तुम्हें मेरे साथ अवश्य चलना होगा।

काल के ऐसे भयंकर वचन सुन कर भगवान् रुद्रका स्मरण करते हुए श्वेत मुनि कहने लगे कि हे काल! तुम मेरा क्या कर सकते हो, मेरे तो स्वामी भगवान् रुद्र हैं। वे इसी लिङ्ग में विराजमान हैं और मेरे ऐसे भक्तों की रक्षा में सदा तत्पर रहते हैं। उनके भक्तों की कभी कुछ हानि नहीं हो सकती। इस लिए हे महाकाल! तुम मेरे पास से चले जाओ।

काल को श्वेत मुनि का कथन सुन कर बडा क्रोध आया और वह भय सूरत बना कर सिंहनाद करता हुआ मुनि के अत्यन्त सन्निकट आ गया। आते ही उसने मुनि के गले में फन्दा डाल दिया और कहने लगा कि मुने! तो तुम मेरे फन्दे में आ गए। अब तुम्हारे बचानेवाला इस समय कहाँ है रुद्र कहां है और उनकी भक्ति का तुम्हें क्या फल मिला ? तुम तो कहते थे रुद्र इस लिङ्ग में हैं। अब तुम्हारे रुद्र चुप चाप क्यों बैठे हैं, तुम को क्यों नहीं ?

इस प्रकार महाकाल बक ही रहा था उसी समय भगवान् शङ्कर उसी से उमासमेत प्रकट हुए। श्वेत मुनि उनके दर्शन पाते ही स्तुति करने लगे काल उन अन्तकान्तक को देख न जाने कहां भाग गया। भगवान् शङ्कर ने मुनि को वर दिया कि तुम चिर काल तक इस संसार के अनेकों सुख भो अन्त में शिवलोक को प्राप्त होगे। काल तुमको कभी भयभीत न कर सके तुम्हारी इच्छाधीन मृत्यु होगी।

उसी समय आकाश से सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होने लगी देवों की दुन्दुभियाँ बजने लगीं। भगवान् मृत्युञ्जय उन्हें चिरायु प्रदा कैलास को चले गए और श्वेत मुनि अपनी कामनापूर्ति से परम सन्तुष्ट।

मृत्युञ्जय महादेव की आराधना से भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती है की अर्चना से मनुष्य के हृदय से शोक दूर हो जाता है। लिंग पुराण में आराधना का बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

तस्मान्मृत्युञ्जयं चैव भक्त्या सम्पूजये द्विजाः।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वेषामपि शङ्करम् ॥ २८ ॥
बहुना किं प्रलापेन संन्यस्याभ्यर्च्य वै भवम्।
भक्त्या चापरया तस्मिन् विशोका वै भविष्यथ ॥ २९

लिंग पुराण पूर्वार्ध अ० ३०

इकतीसवाँ रत्न

पराशर मुनि

वसिष्ठ और विश्वामित्र में बड़ा वैर रहता था। विश्वामित्र क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे परन्तु अपने तपोबल से ब्राह्मण बनना चाहते थे। उनकी घोर तपस्या के कारण सभी मुनि उन्हें ब्रह्मर्षि कहने लगे थे केवल वसिष्ठ उनको राजर्षि कहते रहे। इस बात पर वसिष्ठ और विश्वामित्र में कई बार भीषण युद्ध हुआ पर वसिष्ठ के ब्रह्म तेज का विश्वामित्र सामना न कर सके।

युद्ध में पराजित हो कर विश्वामित्र ने कूटनीति से उनको नीचा दिखाना चाहा। एक बार उन्हों ने रुधिर नामक एक राक्षस को वसिष्ठ के समीप भेजा उसने वसिष्ठ के १०१ पुत्र, जिनमें शक्ति प्रधान थे, खा लिए। अपने तनयों का इस प्रकार विनाश देख कर वसिष्ठ बहुत दुःखित हुए और करुण क्रन्दन करने लगे। अपने कुल का क्षय देख कर वे अपनी पत्नी अरुन्धती के साथ पर्वत पर से पृथ्वी पर कूद पड़े। पृथ्वी माता ने उन्हें अधिक चोट न आने दी और उन दोनों के प्राण किसी प्रकार बच गए।

शक्ति की परम पतिव्रता पत्नी अदृश्यन्ती ने स्वयं पतिवियोग से अत्यन्त कातर होते हुए भी अपने कुल का सर्वनाश होते देख धैर्य से काम लिया और अपनी सास और ससुर को आश्वासन दिया। उस ने वसिष्ठ जी से कहा कि हे महाराज! आप अपने शरीर की रक्षा कीजिए जिससे मेरे गर्भ में स्थित अपने पौत्रको आप देख सकें। आप ही यदि शरीर का परित्याग कर देंगे तो उसकी रक्षा कौन करेगा?

अदृश्यन्ती के समझाने पर वसिष्ठ को कुछ धैर्य हुआ और वे किसी प्रकार पृथ्वी पर से उठे। अरुन्धती ने उठ कर उसके ऊपर बड़े स्नेह से हाथ फेरा। उन दोनों के उठते ही अदृश्यन्ती चेतनारहित हो कर भूमि पर गिर पड़ी। उसी समय उसके उदर के भीतर से वेद मन्त्र का उच्चारण हुआ। वसिष्ठ बहुत सावधान होकर मन्त्र पाठ करने वाले को खोजने लगे पर कहीं किसी का पता नहीं चला। इतने में आकाश से दयानिधि भगवान् विष्णु ने मेघगम्भीर स्वर से कहा कि हे वसिष्ठ! तुम्हारे पौत्र के मुख से यह वेदध्वनि हुई है। अदृश्यन्ती के उदर में मेरे समान प्रतापी बालक है। वह शङ्कर भगवान् का परम भक्त होगा और उन्हीं की कृपा से अपने कुल का पूर्ण उद्धार करेगा। इतना कह कर विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गए। वसिष्ठ को उन वचनों से

बहुत धैर्य हुआ पर अदृश्यन्ती को शोक विह्वल देख वे बहुत कातर हुए। अदृश्य पति-वियोग में माथा पटक रही थी, छाती पीट रही थी और प्राण देने उतारू थी। वसिष्ठ ने बहुत समझा बुझा कर उसे शरीर के परित्याग करने रोका। अरुन्धती ने कहा कि तुम्हारी समझदारी से इस समय इस कुल रक्षा हो सकती है अन्यथा इस उत्तम कुल का नाम मिट जायगा।

अदृश्यन्ती ने अपनी सास और ससुर को इस प्रकार विलाप करते कहा कि यदि मेरी इस पापमयी अधम देह से कुल की रक्षा हो सक है तो मैं इसको बचा सकती हूं अन्यथा यह देह रखने योग्य नहीं पति-विहीन रहने से मैं मरना ही अच्छा समझती हूं मुझे इस शरी आजीव कष्ट उठाने पड़ेंगे। स्त्री का एक मात्र बन्धु पति है। माता, पि पुत्र, सास, ससुर आदि कोई उसका बन्धु नहीं। जिस प्रकार लता वृक्ष के बिना रह नहीं सकती उसी प्रकार पत्नी पति के आश्रय बिना सुख नहीं सकती। शास्त्रों में तो कहा गया है कि पत्नी पति का आधा शरीर होती पर आज मैं उस वचन को झूठा होता देख रही हूं। मेरे पति तो परलोक सिधारे और मैं यहीं पड़ी बिलख रही हूं।

अनेक मुनियों के आश्वासन देने पर अदृश्यन्ती ने शरीर परित्याग का विचार छोड़ दिया। गर्भ की रक्षा करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। दस महीने व्यतीत हो गए और प्रसवकाल आया तो उसने परम प्रतापी अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न किया। उस बालक के उत्पन्न होते ही पितर बहुत आनन्दित हुए। ब्रह्मज्ञानी जन भूलोक में आनन्दोन्मत्त हो उठे और स्व में देवता लोग दुन्दुभियाँ बजाने लगे। समस्त विश्व में आनन्द छा गया। बालक का नाम पराशर रक्खा गया।

अदृश्यन्ती बड़ी सावधानी से पराशर का पालन-पोषण करने लगी पर वह पतिवियोग में सदा दीन वदन रहा करती थी और शरीर में एक आभूषण नहीं पहिनती थी। पराशर जब कुछ समझदार हुए तो उन्होंने पूछा कि हे माता जी ! तुम इतनी दीन मलीन क्यों हो ? मेरे पिता जी कहाँ हैं और उनका क्या नाम है ? पराशर के पूछने पर माता ने रोते हुए आद्योपान्त कथा सुना दी और बिलख बिलख कर रोने लगी।

पराशर ने राक्षस द्वारा अपने पिता का नाश सुन कर भगवान् शङ्कर की आराधना करके पिता के दर्शनों का तथा त्रैलोक्य के विनाश करने का संकल्प किया

उनकी ऐसी दारुण प्रतिज्ञा सुन कर वसिष्ठ ने कहा कि हे प्रियपौत्र ! तुम्हारा यह संकल्प बहुत उत्तम है, तुम अवश्य भगवान् सदाशिव की उपासना कर अपनी कामना की पूर्ति करो। परन्तु त्रैलोक्य ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम उस के विनाश करने पर उद्यत हो इससे तो महा अनर्थ हो जायगा। इसकी मैं सलाह कभी नहीं दूँगा। हाँ ! राक्षसों का विनाश तुम अवश्य करो और अपने पिता का बदला अवश्य लो। तुम राक्षसों के विनाश के लिए सर्वेश्वर का पूजन करो।

पराशर उनके वचनानुसार मृत्तिका का लिङ्ग बनाकर षोडश उपचारों से पूजन करने लगे। अनेक प्रकार के जप और पाठ करके वे प्रतिदिन उस शिव लिङ्ग से परम कातर हो कर प्रार्थना करते कि हे देवदेव ! मेरे परम तेजस्वी पिता को रुधिर नामक राक्षस ने खा लिया है मैं भाइयों समेत अपने पिता के दर्शन करना चाहता हूं।

भगवान् शङ्कर उनकी आराधना से बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्मादिक देवों के साथ पार्वती समेत उनके समीप आए। शिव जी की कृपा से उनकी दिव्य दृष्टि हो गई और उन्हों ने सब देवों के प्रत्यक्ष दर्शन किए। उनके दर्शन कर वे स्तुति करने लगे कि इस संसार में मुझ से बढ़ कर और कौन भाग्यवान् होगा। आप स्वयं मेरी रक्षा करने के लिए पधारे हैं इससे अधिक भाग्य क्या हो सकता है। इतने में ही अपने भाइयों समेत शक्ति आकाश में दिखाई पड़े। पराशर उन सब को देख परम आनन्दित हुए। और क्रमशः उनको प्रणाम करने लगे। शक्ति ने भी अपनी माता और पिता को भक्तिपूर्वक अभिवादन किया। इस प्रकार परस्पर मिलन से सभी को बहुत हर्ष हुआ।

भगवान् शिव उनकी कामना पूर्ण कर कैलास को चले गए। पराशर अपने पिता का बदला लेने के लिए यज्ञ करने लगे और राक्षसों का विनाश करने लगे। जब बहुत से राक्षस उस अग्निकुण्ड में जल चुके तो वसिष्ठ को उनके ऊपर दया आई और वे पराशर से कहने लगे कि हे वत्स ! अब क्रोध का परित्याग करो। मूढ़ों को क्रोध होता है बुद्धिमान् लोग क्रोध के वशीभूत नहीं होते। क्रोध से यश और तप दोनों का नाश हो जाता है। इन राक्षसों ने कुछ अपराध नहीं किया। अब तुम अपना यज्ञ समाप्त करो।

अपने पितामह की आज्ञा के अनुसार उन्होंने वह यज्ञ समाप्त कर दिया। उसी समय पुलस्त्य आ गए और कहने लगे कि हे मुने ! तुमने अपने गुरुजन के अनुरोध से क्रोध का परित्याग किया इस लिए तुम्हें सम्पूर्ण शास्त्रों का पूर्ण

ज्ञान प्राप्त होगा। मेरी सन्तति का विनाश क्रोध रहते हुए भी तुमने नहीं कि इस लिए तुमको एक यह वर देता हूं कि तुम अनेकों पुराणों के रचयिता हो इस प्रकार वर दे कर वे चले गए और पराशर भगवान् शंकर की कृपा से मान्य महाज्ञानी मुनि हुए। उन्हों ने अपनी तपस्या से यह कर दिखाया चाहे ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी, बालक हो या वृद्ध सभी उनकी आराधना से फल पा सकते हैं। लिङ्ग पुराण के माहेश्वर खण्ड में लिखा है:—

येऽर्चयन्ति शिवं नित्यं लिङ्गरूपिणमेव च।
स्त्रियोवाप्यथवा शूद्राः श्वपचा ह्यन्तवासिनः॥ ११६॥
तं शिवं प्राप्नुवन्त्येव सर्वदुःखोपनाशनम्।
पशवोऽपि परं याताः किं पुनर्मानुषादयः॥ ११७॥

केदारखण्ड

बत्तीसवाँ रत्न

महर्षि दधीच

मुनीन्द्र दधीच और राजा क्षुप में बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। उन दोनों खान-पान, उठना-बैठना सदा एक साथ हुआ करता था। एक बार दैववश दोनों में झगड़ा हो गया। दधीच कहते थे कि ब्राह्मण उत्तम होते हैं और क्षु कहते थे कि क्षत्रिय। क्षुप का कहना था कि राजा आठों दिक्पालों के अंश उत्पन्न होता है इस लिए मैं ही इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सो और कुबेर हूं। मैं साक्षात् परमेश्वर हूं मुझ से बढ़ कर संसार में और कौन सकता है? हे दधीच! मैं पूज्य हूं इस लिए तुम मेरी पूजा किया करो।

एक क्षत्रिय के ऐसे अभिमान भरे वचन सुन कर परम तेजस्वी दधीच मुनि को बड़ा क्रोध आया और उन्हों ने बाएँ हाथ से क्षुप के सिर में एक घूंसा मारा। राजा क्षुप इस प्रहार से बहुत कुपित हुए और उन्हों ने दधीच को वज्र मारा। उस वज्र के प्रहार से दधीच पृथ्वी पर गिर पड़े और आर्त होकर विलाप करने लगे। शुक्र का स्मरण करते ही शुक्र आकर उपस्थित हो गए और मृतसंजीवनी विद्या के द्वारा उनका शरीर पहिले के ऐसा ही कर दिया।

दधीच के स्वस्थ हो जाने पर शुक्र ने कहा कि हे मुने! मैंने भगवान् उमापति की आराधना करके मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की है भगवान् शम्भु के भक्तों को मृत्यु से भय नहीं होता। इस लिए आप उन्हीं की आराधना करके अजर अमर बन जाइये। उनकी सेवा करने से संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो प्राप्त न हो सके। महामृत्युञ्जय महादेव के पूजन से मृत्यु का भय नहीं रह जाता।

शुक्र के कथनानुसार दधीच मुनि ने अत्युग्र तपस्या कर शङ्कर भगवान् को तुष्ट कर लिया और उनकी कृपा से मुनि की सभी हड्डियाँ वज्र के समान कठोर हो गईं। इसी के साथ साथ अवध्यत्व और अदीनत्व भी प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार देवेश की आराधना करके दधीच ने राजेन्द्र क्षुप को पैरों से खूब मारा। उन्होंने भी अपने वज्र से दधीच के छाती में प्रहार किया परन्तु वज्रास्थि होने के कारण उस प्रहार का कुछ भी असर नहीं हुआ। भगवान् की कृपा से उस वज्र का प्रहार पुष्प-प्रहार सा प्रतीत हुआ।

अपने अव्यर्थ वज्र के प्रहार को निष्फल होता देख कर राजा क्षुप बहुत चिन्तित हुए और दधीच से बदला लेने के लिए भगवान् मुकुन्द की आराधना करने लगे। चिरकाल तक कठिन तप करने पर वे प्रसन्न हुए और शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए वनमाला से सुशोभित भगवान् विष्णु गरुड़ पर चढ़ कर राजा क्षुप के सामने आए।

भगवान् की सौम्य मूर्ति का विलोकन कर वे भक्ति पूर्ण हृदय से स्तुति करने लगे और रो कर कहने लगे कि हे देवदेव! हे जगन्निवास! हे शरणागत-परिपालक! दधीच ने पैरों से ठुकरा कर मेरा बड़ा अपमान किया है। वे पहिले तो मेरे मित्र थे पर अब शत्रु हो गए हैं। उन्हें अब इतना अभिमान हो गया है कि वे किसी से डरते ही नहीं। वे अपने को अब अवध्य एवं अजेय समझने लगे हैं। महाराज! मैं उनसे बदला लेना चाहता हूं। आप ऐसी कृपा कीजिए कि मैं उन्हें नीचा दिखा सकूँ।

सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ने महात्मा दधीच के अवध्यत्व पर विचार कर तथा महेश के अतुल प्रभाव का चिन्तन कर राजा क्षुप से कहा कि हे राजेन्द्र! रुद्र का भक्त यदि नीच भी हो तो उसे किसी प्रकार का भय नहीं, ब्राह्मण यदि शिव का भक्त हो जाय तो उसे भय की आशङ्का भी नहीं हो सकती। परम शैव दधीच मुनीन्द्र का तो कहना ही क्या। इस लिए दधीच को हरा देना तुम्हारी शक्ति के बाहर है। युद्ध में तुम उनको किसी प्रकार पराजित नहीं कर सकते। तुमने

मेरी आराधना की है इसलिए मैं प्रयत्न करूँगा कि किसी प्रकार उनकी
पराजय हो।

ऐसा कह कर भगवान् ब्राह्मण का रूप धारण कर दधीच के आश्रम में ग
और दधीच को विनीत भाव से प्रणाम कर कहने लगे कि हे महाराज! मैं आ
से एक वर माँगता हूं। आप शिव जी के परम भक्त हैं आप को मेरी प्रार्थ
अवश्य स्वीकार करनी चाहिए। दधीच महर्षि विष्णु भगवान् की इस माय
को समझ गए और उन्हों ने कहा कि हे जनार्दन! मैंने आप का सब अभिप्रा
समझ लिया। मैंने जान लिया कि आप विष्णु हैं, ब्राह्मण का रूप धारण क
आए हैं। राजा क्षुप ने तप कर के आप को प्रसन्न कर लिया है और उसी
कामनापूर्ति के लिए आप मेरे पास पधारे हैं। हे मुरारे! मैं आप की भक्
वत्सलता को अच्छी प्रकार समझता हूं। भगवान् शङ्कर की कृपा से मुझे भू
वर्तमान और भविष्य की सभी बातें अच्छी तरह ज्ञात हो जाती हैं। अतः
पूज्य भगवन्! इस विप्र वेष को त्याग कर अपना असली रूप धारण कीजिए
हे महाराज! मैं सच्ची बात कहता हूं और महादेव जी पर भरोसा कर संसार
सुर-असुर किसी से नहीं डरता।

दधीच के ऐसे वचन सुन कर विष्णु ने विप्र का वेष त्याग दिया औ
असली रूप धारण कर मुस्कुराते हुए बोले कि हे दधीच! मुझे अच्छी तर
ज्ञात है कि आप शिव भक्त हैं, सर्वज्ञ हैं और इस लिए आप को संसार
किसी से भय नहीं। पर मेरे कहने से आप एक बार राजा क्षुप से यह क
दीजिए कि मैं तुम से डरता हूं। आशा है कि आप मेरी इस छोटी सी बात को
अवश्य मान लेंगे।

भगवान् के ऐसे विनीत वचन सुन कर भी दधीच ने कहा कि मैं किसी से
नहीं डरता और किसी के सामने विनीत और भीत वचन नहीं कह सकता।
मैं त्रैलोक्यपति सर्वसुखप्रद भगवान् शङ्कर का भक्त हूं मेरे मुख से ऐसे वचन
नहीं निकल सकते।

दधीच के ऐसे अभिमान पूर्ण वचन सुन कर भगवान् विष्णु को क्रोध आ
गया और दधीच को मारने के लिए अपना अकुण्ठित चक्र उनके ऊपर चलाया
पर वह चक्र मुनि पर कुण्ठित हो गया। उनके चक्र को व्यर्थ होते देख दधीच
हँस कर बोले कि आप ने यह सुदारुण सुदर्शन चक्र बड़े प्रयत्न से पाया था
पर यह मुझे मार नहीं सकता। आप मेरे ऊपर ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि

अस्त्र-शस्त्र चला कर भी देख लीजिए, कदाचित् आप की अभिलाषा पूरी हो जाए।

अपने चक्र को निर्वीर्य होते देख विष्णु ने अनेकों अस्त्र-शस्त्र उनके ऊपर छोड़े। सब देवता भी विष्णु की सहायता के लिए आ गए और उन अकेले ब्राह्मण के ऊपर अपने अपने आयुध छोड़ने लगे। दधीच ने शङ्कर भगवान् का स्मरण कर एक मुट्ठी कुश उठा लिए और देवों के ऊपर फेंक दिए। उन कुशों का परम भीषण कालाग्नि सदृश त्रिशूल बन गया और सब देवों को भस्म करने लगा। देवों द्वारा चलाए गए सभी अस्त्र-शस्त्र उस त्रिशूल को नमस्कार करने लगे और सब देवता वहां से प्राण ले कर भागे।

विष्णु ने अपने शरीर से अपने ऐसे लाखों पुरुष उत्पन्न किए पर उन सब को उस त्रिशूल ने क्षण भर में भस्म कर दिया। तब विष्णु भगवान् ने अपना विराट् रूप धारण किया। दधीच ने उनके शरीर में असंख्य देवता, करोड़ों रुद्र और करोड़ों ब्रह्माण्ड देखे। पर दधीच महर्षि ने अपने कमण्डलु के जल से अभ्युक्षण कर उस विराट् रूपको शान्त कर दिया और स्वयं विराट् रूप धारण कर विष्णु को अपने शरीर में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सभी देव दिखाए और कहने लगे कि हे विष्णो! इस प्रकार की माया दिखाने से क्या होने का? ऐसी माया तो मैं स्वयं दिखा सकता हूं। यदि युद्ध करना हो तो इस माया का परित्याग कर वीरता के साथ युद्ध कीजिए। वीरता के साथ युद्ध करने में ही जय और पराजय का पता चल सकता है।

महर्षि के इस कथन पर ब्रह्माजी ने विष्णु को युद्ध करने से रोक दिया और वे उन मुनि को प्रणाम कर चले गए। राजा क्षुप बहुत दुःखित हुए और पूज्य महर्षि दधीच को प्रणाम कर कहने लगे कि हे महर्षे! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मैंने अज्ञान से आप के साथ दुर्व्यवहार किया और आप का प्रताप नहीं जाना। शिवभक्त का संसार में कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आप शिवभक्त हैं, आप के साथ वैर कर मैंने बड़ी भूल की। महाराज! मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

ब्राह्मणों का हृदय कोमल तो होता ही है, इतनी प्रार्थना करने ही से महर्षि दधीच प्रसन्न हो गए और उनका अपराध क्षमा कर दिया। तभी से उस स्थान का नाम स्थानेश्वर हो गया और वह परम पावन तीर्थ माना गया। स्थानेश्वर तीर्थ में पहुंच जाने ही से शिवसायुज्य प्राप्त होता है। लिङ्ग पुराणमें लिखा है कि:—

तदेवतीर्थमभवत् स्थानेश्वरामीतिस्मृतम् ।
स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७७ ॥

लिं० पु० पू० ३६।

तेतीसवाँ रत्न

महर्षि लोमश

प्राचीन काल में एक बड़ा दरिद्र शूद्र था । भूख और प्यास के मारे वह उधर मारा मारा फिरता था कहीं पेट भर अन्न उसे नहीं मिलता था । एक वह घूमता घूमता एक तीर्थ जलाशय के सन्निकट पहुंचा । उसी के समीप शिव मन्दिर था । प्यास के मारे उसके प्राण जा रहे थे इसलिए वह झट पट जलाशय में घुस गया और पानी पी कर खूब स्नान करने लगा । वहाँ स्नान पवित्र हो उसीमें से कमल के मनोहर पुष्प ले कर तथा कमल पत्र में सुगन्धित जल भर कर उसने मन्दिर में प्रवेश किया और महादेव जी को स्न करा कर वे कमल पुष्प भक्ति पूर्वक चढ़ाए । भगवान् श्रीकण्ठ को साष्टाङ्ग प्र कर शुद्ध हृदय से स्तुति कर उस दुःख से मुक्ति पाने की प्रार्थना की ।

उसी एक वार की पूजा के प्रभाव से उसने उस शूद्र शरीर के परित्याग के अनन्तर परम कुलीन ब्राह्मण के घरमें जन्म पाया । पूर्व पुण्य के प्रताप उसको पूर्वजन्म की सब बातों का यथावत् स्मरण था । अत एव इस संसार सर्वथा मिथ्या समझ उन्हों ने प्रारम्भ ही से मौन धारण कर लिया । उनके पि ने भगवान् शङ्कर की बड़ी आराधना करके वृद्धावस्था में वही एक पुत्र था । उनका नाम ईशान रक्खा गया । परन्तु जब उन वृद्ध ब्राह्मण ने अपने को गूँगा देखा तो उन्हें दारुण दुःख हुआ । उनके गूंगेपने को दूर करने का कर उन्हों ने अच्छे अच्छे भिषग्वरों से अनेक औषधियां कराईं, अनेक प्रकार टोने कराए पर किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ । अपने माता-पिता को इस प्र उपाय करते देख कर ईशान को मन में बड़ी हँसी आती थी और दुःख भी था पर उनका वैराग्य दृढ़ था अतः वे अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए ।

ईशान युवावस्था में रात के समय घर से निकल कर कमलों से शिव की पूजा चुपचाप कर आते और आ कर घर में सो जाते । अन्न न खा कर

फलाहार करते और भगवान् सदाशिव की मनसा, वाचा और कर्मणा आराधना किया करते थे ।

इस प्रकार आराधना करते करते सौ वर्ष व्यतीत हो गए और तब भगवान् ने प्रसन्न हो कर उन्हें दर्शन दिए । उनके दर्शन पा कर वे मुक्तकण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे और कहने लगे कि हे सदाशिव ! हे करुणावरुणालय ! आप भक्तों की कामनापूर्ति करने में बहुत प्रसन्न होते हैं, थोड़ी सी भी आराधना करने से आप उसका अनन्त गुणित फल देते हैं । भगवन् ! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे जरा और मरण से रहित कर दीजिए । आपके कृपाकटाक्ष-मात्र से मेरी कामना पूरी हो सकती है।

भगवान् शम्भु ने प्रेममयी वाणी में कहा कि नामरूप धारण करने वाले व्यक्ति को जरा और मरण से छुट्टी नहीं मिल सकती । जिसने जन्म लिया है उसको अवश्य मरना होगा । देखो मेरे शरीर का भी तो एक दिन अन्त होना है। इस लिए जितना चाहो उतना दीर्घ जीवन मैं तुमको दे दूँ पर अनन्त जीवन नहीं दे सकता ।

भगवान् के ऐसे वचन सुन कर ईशान ने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि हे महाराज ! यदि आप मुझे अजर अमर नहीं कर सकते हैं तो यह वर दीजिए कि एक कल्प व्यतीत होने पर मेरा एक रोम गिरा करे और जब इसी प्रकार सब रोम गिर जाएँ तब मेरा शरीर-पात हो । शरीर-पात के पश्चात् मैं आप का गण बनूँ । भगवान् उनकी प्रार्थना हर्षपूर्वक स्वीकार कर कैलास को चले गए । उसी दिन से ईशान का नाम लोमश पड़ गया और वे अपना समय भगवान् शङ्कर की आराधना में ही बिताने लगे ।

शङ्कर भगवान् की उपासना कर लोमश महर्षि ने इतना दीर्घ जीवन प्राप्त किया जितना कि संसार में किसी का नहीं । उनकी आराधना करने से त्रिलोकी में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो कि प्राप्त न हो सके। शङ्कर की सेवा से तथा प्रणव के जप से अनायास ही मुक्ति मिल जाती है। सब पापों के क्षय हो जाने से शिवजी में लगन होती है। जिनका हृदय पापों से कलुषित है उनको शिव भजन अच्छा नहीं लगता ।

पहिले तो इस भारत वर्षकी पावन भूमि में जन्म पाना ही दुर्लभ है, जन्म पा कर शिवपूजन का सौभाग्य प्राप्त होना तो और भी दुर्लभ है । गङ्गा के पुण्यद स्नानों का लाभ होना तो परम दुर्लभ है । यह सब होते हुए भी महादेव जी में

अविचल भक्ति होना तो नितान्त दुर्लभ है। थोड़े पुण्यों से ब्राह्मण को दान की तथा यज्ञ करने की श्रद्धा भी कभी उदित नहीं होती। पूर्वजन्म के अ पुण्य होते हैं तभी इन शुभ कर्मों की ओर मन की प्रवृत्ति होती है। परन्तु भक्तों के लिए न तो संसार में कोई वस्तु दुर्लभ है और न कोई काम असा लिङ्गपुराण का अधोलिखित श्लोक इस बात का प्रमाण है:—

न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चासाध्यं महात्मनाम्।
शिवभक्तिकृतां पुंसां त्रिलोक्यामिति निश्चितम् ॥ ५

कौमारखण्ड अ

चौतीसवाँ रत्न

महर्षि कालभीति

किसी समय काशी पुरी में एक परम शिवभक्त मांटि नाम के महर्षि रह ये बड़े प्रतापी, यशस्वी एवं भाग्यवान् थे। यदि उन्हें किसी बात का दुःख इसका कि उनके कोई वंशधर पुत्र नहीं था। उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिए तक आशुतोष भगवान् की उपासना की और अन्त में उनका परिश्रम सफल भगवान् महर्षि के सामने प्रकट हुए और कहने लगे कि हे महर्षे! मैं तु उपासना से परम प्रसन्न हूं और वर देता हूं कि तुम्हारे बड़ा प्रतापी बुद्धि तथा वंश का उद्धार करने वाला सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो।

महादेवजी के वरदान के अनुसार कुछ समय के अनन्तर मांटि की वटिका ने गर्भ धारण किया। परन्तु चार वर्ष तक बालक गर्भ से नहीं निक यह देख कर माता-पिता को बड़ी चिन्ता हुई और महर्षि ने गर्भ को सम्बोध कहा कि हे वत्स! साधारण पुत्र भी माता-पिता को प्रायः सुख देने वाले होते तुम तो भगवान् शङ्कर के आशीर्वाद से मिले हो तुम इतना कष्ट क्यों दे रहे हे प्रिय! तुमको मनुष्य योनि में जन्म लेने की अभिलाषा क्यों नहीं है? मनुष्य योनि में तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सब सामान्य प्रयास से मिल सकते हैं। अन्य योनि में समुत्पन्न जीव सदा इसी के लिए लालायित र हैं कि कब मनुष्य योनि में जन्म मिले और देवकर्म, पितृकर्म कर के अ

जीवन सुधारें। वत्स! तुम इस देवों के भी स्पृहणीय मानुष्य का अनादर कर गर्भ ही में क्यों पड़े हो?

गर्भगत बालक ने उत्तर दिया कि हे पूज्यपाद पिताजी! मैं इस बात को भली भांति समझता हूं कि संसार में मनुष्य योनि प्राप्त होना साधारण भाग्य की बात नहीं और इसी योनि में सब कर्म करने का अधिकार है पर मैं कालमार्ग से बहुत डरता हूं। कालमार्ग में प्राप्त जीव चाहे स्वर्ग में जाए चाहे नरक में उसे कहीं सुख नहीं मिलता। इससे कर्म की ओर प्रवृत्ति होती है और कर्मों से बन्धन का होना अवश्यम्भावी है। अर्चिर्मार्ग से मोक्ष प्राप्त होता है। यदि मुझे विश्वास हो जाए कि मुझे अर्चिमार्ग प्राप्त होगा तो मैं अभी गर्भ के बाहर आ जाऊँ।

महर्षि मांटि यह उत्तर सुन कर बड़े चिन्तित हुए और कुछ उपाय न सूझने पर भगवान् शङ्कर की शरण गए। वे अनेक प्रकार की स्तुति कर परम आर्त शब्दों में कहने लगे कि हे देवदेव! हे जगन्निवास! मुझ अशरण की रक्षा कीजिए। आप के बिना मेरे पुत्र की कामनाएँ कौन पूरी कर सकता है। आप ही ने पुत्र दिया है और आप ही इसको गर्भ से बाहर करने का प्रयत्न कीजिए।

उनकी स्तुति से प्रसन्न हो कर महादेव जी ने आठों विभूतियों को उस गर्भ के समीप भेजा। उनमें से चार सात्विक विभूतियों ने (धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य ने) जा कर कहा कि हे महामते! हम चारो तुम्हारी बुद्धि में सदा वर्तमान रहेंगी और कभी तुमको छोड़ कर नहीं जाएँगी। अवशिष्ट चार तामस विभूतियों ने (अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य ने) कहा कि हम तुम से सदा दूर रहेंगी, हमसे तुमको कुछ भी भय न होगा। विभूतियों का वचन सुन कर वह बालक गर्भ से बाहर निकल आया। बाहर आते ही वह कपने और रोने लगा। तब विभूतियों ने महर्षि मांटि से कहा कि यह बालक अब भी काल मार्ग से भीत हो रहा है इस लिए इसका नाम कालभीति होगा।

कालभीति दिन दिन उसी प्रकार बढ़ने लगे जिस प्रकार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा। उनके सब संस्कार शास्त्रविहित रीति से उचित समय पर किए गए। वे बड़े बुद्धिमान् थे और सदा भगवान् रुद्र की ही उपासना में लगे रहते थे। वे "सद्यो जातं प्रपद्यामि"* इत्यादि पाँच मन्त्रों का जप करते हुए और अनेक शिव

---

* ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि। सद्यो जाताय वै नमो नमः भवे भवेनाति भवे भवस्य मां भवोद्भवायनमः ॥ १ ॥

तीर्थों में स्नान करते हुए तीर्थयात्रा करने लगे। इसी यात्रा में उन्हें एक बि
का वृक्ष मिला। उसके समीप पहुंचते ही उनके मन में कुछ शान्ति आई।
वे उसके नीचे बैठ कर जप करने लगे। एक लक्ष जप समाप्त होने पर उ
सब वाह्यकरणों और अन्तःकरणों का लय हो गया। वे क्षण भर में परमान
स्वरूप हो गए। यह आनन्द अद्वितीय था और उसके बराबरी का आ
संसार में दूसरा हो नहीं सकता। वे क्षण भर उस आनन्द में मग्न रहे और फि
पूर्ववत् ही हो गए।

कालभीति को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अपने मन में सोचने
कि यह आनन्द मुझको काशी, नैमिषारण्य, प्रभासक्षेत्र, केदारक्षेत्र, अमरकण्ट
श्रीपर्वत आदि किसी भी पावन तीर्थ में प्राप्त नहीं हुआ। इस समय मेरी
इन्द्रियां निर्विकार हो गई हैं और गङ्गाजल के समान निर्मल प्रतीत हो रही
मेरे मन में केवल धर्म की भावना उत्पन्न हो रही है। स्थान का बड़ा माह
और प्रभाव होता है। निर्दोष पवित्र और उपद्रवरहित स्थान में किए गए धर्म
सहस्र गुणित फल देते हैं। मेरे मन की शान्ति इस स्थान के ही प्रभाव से
है अतः मैं इसी स्थान में बैठ कर तप करूँगा। यह स्थान काशी, प्रयाग
सब तीर्थों से उत्तम है। जो लोग सदा भिन्न भिन्न तीर्थों की यात्रा के फे
पड़े रहते हैं उन्हें सिद्धि तो मिलती नहीं केवल शारीरिक कष्ट मिलता है।

ऐसा विचार कर वे उसी बिल्व वृक्ष के नीचे पैर के एक अँगूठे पर
हो कर रुद्र मन्त्रों को जपने लगे और सौ वर्ष के अनन्तर जल ग्रहण
का नियम किया। इस प्रकार कठिन तप करते हुए उनको जब सौ वर्ष
गए तब एक मनुष्य जलपूर्ण कलश ले कर आया और कालभीति को हर्षपूर्व
प्रणाम करता हुआ बोला कि हे मुने! अब आप का व्रत पूरा हो गया। आ

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः क
विकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभू
दमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ २ ॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। शर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते
अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ३ ॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ४ ॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति
र्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥ ५ ॥

सौ वर्ष पूरे हो गए। इस जल को स्वीकार कर मेरा परिश्रम सफल कीजिए।

कालभीति ने उस व्यक्ति से कहा कि तुम अपनी जाति और आचार-विचार का पूरा परिचय दो। अज्ञात पुरुष का मैं जल नहीं पी सकता। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि मैं अपने माता-पिता को नहीं जानता। या तो वे रहे होंगे और अब नष्ट हो गए होंगे अथवा प्रारम्भ ही से होंगे ही नहीं। मैं सदा से ऐसा ही हूं। आचार और धर्म से भी मुझे कुछ काम नहीं। इस लिए न तो मेरा कोई धर्म है और न मैं कुछ करता हूं।

कालभीति ने उत्तर दिया कि यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा जल नहीं पी सकता। मेरे गुरु ने मुझे बताया था कि जिस के कुल की पवित्रता के विषय में पूरा ज्ञान न हो उस का छुआ हुआ अन्न-पान ग्रहण करने से साधु का भी पतन हो जाता है। जो भगवान् रुद्र को नहीं जानता और जो रुद्र का भक्त नहीं है उसका अन्न-जल ग्रहण करने से मनुष्य अवश्यमेव पातकी हो जाता है। शिवजी को समर्पण किए बिना जो व्यक्ति भोजन करता है वह ब्रह्महा हो जाता है, उसके अन्न-जल के स्वीकार करने से पाप लगता है जिस प्रकार गङ्गोदक-पूर्ण कलश मद्य की एक बूंद से अपवित्र हो जाता है उसी प्रकार शिवभक्त भी शिवभक्तिरहित मनुष्य के अन्न ग्रहण करने से अपवित्र हो जाता है।

उस पुरुष ने कहा कि हे मुने! तुम्हारी इन बातों को सुन कर मुझे हँसी आती है। तुम या तो बहुत सीधे हो या मूर्ख अथवा पागल हो गए हो। तुम यह नहीं जानते कि शिव व्यापक हैं। अच्छी वस्तु हो या बुरी वस्तु सब में उनकी सत्ता है। जो मनुष्य भेद दृष्टि रखता है वह नरकगामी होता है। इस जल में क्या छूत लगी है? मिट्टी का बना हुआ यह घड़ा है, आग में अच्छी तरह पकाया गया है सुन्दर निर्मल जल से भरा है। यह अपवित्र कैसे समझा जा सकता है?

यदि मेरे छूने से इस को अपवित्र मानते हो तो तुम और मैं दोनों एक ही भूमि पर खड़े हैं। मुझसे इस भूमि का स्पर्श हुआ और इस भूमि का स्पर्श तुम से हुआ। परम्परया मेरे शरीर का स्पर्श तुम्हारे शरीर से हो गया। बस तुम भी अपवित्र हो गए। इस लिए तुमको आकाश में रहना चाहिए। हे मुने! इन सब बातों पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो तुम्हारा कहना मूर्खों के ऐसा ज्ञात होने लगेगा।

परम ज्ञानी कालभीति ने मधुर शब्दों में उत्तर दिया कि हे पुरुष! तुम्हारा कथन यथार्थ है, भगवान् शिव इस विश्वप्रपञ्च के कण कण में विद्यमान हैं।

परन्तु वस्तुभेद से शुद्धाशुद्ध का भेद अवश्य हो जाता है। अग्नि के संयोग वायु उष्ण हो जाती है और जल के संयोग से शीत। वायु वही है पर सं से उसमें उष्णता और शीतलता प्रतीत होने लगती है। सब आभूषणों में सुवर्ण रहता है पर कहीं शुद्ध और कहीं मिश्रित। शुद्ध सुवर्ण के बने आभूषणों की कान्ति और ही होती है मिश्रित सुवर्ण वालों की और। प्रकार मनुष्य मनुष्य सब एक हैं पर जाति और आचार के भेद से विभिन्नता आ जाती है।

अपने कथन को समाप्त करते हुए कालभीति ने कहा कि यदि इस प्र का भेद न हो तो सभी श्रुति-स्मृति, शास्त्र-पुराण व्यर्थ हो जाएँ। लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि सात्विक आहार करने वाले सात्विक वृत्ति रहने वाले मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं। रजःप्रधान प्राणी इसी भूलोक में जाते हैं और तामसिक आहार-विहार के जीव नरक में ढकेल दिए हैं। इस लिए हे भाई! मैं तुम्हारा जल किसी प्रकार नहीं ले सकता। मेरे तो शास्त्र ही प्रमाण है।

ऐसे दृढ़ वचन सुन कर उस पुरुष ने हँसते हुए पृथ्वी में दाहिने अंगूठे से एक बड़ा भारी गड्ढा बना दिया। उसी में उस घड़े का पानी दिया। उस घड़े भर जल से ही वह बड़ा गड्ढा ऊपर तक भर गया और से पानी बहने लगा। सामने ही एक निर्मल जल का कुण्ड सा लहराने ल पर इसे आसुरी माया समझ कर उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ और वे अपने से विचलित नहीं हुए।

उनकी दृढ़ता देख वह पुरुष बिगड़ कर बोला कि हे ब्राह्मण तू बड़ा मालूम पड़ता है। अब तो यह कुण्ड हो गया अब इसमें मेरा क्या रह गया क्या अब भी इसके पीने में दोष है? कालभीति ने विचार करते हुए कहा बात तो ठीक है कि यह कुण्ड है और इस के जल पीने में कोई दोष नहीं मैं ने तो अपनी आँखों से देखा है कि तुम्हारे ही घड़े के जल से यह कु भरा गया है। आँखों देखी बात को मैं कैसे भुला सकता हूं। भाई! चाहे जल पवित्र हो चाहे अपवित्र पर मैं तो इस को कदापि नहीं पी सकता।

इस प्रकार के वचन सुन कर वह पुरुष देखते ही देखते अन्तर्हित हो गया यह देख कालभीति को बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर में उस बिल्व वृक्ष के नी की भूमि से सम्पूर्ण दिशाओं को देदीप्यमान करता हुआ एक सुविशाल शि लङ्ग निकल आया। उसके प्रादुर्भाव के समय आकाश में अप्सराएँ नाचने

लगीं, गन्धर्व गाने लगे। देवता पारिजात पुष्पों की वर्षा करने लगे, मुनि लोग जय ध्वनि से संसार को व्याप्त करने लगे। उस महोत्सव को देख महर्षि कालभीति आनन्द से पुलकित हो स्तुति करने लगे।

उनकी प्रेममयी स्तुति से प्रसन्न हो कर परम कारुणिक भगवान् शिव उसी लिङ्ग से तीनों लोकों को प्रकाशित करते हुए प्रकट हुए और बोले कि मुने! इस उत्कृष्ट तीर्थ में तप करने से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। मनुष्य का रूप धारण कर जब मैं तुम्हारे धर्म की परीक्षा लेने आया तब तो तुम्हारी धर्म के ऊपर दृढ़ता देख कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। मैंने तुम्हारे लिए यह कुण्ड सब तीर्थों के जल से भर दिया है। मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूं जो वर माँगना हो माँगो। तुम्हारे लिए कुछ अदेय नहीं है।

कालभीति ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि हे महाराज! आपके तुष्ट होने से आज मैं धन्य हूं, आज मेरा जीवन सफल हुआ। जितने धर्म और कर्म हैं वे आप के तुष्ट होने पर ही सफल होते हैं अन्यथा उनसे परिश्रम के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं। भगवन्! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो इस लिङ्ग में सदा निवास करें। इस लिङ्ग के निकट जो कर्म किया जाय उसका अक्षय फल हो। पञ्च मन्त्र के लक्ष जप से जो पुण्य प्राप्त होता है वह इस लिङ्ग के दर्शन मात्र से हो जाए।

हे महेश्वर! मैं इनकी कृपा से काल मार्ग से बचा हूं इस लिए इनका नाम महाकाल हो। इस तीर्थ में स्नान कर जो पितरों का तर्पण करे उसे सब तीर्थों में स्नान करने का पुण्य मिले और पितरों की अक्षय सद्गति हो।

महादेव जी ने मुनि की सभी प्रार्थनाएँ स्वीकार कर लीं और कहा कि इस तीर्थ में जो दान पुण्य किया जाएगा उसका अक्षय फल होगा। जितेन्द्रिय हो कर जो मेरी पूजा करेगा उसके लिए भुक्ति-मुक्ति अनायास ही प्राप्त होंगी। भगवान् शङ्कर का वचन है:—

> अत्र पुष्पं फलं पूजा नैवेद्यं स्तवनक्रिया।
> दानं वान्यच्च यत्किञ्चिदक्षयं तद्भविष्यति ॥ १२१ ॥
> जितेन्द्रियश्च यो नित्यं मां लिङ्गेऽत्र प्रपूजयेत्।
> भुक्तिमुक्ती न दूरस्थे तस्य नित्यं द्विजोत्तम ॥ १२६ ॥

स्कन्द पु० कौ० ख० ४० अ०

पैंतीसवाँ रत्न

शिलाद मुनि

शिलाद नाम के एक बड़े तपस्वी स्वकर्मधर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। पूर्वजन्म कर्म के अनुसार वे अन्धे हो गए थे और उन के कोई सन्तति नहीं थी। सन्त प्राप्त करने के लिए उन्होंने कठिन तप करना प्रारम्भ कर दिया। चिर तक निराहार रह कर अनेक नियम संयम के साथ देवराज इन्द्र की उपास की। उनकी उपासना से प्रसन्न हो कर देवराज प्रकट हुए और शिलाद मुनि प्रसन्नतापूर्वक बोले कि हे महर्षे! तुम किस कामना से ऐसा तीव्र तप कर हो? मैं तुम्हारी इस तपस्या से बहुत सन्तुष्ट हूं यदि कोई वर माँगना हो माँगो।

इन्द्र के ऐसे मधुर वचन सुन कर शिलाद मुनि बहुत आनन्दित हुए हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक बोले कि हे देवराज! मैं पुत्रहीन हूं। शास्त्र में गया है कि पुत्रहीन मनुष्य को सद्गति नहीं मिलती इस लिए हे कृपानि मुझे कुल का उद्धार करने वाला पुत्र दीजिए। परन्तु वह पुत्र अयोनिज अमर होना चाहिए। ऐसा पुत्र नहीं चाहता जिसके लिए मुझे या मेरे वालों को रोना पड़े।

इन्द्रदेव ने उत्तर दिया कि अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र तो मैं नहीं दे सकता संसार में ऐसा कोई नहीं जो जरा-मरण से रहित हो पितामह स्वयं मृत्युहीन नहीं हैं, उनका भी एक दिन समय पूरा हो जाएगा और उनको शरीर का त्याग करना पड़ेगा। भगवान् शिव के पुत्र स्वामिकार्तिक का भी अन्त होगा अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र देने की मुझ में तो शक्ति है ही नहीं, ब्रह्मा और विष्णु में भी नहीं है। भगवान् रुद्र अवश्य ऐसा पुत्र दे सकते हैं। यदि तुम उनकी अनन्य मन से आराधना करो तो तुम्हारी कामना पूरी हो सकती है इस लिए तुम उनको प्रसन्न कर अभीष्ट वर प्राप्त करो।

शिलाद से ऐसे वचन कह कर महेन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार हो कर सब देवों को अपने साथ ले कर इन्द्रलोक को चले गए। पुण्यशील शिलाद इन्द्र देव के चले जाने पर अपनी तपस्या से महादेव जी को प्रसन्न करने लगे। उन्होंने अन्न का भक्षण करना और जल का पान करना एक दम छोड़ दिया और एकाग्र चित्त से भगवान् शिव का ध्यान करने लगे। तप करते हुए उनके हजार वर्ष क्षण के समान प्रतीत होने लगे। उनके शरीर पर वामी जम गई और

भिन्न भिन्न प्रकार के लाखों कीट उनके ऊपर फिरने लगे। उनका शरीर सूख कर काँटा हो गया; न तो उसमें रुधिर रह गया और न मांस। उनके शरीर में केवल हड्डियाँ भर रह गईं और वे भीत के समान दिखाई देने लगे।

उनके इस कठिन तप से भगवान् शङ्कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे पार्वती जी को साथ ले कर अपने सब गणोँ समेत शिलाद को दर्शन देने के लिए आए। आते ही उन्होंने शिलाद के ऊपर हाथ फेरा। उनके हाथ फेरते ही मुनि की सब थकावट दूर हो गई और उनका चित्त शान्त एवं प्रसन्न हो गया। वे हाथ जोड़ विनय पूर्वक स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से भगवान् को और भी अधिक प्रसन्नता हुई और वे कहने लगे कि हे मुने! अब आप अपनी तपस्या समाप्त कीजिए। मैं आपको ऐसा पुत्र दूँगा जो सब शास्त्रों का वेत्ता एवं परम ज्ञानी होगा।

शिलाद मुनि ने विनय करते हुए कहा कि हे देवदेव! हे शङ्कर! आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रह किया। मुझे तो आप की दया का ही भरोसा है। भगवन्! मेरी एक प्रार्थना यह है कि मुझे अयोनिज एवं मृत्युहीन पुत्र मिले।

भगवान् शङ्कर ने कहा कि हे विप्र! आपकी कामना की पूर्ति होगी और आप के वैसा ही पुत्र होगा जैसा कि आप चाहते हैं। प्राचीन काल में ब्रह्मा जी ने तथा अन्य देवों ने तप कर के मुझसे प्रार्थना की थी कि मैं स्वयं भूलोक में अवतार लूं और मैंने वह प्रार्थना स्वीकार की थी। उसी की पूर्ति के लिए मैं स्वयं आपका अयोनिज पुत्र बनूँगा। आप मेरे पिता बनेंगे।

इतना कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गए और शिलाद उस अनुत्तम वर को पा कर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़े समारोह के साथ यज्ञ का प्रारम्भ किया और उस यज्ञ के अङ्गण से युगान्त की अग्नि के समान तेज वाले भगवान् शङ्कर उत्पन्न हुए। उनके उत्पन्न होते ही पुष्करावर्त आदि मेघ बरसने लगे। सिद्ध, साध्य, किन्नर और गन्धर्व आकाश से मधुर गान सुनाने लगे। देवराज इन्द्र ने पुष्पों की वृष्टि की।

भगवान् का बाल रूप देख कर सभी देव और मनुष्य मोहित हो गए। उनके मस्तक पर जटा का मुकुट विराजमान था। तीन आँखें थीं, चार भुजाएँ थीं। त्रिशूल से उनका तेज और भी अधिक बढ़ रहा था। उनके तेज से समस्त दिशाएँ देदीप्यमान होने लगीं।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि देवता तथा वसिष्ठ आदि मुनि उनकी स्तु
करने लगे तथा सब अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सब दिक्पाल उनकी च
ओर खड़े हो कर विनय करने लगे। सब देवियाँ स्नेहपूर्वक उनका आलि
कर प्यार करने लगीं।

शिलाद मुनि को यह समारोह देख कर बड़ा विस्मय हुआ और वे प्र
कर स्तुति करने लगे। उन्होंने प्रसन्न गम्भीर स्वर में कहा कि हे भगवन्! आ
मेरा पुत्र बनना स्वीकार किया इस लिए मैं कृतकृत्य हो गया आप तो त्रि
की रक्षा करते हैं, विपत्तिसागर में मग्न भक्तों का उद्धार करते हैं, अशर
शरण हैं। आप ऐसे महनीय पुत्र को पा कर मेरी सब चिन्ताएँ दूर हो गईं।
अब किसी प्रकार का भय नहीं रह गया। आपने मुझ को आनन्दित कि
इस लिए आप का नाम नन्दी होगा आप से मेरी यह प्रार्थना है कि आप
इसी प्रकार आनन्दित किया करें। मेरे कुल में आप के अवतार लेने से मेरी
और मेरे पिता रुद्र लोक को चले गए और पितामह आदि पितृगण भी
गति को प्राप्त हो गए, मेरा जन्म सफल हो गया। मैं आपको नमस्कार कर
और प्रार्थना करता हूं कि मेरी रक्षा कीजिए। आपके अतिरिक्त अब मैं कि
अपने उद्धार की प्रार्थना करूँ। आप सब देवों के देव हैं।

भगवान् की इतनी स्तुति कर के शिलाद मुनि ऋषियों से कहने लगे
हे मुनियो! देखिए मेरा कितना बड़ा भाग्य है कि साक्षात् भगवान् ने
यज्ञाङ्गण में जन्म लिया। मेरे समान संसार में न तो कोई देवता है और न
दानव। मैं बड़ा भाग्यवान् हूं।

नन्दी को पा कर शिलाद अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें अपने साथ ले
कुटी में गए। वहाँ पहुंचते ही नन्दीश्वर का साधारण मनुष्य के स
आकार हो गया और उनकी दिव्य स्मृति का भी लोप हो गया। यह देख शि
को परम दुःख हुआ। शिलाद ने नन्दीश्वर को साधारण शिशु के रूप में देख
जातकर्म संस्कार किया। समय आने पर यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। नन्दी
ने थोड़े ही समय में साङ्गोपाङ्ग ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का य
अभ्यास कर लिया। सात वर्ष समाप्त होने के पूर्व ही उन्होंने आयुर्वेद, धनु
सङ्गीत शास्त्र, अश्वविद्या, गजविद्या आदिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक समय मित्रावरुण शिलाद के तपोवन में पहुँचे और कहने
कि हे मुने! हमें इस बात के कहने में बहुत दुःख होता है कि नन्दीश्वर

ज्ञानवान् विद्यावान् और बुद्धिमान् होते हुए भी बहुत अल्पायु हैं। इनकी अब केवल एक वर्ष की आयु और अवशिष्ट है।

इतना सुनते ही शिलाद के ऊपर वज्रपात सा हो गया। वे निश्चेतन हो कर भूमि पर गिर पड़े और कातर स्वर में विलाप करने लगे। उनके करुण क्रन्दन से समूचा अरण्य गूँज उठा और उसे सुन कर आस पास के सभी तपस्वी लोग समीप आ गए। वहाँ का वृत्तान्त सुन कर सब मुनिलोग स्वस्त्ययन, मङ्गलपाठ और भगवान् उमापति की स्तुति करने लगे। महामृत्युञ्जय मन्त्र से दूर्वा की एक लक्ष आहुतियाँ दीं। नन्दीश्वर के कानों में भी यह बात पड़ गई और वे स्वयं महामृत्युञ्जय मन्त्र का जप तथा महादेव जी का भक्तिपूर्वक अर्चन करने लगे।

इस प्रकार की गई आराधना से प्रसन्न हो कर भगवान् शिव प्रकट हुए और नन्दी से कहने लगे कि हे वत्स! तुम तो मेरे अंश हो तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं हो सकता। यह तुम्हारा शरीर यथार्थ में लौकिक नहीं है। तुम्हारे दिव्य शरीर को शिलाद देख चुके हैं तथा अन्य देवता, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व और दानवों ने भी देखा है। इस लिए हे प्रियवत्स! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।

इतना कह कर महेश्वर ने उनके ऊपर हाथ फेरा और अपनी कमलों की माला उनके गले में डाल दी। उस माला के पहनते ही वे द्वितीय शङ्कर के समान भासित होने लगे। शिव के सदृश अपना रूप देख कर नन्दीश्वर उनकी स्तुति करने लगे। इस स्तुति से शङ्कर भगवान् और भी प्रसन्न हुए और पार्वती जी से बोले कि आज मैं नन्दीश्वर को सब गणों का स्वामी बनाए देता हूं और सब लोकों का आधिपत्य देता हूं।

उनके स्मरण करते ही शिवजी के असंख्य गण आ कर उपस्थित हो गए। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता भी उस उत्सव में सम्मिलित हुए। शिवजी के कथन के अनुसार ब्रह्माजी ने उनका विधिविहित रीति से अभिषेक किया और वे गणाधिपति बना दिए गए। आज तक नन्दीश्वर शिवजी की सेवा के लिए उनके समीप सदा वर्तमान रहते हैं और शिव जी के साथ साथ उनकी भी पूजा की जाती है।

———•———

छत्तीसवाँ रत्न

अश्वत्थामा

द्वापर युग में पाण्डवों और कौरवों का घोर युद्ध हुआ। कुरुक्षेत्र के मैदान में १८ अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई और अठारह दिनों तक भीषण संग्राम होता रहा। भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि कौरव पक्ष के महारथी पाण्डवों द्वारा रण में मारे गए। भीम ने अपनी गदा से दुर्योधन की जाँघ तोड़ डाली। असंख्य कौरवों का विनाश कर दिया। इस प्रकार युद्ध समाप्त कर श्रीकृष्ण की सलाह से पाण्डव लोग अपनी सेना समेत शिविर के बाहर उस रात बस गए और विजयोत्सव मनाने लगे।

उसी रात को कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा दुर्योधन से मिलने के लिए आए। दुर्योधन की जाँघ टूट गई थी, शरीर भर में मिट्टी लिपटी हुई थी, स्थान स्थान से रक्त की धारा निकल रही थी और दुर्योधन मानसिक चिन्ता से पृथ्वी पर छटपटाता हुआ बिलख बिलख कर रो रहा था। अपने राजा को इस दशा में देख कर अश्वत्थामा की आँखें भर आईं और वह मारे क्रोध के आँखे लाल कर दाँत पीसता हुआ दुर्योधन से कहने लगा कि हे महाराज! जब मेरे पिता को इन दुष्टों ने छल से मार डाला था तब भी मुझे इतना दारुण दुःख और क्रोध नहीं हुआ था जितना कि आज आप को इस करुणा जनक दशा में देख कर हो रहा है। आज मैं धर्म की शपथ खा कर प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं इसी रात पाण्डवों का विनाश कर दूंगा। कृष्ण देखते ही रह जाएँगे पर कुछ कर न सकेंगे।

अश्वत्थामा के वचन सुन कर दुर्योधन के शरीर में एक बार फिर जीवन और आशा का सञ्चार हुआ। उसने कृपाचार्य से अश्वत्थामा को सेनापति के पद पर अभिषिक्त करने को कहा। दुर्योधन के कथनानुसार अभिषेक किया गया और कृतवर्मा तथा कृपाचार्य के साथ वह युद्ध के लिए चला। पाण्डवों के शिविर में पहुंच कर उन तीनों ने कर्कश स्वर में उन्हें ललकारा। ललकार के सुनते ही पाण्डव तयार हो गए और सिंह के समान गर्जते हुए इन तीनों के पास जा पहुंचे। उन वीरों को देखते ही अश्वत्थामा आदि के पैर उखड़ गए और वे भाग पड़े।

भागते हुए वे एक रमणीक वन में पहुंचे। वहाँ अनेक हरे भरे सुन्दर

महीरुह अपनी अनुपम छटा से सम्पूर्ण कानन को सुशोभित कर रहे थे। मनोहर कमलों के आमोद से सुवासित शीतल स्वच्छ जल से परिपूर्ण तड़ाग मन को लुभा रहे थे। उसी सरोवर के तट पर वे अपने अपने घोड़ों पर से उतर पड़े और हाथ मुँह धो कर नित्यक्रिया करने लगे। बहुत दूर चलने से थक तो गए ही थे अतः वे एक विशाल वटवृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए लेट गए। लेटते ही कृपाचार्य और कृतवर्मा को नींद ने आ घेरा पर अश्वत्थामा को चिन्ता के मारे नींद नहीं आई और वे अपने मन में शत्रुओं के विनाश का उपाय सोचने लगे। पूर्वापर विचार कर उन्हों ने निश्चय किया कि रण में सम्मुख मोर्चा लेना हितकर न होगा इस लिए छिप कर धावा मारना चाहिए। सम्मुख युद्ध करने से प्राण देने पड़ेंगे। छल के साथ युद्ध ठानने से शत्रुओं का अवश्य विनाश हो जाएगा। पाण्डवों ने भी तो छल के साथ युद्ध कर विजय प्राप्त की है। नीति शास्त्र कहता है कि जिस समय शत्रु की सेना थक गई हो, तितिर बितिर हो गई हो, भोजन कर रही हो, कहीं जा रही हो या किसी स्थान में प्रवेश कर रही हो उस समय उसके ऊपर टूट पड़ना चाहिए। आधीरात के समय जब सेना सोई हो, अस्त्र-शस्त्र रख कर विश्राम कर रही हो उसी समय शत्रुओं का संहार कर देना चाहिए। इस नीति के अनुसार सोते समय पाण्डवों का अन्त कर उनसे बदला लेना चाहिए। मन में ऐसा निश्चय कर अश्वत्थामा ने कृतवर्मा और कृपाचार्य को उठाया और अपना विचार कह सुनाया। कृपाचार्य ने धर्म का विचार करते हुए कहा कि सोते हुए को मारना धर्म-विरुद्ध है। इससे अपयश और अधर्म दोनों की वृद्धि होती है। अतः इस प्रकार पाण्डवों को मारना उचित नहीं। यदि ऐसा करना ही हो तो धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर से पूछ लेना चाहिए।

अश्वत्थामा ने उत्तर दिया कि पाण्डवों ने भी तो छलपूर्वक ही युद्ध किया है। मेरे पिता को उन्होंने धोखा दे कर मार डाला इस लिए मेरा हृदय अभी तक जलता रहता है। पितामह भीष्म को भी ऐसी अवस्था में इन्होंने मारा जिस समय उन्हों ने अस्त्रों का परित्याग कर दिया था। इसी प्रकार अनेक राजाओं को इन्होंने छल से नष्ट कर दिया। इस लिए इन लोगों को भी धोखे से मार देने में कोई पाप नहीं लग सकता।

इतना कह कर वे अपने रथ पर सवार हो कर पाण्डवों के शिविर की ओर चल पड़े। कृतवर्मा और कृपाचार्य भी उनके पीछे हो लिए और तीनों

शिविर में जा पहुंचे। रात्रि के समय अश्वत्थामा ने विधिपूर्वक भगवान् शङ्कर की शुद्ध हृदय से आराधना की और प्रार्थना की कि हे महाराज! मैं अपने पक्ष के विनाश से बहुत पीड़ित हूं और इसी चिन्ताग्नि में जला जा रहा हूं। मुझे क्षण भर भी शान्ति नहीं मिलती। भगवन्! मैं आपकी शरण आया हूं और प्रार्थना करता हूं कि मेरी कामना की पूर्ति हो।

भगवान् शङ्कर आशुतोष तो हैं ही थोड़ी सी आराधना करने से ही वे प्रसन्न हो गए और उनके प्रसाद से अश्वत्थामा को एक अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार मिल गई। उस तलवार के पाते ही उनका तेज द्विगुणित हो गया। उस को लेकर वे शिविर में घुस पड़े और धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, शिखण्डी आदि वीरों को सोते में ही मार डाला। असंख्यों सैनिकों को पीस डाला और शिविर की सभी सेना का विनाश कर दिया। जो सैनिक डर के मारे शिविर के बाहर भागने लगे उनको कृपाचार्य और कृतवर्मा ने मार डाला।

इस प्रकार सेना का नाश कर वे तीनों वहाँ से चल दिए और भिन्न भिन्न दिशाओं को चले गए। अश्वत्थामा चलते चलते रेवा नदी के तट पर पहुंचे। वहाँ पर हजारों ऋषि बैठे घोर तपस्या कर रहे थे। अश्वत्थामा के आश्रम में घुसते ही मुनियों ने अपने योगबल से उनका दुष्कर्म जान लिया और वे कहने लगे कि हे अश्वत्थामा! तुमने सोते समय अपने शत्रुओं को मार कर भीषण पाप किया है। तुम्हारे मुख देखने से हम लोग पतित हो जाएँगे। तुम्हारे साथ बातचीत करने से ब्रह्महत्या करने का पाप होगा। इसलिए हे पुरुषाधम! तुम हमारे आश्रम से निकल जाओ।

ब्रह्मवादी मुनियों के ऐसे तिरस्कारपूर्ण वचन सुन कर अश्वत्थामा बहुत लज्जित हुए और उस आश्रम से उलटे पैर निकल गए। वहाँ से वे काशी, प्रयाग, हरद्वार आदि अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हुए गए पर सभी जगह उनका इसी प्रकार अनादर हुआ। इस अनादर से अश्वत्थामा बहुत ही दुःखित हुए और इसके प्रायश्चित्त करने की इच्छा से भगवान् वेदव्यास की शरण में पहुंचे।

महामुनि व्यास बदरिकाश्रम में ध्यान लगाए बैठे थे उसी समय अश्वत्थामा ने जा कर उन्हें भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनको देखते ही व्यासदेव ने कहा कि हे द्रोणपुत्र! तुम यहाँ से अभी चले जाओ। तुमने सोते हुए सैनिकों को मार कर घोर पातक किया है। अतः तुम्हारे साथ वार्तालाप

करने से मैं भी पातकी हो जाऊँगा।

व्यासदेव के ऐसे वचन सुन कर अश्वत्थामा ने कहा कि सम्पूर्ण संसार से तिरस्कृत होता हुआ तो मैं आपकी शरण आया। यदि आप ही ऐसे शब्द कहेंगे तो मेरा उद्धार और कौन करेगा। भगवन्! आप दीनवत्सल हैं मेरे ऊपर कृपा कीजिए। आप सर्वज्ञ हैं कृपया इस पाप का प्रायश्चित्त बता कर मेरा उद्धार कीजिए।

व्यासजी को उनके ऊपर दया आई और वे चिरकाल तक इसका प्रायश्चित्त मनमें ढूढ़ते रहे पर कोई भी उनके ध्यान में न आया। तब वे कहने लगे कि हे द्रोण-पुत्र! इस पाप का प्रायश्चित्त किसी स्मृति में नहीं बताया गया है। तो भी मैं कुछ उपाय अवश्य बताऊँगा। दक्षिण सागर के कूल पर धनुष्कोटि नाम का एक परम पावन तीर्थ है। वहाँ पर रामनाथ नाम के महादेव प्रतिष्ठित हैं। उनकी आराधना से स्वर्ग, मोक्ष आदि सकल अलभ्य वस्तुएँ भी अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। उनके दर्शनों से अकाल मृत्यु का शमन हो जाता है और आयु की वृद्धि होती है। हे द्रोणनन्दन! उस तीर्थ में स्नान करने से तथा श्रीरामनाथ महादेव की आराधना करने से तुम इस महा अनर्थकारी पाप से छुटकारा पा सकते हो।

व्यासदेव के कथन के अनुसार अश्वत्थामा धनुष्कोटि तीर्थ में पहुंच कर भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगे। एक महीने तक उन्होंने नियमपूर्वक उस तीर्थ में स्नान किए, वे दिन में तीन बार श्री रामनाथ महादेव जी की षोडश उपचारों से पूजा करते थे और ॐ नमः शिवाय इस मन्त्र का जप करते थे।

तीसवें दिन अश्वत्थामा ने उपवास किया और रात्रि को जागरण किया। रात भर भगवान् की खूब स्तुति की और मारे आनन्द के नाचते गाते रहे। भगवान् सदाशिव इस आराधना से बहुत प्रसन्न हो कर प्रकट हुए। उनके दर्शन पाते ही अश्वत्थामा प्रेमगद्गद वाणी से स्तुति करने लगे और कहने लगे कि हे देवदेव! आप समस्त विश्व के स्वामी हैं आर्त जनों के ऊपर सदा करुणा करते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखों से मुक्त करके सम्पूर्ण सुखों को देते हैं। आपके चरणकमलों के सहारे से आपत्तिसमुद्र में डूबते हुए मनुष्यों का उद्धार होता है। हे पतितोद्धारक! मुझे कृपा कर बचाइये

और इस पाप समूह से मुझको मुक्त कीजिए* ।

इस स्तुति को सुन कर महादेवजी अश्वत्थामा से बोले कि हे अश्वत्थामन्! सोते हुए मनुष्यों के मारने का दोष तो धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान करने से ही मिट गया अब तुम अपना अभीष्ट वर माँगो । मैं जिस मनुष्य के ऊपर प्रसन्न हो जाऊँ उसके लिए संसार में कोई अलभ्य पदार्थ नहीं ।

भगवान् के ऐसे प्रसन्न वचन सुन कर अश्वत्थामा कहने लगे कि हे महाराज! आपके दर्शनों से ही मैं कृतार्थ हो गया । पुण्यहीन जनों को आपके दर्शन कोटि जन्म में भी प्राप्त नहीं होते । इस लिए हे शम्भो! मुझे यही वर दीजिए कि आपके चरणों में मेरी अटल भक्ति हो । भगवान् "तथास्तु" कह कर अन्तर्धान हो गए और अश्वत्थामा सब पापों से मुक्त हो गए । धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान करने का स्कन्द पुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा हैः—

धनुष्कोटिरितिख्यातं तीर्थमस्ति महत्तरम् ।
अस्ति पुण्यतमं द्रौणे ! महापातकनाशनम् ॥
स्वर्गमोक्षप्रदं पुंसां ब्रह्महत्यादिशोधकम् ।
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥

ब्रा० से० ख० मा० ३१ अ०

---

* नमस्ते देवदेवेश करुणाकर शङ्कर ।
आपदम्बुधिमग्नानां पोतायितपदाम्बुज ॥ १८ ॥
महादेव कृपामूर्ते धूर्जटे नीललोहित ।
उमाकान्त विरूपाक्ष चन्द्रशेखर ते नमः ॥ १९ ॥
मृत्युञ्जय त्रिनेत्र त्वं पाहि मां कृपया दृशा ।
पार्वतीपतये तुभ्यं त्रिपुरघ्नाय शम्भवे ॥ २० ॥
पिनाकपाणये तुभ्यं त्र्यम्बकाय नमोनमः ।
अनन्तादिमहानागहारभूषणभूषित ॥ २१ ॥
शूलपाणे नमस्तुभ्यं गङ्गाधर मृडाव्यय ।
रक्ष मां कृपया देव पाप संघातपञ्जरात् ॥ २२ ॥

ब्रह्मखण्ड से० मा० ३१ अ०

सैंतीसवाँ रत्न

महर्षि मंकि

भगवान् शङ्कर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों के समर्पण करने से परम प्रसन्न होते हैं। एक भी सुन्दर पुष्प यदि शिव लिङ्ग के ऊपर भक्ति और श्रद्धा के साथ चढ़ाया जाय तो उसका फल यज्ञ के फल से कहीं अधिक होता है। बिल्व और शमी के पत्र कनैर, मालती, उन्मत्तक (गुड़हल) और चम्पा के पुष्प चढ़ाने से तो भगवान् सदाशिव तत्क्षण प्रसन्न हो जाते हैं। जो फल हजारों वर्ष घोर तप करने से भी नहीं मिलता वह एक पुष्प के चढ़ाने से मिल जाता है। इस विषय में महर्षि मंकि का उदाहरण बहुत सुन्दर है।

प्राचीन काल में मंकि नामक एक महर्षि हो गए हैं। उनका शरीर कुबड़ा था। तप करने की अभिलाषा से वे प्रभासक्षेत्र में गए और वहाँ एक शिवलिङ्ग विधिविहित क्रम से स्थापित किया। प्रतिदिन बड़ी भक्ति के साथ वे भगवान् की आराधना करते थे और प्रेमगद्गद वाणी से स्तुति करते थे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए उन्होंने अन्न-जल का भी परित्याग कर दिया। कभी कभी पैर के अँगूठे पर ही वर्षों खड़े रह जाते और भगवान् के चरणों का ध्यान करते रहते थे।

इस प्रकार घोर तप करते करते उन्हें सैकड़ों वर्ष बीत गए और वे अत्यन्त जरातुर हो गए। उनके सामने के आए हुए अनेक लँगोटिया सिद्ध बन कर स्वर्ग का सुख भोगने लगे, पर इनकी खबर किसी ने न ली। महादेव जी का इन्हें कुछ भी प्रसाद नहीं मिला। इस लिए मंकि मुनि के मन में बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि या तो मैं प्राण दे दूँगा या शिव जी को प्रसन्न करके छोड़ूँगा। जब तक भगवान् को प्रसन्न न कर लूँगा तब तक यहाँ से हटूँगा नहीं।

ऐसा दृढ़ निश्चय कर वे आसन जमा कर बैठ गए और घोर तप करने लगे। तप करते करते वे एक दम वृद्ध हो गए। शरीर में झुर्रियाँ पड़ गईं, बाल सफ़ेद हो गए। इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। देह जीर्ण हो गई। अन्त में भगवान् शङ्कर ने दर्शन दिए और कहने लगे कि हे मुने! मैं तुम्हारे तप से परम प्रसन्न हूँ जो वर माँगना हो माँगो।

मंकि ने हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक निवेदन किया कि हे सुरश्रेष्ठ! मैं अत्यन्त वृद्ध हो गया, आँखों से दिखाई नहीं देता, हाथ पैर चलते नहीं अब वर ले

कर ही क्या करूँगा। परन्तु यह पूछना चाहता हूं कि मेरी तपस्या की विधि में ऐसा कौन सा दोष था जिसके कारण आप मुझ पर इतने दिनों तक प्रसन्न नहीं हुए। मेरे सामने के आए हुए लोग आपके वर से इस समय स्वर्ग का अनुपम सुख भोग रहे हैं और मैं इसी दशा में पड़ा हूं। मेरे इतना कठिन तप तो इनमें से किसी ने भी न किया होगा।

महादेवजी ने कहा कि हे मुने! तुमने तप तो बहुत किया इसमें कुछ भी सन्देह नहीं पर मैं जिन वस्तुओं से प्रसन्न होता हूं वे तुमने मुझे समर्पण नहीं कीं। तुम कुबड़े थे और यज्ञ पूजा में लगे रहते थे इस लिए वृक्षों से सुन्दर सुगन्धित पुष्प नहीं तोड़ सकते थे। पुष्पों से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। और कुछ हो चाहे न हो नाना वर्ण के सुन्दर पुष्प मेरे ऊपर चढ़ा दिए जाएँ तो मैं बहुत प्रसन्न हो जाता हूं। लिंग के दक्षिण भाग में ब्रह्माजी रहते हैं बाएँ में विष्णु और मध्य में मैं स्वयं रहता हूं। जिस ने लिंग की पूजा की उसने तीनों देवों की पूजा कर ली। लिंग के ऊपर पुष्प चढ़ाने से ये तीनों देव प्रसन्न हो जाते हैं। तुम्हारे सामने के आए हुए लोग सुन्दर पुष्प चढ़ा कर ही परम गति को प्राप्त हो गए। अस्तु अब तो मैं प्रसन्न ही हूं जो माँगना हो माँगो।

मंकि मुनि ने कहा कि मैं यही वर चाहता हूं कि जो इस तीर्थ में स्नान कर केवल जल से ही इस लिङ्ग को स्नान करा दे उसको साङ्गोपाङ्ग पूजन का फल प्राप्त हो। हे भगवन्! आज से जितने दिव्य एवं लौकिक वृक्ष हैं वे यहाँ पर आकर उपस्थित रहें। मेरे ऐसे लूले, लँगड़े और कुबड़ों का तभी उद्धार हो सकता है।

भगवान् ने प्रसन्न हो कर कहा कि जो मनुष्य इस लिङ्ग की पूजा केवल जल से ही करेगा उसे सर्वाङ्ग पूजा का फल प्राप्त होगा। यहाँ पर विश्व के सभी नाग (वृक्ष) सदा वर्तमान रहेंगे और इसी से इसका नाम नागस्थान होगा। हे द्विजवर! तुम अभी मेरे लोक को प्राप्त हो कर मेरे साथ अनेक सुखों का अनुभव करोगे।

इतना कह कर भगवान् तो अन्तर्धान हो गए और परम पूज्य महर्षि मंकि इस पार्थिव शरीर का परित्याग कर शिवलोक को चले गए। इस लिए पुष्पों का समर्पण करना पूजा का एक परम आवश्यक अङ्ग है। इसके बिना पूजा खंडित रहती है और इसका फल प्राप्त नहीं होता। भगवान् शङ्कर ने स्वयं कहा है कि पुष्प चढ़ाने से मैं बहुत तुष्ट होता हूं।

बिल्वपत्रं शमीपत्रं करवीरं च मालतीम् ।
उन्मत्तकं चम्पकं च सद्यः प्रीतिकरं भवेत् ॥ १८ ॥
चम्पकाशोककल्हारैः करवीरैस्तथा मम ।
पूजेष्टा द्विजशार्दूल ! ये चान्ये बहुगन्धिनः ॥ १९ ॥
एतर्हि पूजितो नित्यं शीघ्रं तुष्टिम्प्रयाम्यहम् ॥

स्कन्द० प्र० खे० मा० २०३ अ०

अड़तीसवाँ रत्न

अहल्या

महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या बड़ी सुन्दरी थीं। उनके सौन्दर्य को देख स्वर्ग की रम्भा, मेनका आदि अप्सराएँ भी लज्जित होती थीं। उनके सौन्दर्य की कथा भूलोक में तो विस्तृत थी ही क्रमशः स्वर्ग लोक में भी पहुंच गई और देवराज इन्द्र के कानों तक पहुंची। वे गौतम के आश्रम में पहुंचे और अहल्या को देख कर मोहित हो गए। देवराज स्वर्गाधिपति इन्द्र के सौन्दर्य और वैभव को देख कर अहल्या का भी चित्त चञ्चल हो गया और दोनों में प्रेम हो गया।

गौतम मुनि फल, फूल, मूल, समिधा आदि लाने के लिए प्रति दिन वन में जाया करते थे और सायंकाल के समय लौट कर आया करते थे। उनकी अनुपस्थिति में इन्द्र अहल्या के समीप प्रतिदिन आते और उनके लौट कर आने के पहले ही वे स्वर्गलोक को चले जाते थे। नारद को इस बात का पता लग गया और उन्होंने यह वृत्तान्त गौतम को जा सुनाया। गौतम उस समय फल मूल लाने के लिए वन को जा रहे थे सुनते ही लौट पड़े। घर पर सचमुच इन्द्र और अहल्या दोनों बैठे प्रेमालाप कर रहे थे। उन्हें देखते ही इन्द्र डर के मारे नग्न ही भाग पड़े। अहल्या भी अत्यन्त भीत होकर थर थर काँपने लगीं।

ऐसी स्थिति देख कर गौतम को बड़ा क्रोध आया और आँखें लाल कर इन्द्र को शाप देते हुए कहने लगे कि हे इन्द्र ! तुमने मेरी साध्वी स्त्री का धर्म बिगाड़ कर परम निन्दनीय कार्य किया है इस लिए मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम्हारे मुख में हजार भग हो जाएँ जिससे संसार में तुम मुँह दिखाने योग्य न रह

जाओ। अब यदि मर्त्यलोक में पूजा लेने आओगे तो तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जाएँगे।

इस प्रकार इन्द्र को शाप दे कर वे अहल्या से बोले कि हे पापे ! तूने बड़ा ही निन्दनीय कार्य किया है। तेरे मुख देखने में भी पाप है। तू मानव शरीर में रहने योग्य नहीं है। जा तू आज ही पत्थर हो जा।

गौतम के मुख से इन वचनों के निकलते ही अहल्या शिलामयी हो गई और इन्द्र के मुख में हजार भग बन गए। अपनी ऐसी दशा देख कर इन्द्र परम लज्जित हुए और मेरु पर्वत की कन्दरा में जा छिपे। किसी को यह पता नहीं कि इन्द्र कहाँ पर हैं और क्या कर रहे हैं। इन्द्र के अभाव से स्वर्ग में अराजकता फैल गई। दैत्यों और दानवों ने सुअवसर देख कर धावा बोल दिया और देवों को तङ्ग करने लगे। बिचारे देवता दैत्यों से पीड़ित हो कर इधर उधर मारे मारे फिरने लगे। इन्द्राणी तो मारे चिन्ता के व्याकुल हो उठीं और बृहस्पति को बुला कर इन्द्र के विषय में पूछने लगीं।

बृहस्पति ने चिर काल तक ध्यान लगा कर ज्ञान चक्षु से इन्द्र को मेरु पर्वत की कन्दरा में छिपे देखा। सब देवों को साथ ले कर वे वहाँ गए और देवराज से वहाँ निवास करने का कारण पूछने लगे। इन्द्र ने लज्जित हो कर सब कथा सुना दी और कातर स्वर में कहने लगे कि अब इस गर्हित आकृति से मैं राज्य नहीं करूँगा। मैं संसार को अपना मुख नहीं दिखा सकता।

इन्द्र के ऐसे दीन वचन सुन कर बृहस्पति सब देवों को ले कर गौतम के समीप गए और उनसे कहने लगे कि हे महर्षे ! इन्द्र इस समय लज्जा से बाहर नहीं निकलते हैं। इनके अभाव से तीनों लोक पीड़ित हो रहे हैं। यज्ञादिक सभी क्रियाएँ लुप्त हो गई हैं। इस लिए मेरे कहने से आप इनको शाप से मुक्त कर दीजिए।

बृहस्पति के वचन सुन कर गौतम ने कहा कि मेरे वचन झूठे नहीं हो सकते और इन्द्र को अपने किए कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। मैं स्वयं अपने वचन को मिथ्या कैसे कर सकता हूं।

गौतम को अपने वचन पर दृढ़ देख कर सब देवता जा कर ब्रह्माजी को लिवा लाए। ब्रह्मा जी गौतम को साथ ले कर इन्द्र के समीप पहुंचे और सबके सामने गौतम से कहने लगे कि हे मुनिसत्तम ! इन्द्र ने अवश्यमेव अनुचित कार्य किया है। आपने इनको शाप दे कर कोई दोषावह कार्य नहीं किया। परन्तु तपस्वियों

की शोभा क्षमा से होती है। इस लिए इनके अपराध को क्षमा कर इस त्रिलोक को नष्ट होने से बचाइये।

गौतम जी मान गए और इन्द्र को सहस्राक्ष बना दिया। परन्तु अहल्या उसी दशा में पड़ी रह गईं। बहुत समय के अनन्तर जब रामावतार हुआ और रामचन्द्रजी ने महर्षि विश्वामित्र के कहने से उस शिला का स्पर्श किया तब अहल्या पत्थर से फिर स्त्री हो गईं।

अपने पूर्व रूप को प्राप्त हो कर अहल्या पूर्व कर्मों को स्मरण करती हुईं अपने पति देव की शरण गईं और प्रार्थनापूर्वक उस पाप का प्रायश्चित्त पूछने लगीं। उन्हों ने कहा कि मैं अपनी शुद्धि के लिए कठिन से कठिन प्रायश्चित्त करने के लिए तयार हूँ। आप केवल उस प्रायश्चित्त के बताने की कृपा करें।

गौतम महर्षि ने बहुत सोच विचार कर व्यवस्था दी कि तीर्थ यात्रा करते हुए एक सौ चान्द्रायण, एक हजार कृच्छ्र चान्द्रायण, दस हजार प्राजापत्य व्रत करने से और पृथ्वी के अड़सठ तीर्थों में स्नान करने से शुद्धि हो सकती है।

अहल्या ने पतिदेव के कथनानुसार प्रायश्चित्त करना आरम्भ कर दिया और चान्द्रायण आदि व्रत करते हुए तीर्थ यात्रा करने लगीं। अन्त में वे हाटकेश्वर के समीप पहुंची पर उनके पहुंचते ही वहाँ का मार्ग बन्द हो गया।

अहल्या ने मन में विचार किया कि जब तक हाटकेश्वर के दर्शन न होंगे तब तक पाप से मुक्ति नहीं मिल सकती इस लिए यहीं बैठ कर पातालसंस्थित भगवान् हाटकेश्वर के दर्शन पाने के लिए सुदुष्कर तप करना चाहिए।

ऐसा निश्चय कर अहल्या ने उसी स्थान पर अपने नाम से एक शिवलिंग संस्थापित किया और षोडशोपचार से उनका त्रिकाल पूजन करने लगीं। गर्मी के दिनों में पञ्चाग्नि तपती थीं और शीतकाल में शीतल जल में ही बैठी रहती थीं। वर्षा ऋतु खुले मैदान में बैठ कर बिताती थीं।

इस प्रकार घोर तप करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया पर हाटकेश्वर के दर्शन नहीं मिले। अहल्या के पुत्र शतानन्द को इतना समय व्यतीत हो जाने से बड़ा आश्चर्य हुआ और वे माता को खोजते हुए उसी जगह जा पहुंचे। अपनी माता को दारुण तप करते हुए देख वे बहुत दुःखित हुए और कहने लगे कि हे

माता जी ! आपने सड़सठ शिव लिङ्गों के दर्शन कर लिए हैं, अड़सठवाँ लिङ्ग पाताल में है, उस के दर्शन कोई मनुष्य नहीं कर सकता। इस लिए अब आपकी पूर्णतया शुद्धि हो गई, आप कृपया घर चलें।

परन्तु अहल्या ने यह प्रस्ताव स्वीकार न किया और कहने लगीं कि मने निश्चय कर लिया है कि जब तक हाटकेश्वर के दर्शन न कर लूँगी तब तक घर न जाऊँगी। हे प्रिय पुत्र ! तुम जा कर अपने पिताजी को सब समाचार सुना देना।

शतानन्द ने अपनी माता का दृढ़ निश्चय देख उन्हीं के साथ वहीं तप करने का विचार किया और अपने नाम से एक शिव लिङ्ग संस्थापित कर तपस्या करने लगे। परन्तु चिर काल तक तप करने पर भी भगवान् शङ्कर प्रसन्न नहीं हुए।

जब गौतम ऋषि ने देखा कि शतानन्द के निकले बहुत दिन व्यतीत हो गए और अभी तक कोई समाचार नहीं मिला तो वे बड़े चिन्तित हुए और उनको खोजने के लिए चल पड़े। खोजते खोजते वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ शतानन्द अपनी माता के सन्निकट बैठे भगवान् शङ्कर का ध्यान कर रहे थे। पहिले तो उन दोनों को घोर तपस्या करते देख वे बड़े प्रसन्न हुए पर पश्चात् उनके शरीर को अस्थिचर्मावशिष्ट देख बहुत दुःखित हुए और कहने लगे कि तुम लोग बहुत तप कर चुके अब घर चलो। अधिक तप करने की अब आवश्यकता नहीं।

बहुत समझाने पर भी जब वे दोनों अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए तब गौतम मुनि भी वहीं आसन जमा कर तप करने बैठ गए और प्रतिज्ञा की कि अपने तप से मैं इन लोगों को हाटकेश्वर के दर्शन करा के मानूँगा।

उन्हों ने एक हजार वर्ष तक घोर तप किया और उस तप के प्रभाव से पृथ्वी को फोड़ कर एक उत्तम शिवलिङ्ग निकल आया। बारह सूर्य के समान उसका तेज था और सब सुन्दर लक्षण उस में विद्यमान थे। उसी समय शशिशेखर भगवान् शङ्कर प्रकट हुए और महर्षि से कहने लगे कि मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त सन्तुष्ट हूं। तुम्हारी तपस्या से, तुम्हारे पुत्र और पत्नी की तपस्या से इस लिङ्ग का प्रादुर्भाव हुआ है। अहल्या की अब पूर्ण रूप से शुद्धि हो गई। अब तुम्हें जो वर माँगना हो माँगो।

गौतम जी ने कहा कि हे महाराज ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यहां

वर दीजिए कि भूलोकस्थित इन हाटकेश्वर के दर्शन करने से पातालस्थित शिव के दर्शनों का पुण्य प्राप्त हो। अहल्येश्वर, शतानन्देश्वर और गौतमेश्वर के दर्शनों से मनुष्य के सब पातक दूर हो जाएँ।

भगवान् शङ्कर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर कैलास को चले गए और गौतम महर्षि बहुत आनन्दित होते हुए अहल्या और शतानन्द के साथ अपने आश्रम में जा कर सुख और शान्ति के साथ जीवन का आनन्द लेने लगे। इस कथा के सुनने से मनुष्य परस्त्रीगमनजनित पाप से मुक्त हो जाता है। स्कन्द पुराण में लिखा है:—

इन्द्रस्य स्थापनं मर्त्ये अहिल्याख्यानमेव च।
गौतमेश्वरमाहात्म्यं तथादित्येश्वरस्य च॥ ९५॥
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं श्रद्धया परया युतः।
स मुच्येत् पातकात् सद्यः परदारसमुद्भवात्॥ ९६॥

नागरखण्ड २०८ अ०

उन्तालीसवाँ रत्न

अगस्त्य सोदर

अगस्त्य मुनि के समान ही उनके सहोदर भाई भी बड़े तपस्वी, तेजस्वी और धर्मकर्मनिष्ठ थे। वे नाना मुनियों से सेवित हिमालय पर्वत पर तप किया करते थे। असंख्य सिद्ध, चारण, गन्धर्व, और किन्नर उस मनोहर भूमि में निवास कर जीवन का आनन्द लेते थे। उस वन में सिंह, व्याघ्र, वराह, गज, महिष आदि भयङ्कर हिंसक जीव स्वच्छन्दतापूर्वक भ्रमण किया करते थे और कानन की रमणीयता बढ़ाते थे। योगियों के प्रभाव से उनका शाश्वतिक विरोध भाव दूर हो गया था। हंस, कोकिल, चक्रवाक आदि सुन्दर पक्षियों के कलरव से उसकी मनोहरता दूनी हो रही थी। सरोवर के निर्मल जल में समुत्पन्न नाना वर्ण के कमलों पर भ्रमरों के झुण्ड मड़राते रहते थे और अपने गुञ्जार से मुनियों के मन को भी आकर्षित करते थे। तमाल, ताल, हिंताल, चम्पक, अशोक, वट आदि वृक्षों की शीतल छाया में बैठे हुए असंख्य मुनि तप किया

करते थे और इस असार संसार के बन्धनों से मुक्ति पाने का मार्ग खोजा करते थे।

अगस्त्य मुनि के सोदर भाई भी उसी परम पवित्र कानन के एक रमणीय एवं अत्यन्त शान्त प्रान्त में पर्ण कुटी बना कर पवित्र मनुष्य योनि में जन्म लेने का पूरा लाभ उठा रहे थे। सत्य का यथार्थ पालन करते थे। जो भाव उनके मन में आते उन्हीं को वाणी द्वारा प्रकट करते थे और उन्हीं के अनुसार वे आचरण भी करते थे। इसका उन्हें पूरा ध्यान रहता था कि उनकी किसी कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय की प्रवृत्ति दुष्ट वासना की ओर न होने पाए। अहिंसा का तो उनका परम व्रत था, उनके शरीर से किसी का रोम भी दुःखित हो जाता तो वे कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत कर उसका प्रायश्चित्त करते थे। वे मन में भी किसी के प्रति दुर्भावना नहीं लाते थे। तितिक्षा और सन्तोष के तो वे अवतार ही थे। कुटी पर आए हुए अतिथियों का स्वागत करने में तथा उनकी शुश्रूषा करने में ही वे अपनी समूची शक्ति लगा देते थे।

ब्राह्म मुहूर्त में निद्रा का परित्याग कर चिरकाल तक भगवान् के नाम का स्मरण करते और तदनन्तर स्नान आदि प्रातः कृत्य विधिविहित रीति से समाप्त कर सन्ध्या वन्दन एवं गायत्री की उपासना करते थे इसके पश्चात् वे वेद का अध्ययन और अध्यापन कर पितरों की तृप्ति के लिए तर्पण-श्राद्धादि करते थे। होम और बलिवैश्वदेव कर के वे आए हुए अतिथियों की सेवा में लग जाते थे इस प्रकार शास्त्रोक्त पञ्च महायज्ञों* के समाप्त किए बिना वे पानी भी नहीं पीते थे। अवशिष्ट समय में शास्त्रों का मनन करना और पुराणों का श्रवण करना ही उनका एक मात्र कालयापन करने का साधन था। इन्हीं सब सत्कर्मों में उनके सम्पूर्ण समय का सदुपयोग हुआ करता था।

उनके परम उपास्य देव शङ्कर थे। इस लिए वे दिन में तीन बार शिव जी की अर्चना करते थे। वन से फल, फूल, मूल ले आते और वेदविहित विधि से भगवान् की पूजा करते थे। उन्होंने अपना शरीर भगवान् शम्भु को समर्पण

---

* अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ ८०॥
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नै भूतानि बलिकर्मणा॥ ८१॥

मनुस्मृति अध्याय ३

कर दिया था और उन्हें ऐहलौकिक अथवा पारलौकिक किसी भी प्रकार के सुख की अभिलाषा नहीं थी। उनका एक मात्र ध्येय यही था कि किसी प्रकार इस संसार के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त हो।

इस प्रकार तप करते करते उन्हें हजार वर्ष व्यतीत हो गए पर भगवान् के सुखद दर्शन नहीं मिले। तब उन्होंने और भी कठिन तप करना प्रारम्भ कर दिया। वे ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि के बीच बाएँ पैर के अँगूठे पर बिना किसी के सहारे निश्चल भाव से खड़े हो कर सूर्य की ओर अविरत ताकते हुए और मौन धारण किए हुए अतिदारुण तप करने लगे। उनके तप के तेज से हिमाच्छन्न हिमालय पर्वत भी प्रज्वलित हो उठा।

इस तीव्र तप को देख कर दयानिधि भगवान् चन्द्रशेखर बहुत प्रसन्न हुए और वृषभ पर आरूढ़ हो कर दशों दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए उनके समीप आए। उनके दर्शन कर मुनि परमाह्लादित हुए और साष्टाङ्ग प्रणाम कर मधुर कण्ठ से अधोलिखित स्तोत्र से स्तुति करने लगे:—

नमस्ते पार्वतीनाथ नीलकण्ठ महेश्वर।
शिव रुद्र महादेव नमस्ते शम्भवे विभो॥ १॥
श्रीकण्ठोमापते शूलिन् भगनेत्रहराव्यय।
गङ्गाधर विरूपाक्ष नमस्ते रुद्रमन्यवे॥ २॥
अन्तकारे कामशत्रो देवदेव जगत्पते।
स्वामिन् पशुपते शर्व नमस्ते शतधन्वने॥ ३॥
दक्षयज्ञविनाशाय स्नायूनाम्पतये नमः।
निचेरवे नमस्तुभ्यं पुष्टानाम्पतये नमः॥ ४॥
भूयोभूयो नमस्तुभ्यं महादेव कृपालय।
दुस्तराद्भवसिन्धो मां तारयस्व त्रिलोचन॥ ५॥

इस स्तोत्र से भगवान् और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे मुने! मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूं। मुझे ज्ञात है कि तुम स्वर्गादि सुख को भी तुच्छ समझते हो और केवल मुक्ति की कामना से तप कर रहे हो। इस लिए मैं तुम्हें मोक्ष मिलने का एक उपाय बताता हूं। गन्धमादन पर्वत पर कङ्काल तीर्थ के सन्निकट एक महातीर्थ है। उसमें स्नान करने से तुमको अवश्य मोक्ष मिल जायगा। इससे अधिक सरल उपाय तुम्हारे लिए और कोई नहीं हो सकता। वहीं रामनाथ महादेव हैं। तुम उनकी आराधना करना और तीर्थ में

स्नान करना। इसके पुण्य से थोड़े ही दिनों में तुम्हारी अभीष्टसिद्धि हो जाएगी।

भगवान् के आदेश के अनुसार वे उस महापुण्य तीर्थ में गए। वहाँ वे तीन वर्ष तक नियमपूर्वक स्नान करते रहे और विधिविहित रीति से शिवार्चन करते रहे। चौथे साल वे एक दिन समाधि लगाए भगवान् का ध्यान कर रहे थे उसी समय उनके प्राण ब्रह्मरन्ध्र द्वारा निकल गए। इस पार्थिव कलेवर का परित्याग कर वे परम धाम को प्राप्त हो अमृत हो गए। उसी दिन से उस तीर्थ का नाम अमृतवापी हो गया।

इस तीर्थ में निरन्तर तीन साल तक स्नान करने से तथा रामनाथ भगवान् के पूजन करने से विज्ञान और विवेक से शून्य, वैराग्य से रहित, यागादि के अनुष्ठान का विरोधी मनुष्य भी अमृतत्व पा कर मुक्त हो जाता है। स्कन्द पुराण में लिखा है कि:—

अत्र तीर्थे नरा ये तु वर्षत्रयमतन्द्रिताः।
स्नानं कुर्वन्ति ते सत्यममृतत्वं प्रयान्ति हि ॥ ४२ ॥
आगत्यामृतवाप्यां च स्नात्वा नियमपूर्वकम्।
रामादीनपि सेवन्ते ते सर्वे मुक्तिमाप्नुयुः ॥ ५४ ॥
अद्वैतविज्ञानविवेकशून्या विरक्तिहीनाश्च समाधिहीनाः।
यागाद्यनुष्ठानविवर्जिताश्च स्नात्वात्र यास्यन्त्यमृतं द्विजेन्द्राः ॥५५॥

ब्रह्म ख० से० मा० १३ अ०

चालीसवाँ रत्न

महामुनि सुचरित

भृगुवंश में समुत्पन्न सुचरित नाम के एक महामुनि थे। वे जन्म ही से अन्धे थे इसी कारण किसी तीर्थ की यात्रा नहीं कर सके थे। उनके मन में तीर्थ यात्रा करने की बड़ी लालसा थी। किसी तीर्थ में स्नान न कर पाने का उनके मन में बड़ा क्लेश था।

इस कामना की पूर्ति के लिए उन्होंने भगवान् धूर्जटि की आराधना करने का दृढ़ निश्चय किया। वे दक्षिण महासागर के तट पर गन्धमादन पर्वत के

एक भाग में तपस्या करने लगे। निराहार और जितेन्द्रिय हो कर वे भगवान् शङ्कर का त्रिकाल पूजन करते थे। उष्ण काल में पञ्चाग्नि तपते थे, शिशिर काल में जल में ही बैठ कर समय व्यतीत करते थे और वर्षाकाल में खुले मैदान में बैठ कर भगवान् का ध्यान करते रहते थे। उनका भोजन या तो वायु या अधिक से अधिक जल होता था। अन्न का ग्रहण तो उन्होंने दस वर्ष तक किया ही नहीं। भस्म और रुद्राक्ष से उनका शरीर सदा विभूषित रहता था।

इस प्रकार तप करते हुए जब दस वर्ष बीत गए तो भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और सुचरित के समीप आ कर प्रकट हुए। उस समय भगवान् के तेज से सब दिशाएँ प्रकाशमान हो गईं। उस वन में जीवन का सञ्चार हो गया। सभी पशु और पक्षी आनन्द से कलोलें करने लगे। उनके आते ही सुचरित की दोनों आँखें खुल गईं और उन्होंने भगवान् का मनोहर रूप देखा।

वे वृषभ के ऊपर सवार थे, आस पास हजारों भूत, प्रेत, पिशाच आदि शिवगण खेल कूद रहे थे। वे अपने जटामण्डल में गङ्गा जी को और अर्द्धाङ्ग में पार्वती जी को धारण किए थे। बड़े बड़े नाग उनके शरीर भर में लिपटे हुए थे। उनका तेज एक कोटि सूर्य के समान था परन्तु असह्य नहीं था।

उनके दर्शन पाते ही सुचरित बड़े भक्तिभाव से उनकी स्तुति करने लगे और कहने लगे कि हे परमानन्दविग्रह! हे विश्वेश्वर! हे करुणासिन्धो! मैं आपकी शरण आया हूं। आप मुझे अपने कृपाकटाक्ष से अनुगृहीत कीजिए। हे संसारवैद्य! आपको भक्तों की रक्षा करने में बड़ा आनन्द आता है इसी लिए आप थोड़ी ही सेवा से प्रसन्न हो कर भक्तों को इस संसार के बन्धनों से मुक्त कर अपने धाम को भेज देते हैं। हे दयानिधे! मेरे पूर्व कृत्यों का कुछ भी विचार न कर मेरी रक्षा कीजिए।

इस स्तुति से भगवान् की प्रसन्नता दूनी हो गई और वे सुचरित से वर माँगने के लिए कहने लगे।

सुचरित ने भगवान् के वचन सुन कर कहा कि हे दयालो! मैं अत्यन्त वृद्ध हो गया हूं, मेरे सब अङ्ग अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं, मैं कोस दो कोस भी नहीं चल सकता। मेरे मन में तीर्थ यात्रा करने की उत्कट अभिलाषा है। मैं सब तीर्थों में स्नान करना चाहता हूं और प्रसिद्ध प्रसिद्ध शिवलिङ्गों की पूजा करना चाहता हूं। इस लिए जिस उपाय के करने से सब

तीर्थों के स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाय वह बताइये।

भगवान् शङ्कर ने कहा कि हे सुचरित! मैं तुह्मारे ऊपर परम प्रसन्न हूं इसी लिए सम्पूर्ण तीर्थों को मैं यहीं बुला देता हूं। आज से सभी तीर्थ यहाँ निवास करेंगे और इसका नाम सर्वतीर्थ होगा। इसमें स्नान करने से मनुष्य के सब पातक उसी प्रकार भाग जाएँगे जिस प्रकार गरुड़ को देख कर सर्प। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रूपी रोगों की तो यह महौषधि है। कुम्भीपाक, रौरव आदि महा नरकों की अग्नि से बचने का तो यह एक मात्र उपाय है। इस तीर्थ के सेवन से वेदान्त-विज्ञान के बिना ही मुक्ति मिलती है।

भगवान् ने इस प्रकार इस तीर्थ का फल बताते हुए उनको उसमें स्नान करने का आदेश दिया। स्नान करते ही सुचरित का वार्धक्य एक दम लुप्त हो गया और उनका शरीर यौवन और सौन्दर्य से दमक उठा। उनके उस कलेवर का पूर्णतया परिवर्तन हो गया और उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

शिवजी ने मुनि से कहा कि हे द्विजवर! तुम इसी तीर्थ के तीर पर निवास करते हुए स्नान किया करो और मेरा भक्तिपूर्ण हृदय से स्मरण किया करो। दूसरे देश के तीर्थों में कभी मत जाना। इसी तीर्थ के पुण्य के फल से तुमको अन्त में मेरा लोक प्राप्त होगा। तुह्मारा तो कहना ही क्या जो अन्य साधारण जन भी इस पवित्र तीर्थ में स्नान करेंगे उन्हें भी शिव लोक में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

ऐसा कह कर शिवजी अपने लोक को चले गए और महर्षि सुचरित सर्व-तीर्थ के तट पर भगवान् रुद्र की आराधना करने लगे। ऐहलौकिक अनेक सुखों को भोग कर अन्त में वे सब बन्धनों से मुक्त हो कर शिवसायुज्य को प्राप्त हो गए।

भगवान् शङ्कर की कृपा से सुचरित को एक ऐसा तीर्थ प्राप्त हो गया जिस से सुचरित की सम्पूर्ण तीर्थों में नहाने की कामना पूर्ण हो गई। भगवान् ने अपने मुख से इस तीर्थ का सब माहात्म्य सुचरित को बताया है:—

महापातकसंघानां दावानलसमद्युतौ।
काममोहभयक्रोधलोभरोगादिनाशने॥ ३९॥

जन्ममृत्य्वादिनक्रौघसंसारार्णवतारणे ।
कुम्भीपाकादिसकलनरकाग्निविनाशने ॥ ४० ॥
विना वेदान्तविज्ञानं सद्यो निर्वाणकारणे ।
सर्वतीर्थे सुचरित ! स्नाहि सद्यो विमुक्तये ॥ ४१ ॥

स्कन्द पु० से० मा० २६ अ०

इकतालीसवाँ रत्न

महामुनि दुर्वासा

एक बार दुर्वासा ऋषि अनेक पर्वत, नदी, नगर, सागर आदि का अवलोकन करते हुए परम पावनी काशी पुरी में पहुंचे। वहाँ पहुंचते ही उनका मन बहुत प्रसन्न हुआ। वहाँ के गगनचुम्बी प्रासादों की शोभा अवर्णनीय थी। स्थान स्थान पर सुन्दर स्वच्छ सलिल से परिपूर्ण कुण्ड और तड़ाग अपनी लहरों से मनुष्यों के चित्त में आनन्द की लहरें उठा रहे थे। नाना प्रकार के अति विशाल वृक्ष सुन्दर पल्लव, पुष्प और फलों से शोभायमान हो रहे थे। काल से भी न डरने वाले मुनियों की कुटियाँ पगपग पर बनी हुई थीं। भस्म रमाए हुए, जटाजूट धारण किए हुए, केवल कौपीन लगाए हुए, तुम्बा बगल में दबाए हुए, मेघ गम्भीर स्वर से बम् बम् करते हुए भगवान् शङ्कर के ध्यान में मस्त असंख्य शिवभक्तों को देख दुर्वासा बहुत हृष्ट हुए। कहीं कहीं उन्हें त्रिदण्डी दिखाई दिए जो कि एक दम निःसङ्ग और निष्परिग्रह थे तथा विश्वेश्वर के भरोसे काल से भी नहीं डरते थे। अनेक स्थलों में उन्हें ऐसे पवित्र दर्शनीय आजन्म ब्रह्मचारी ब्राह्मण मिले जो सम्पूर्ण वेदों के रहस्य को यथावत् समझते थे और वेदध्वनि से गगन मण्डल को व्याप्त किया करते थे।

तीनों लोकों में विचरण करने वाले दुर्वासा ऋषि ने अपने मन में विचार किया कि काशी के पशु पक्षियों में जितना सन्तोष, सौन्दर्य और हर्ष है उतना विश्व के किसी भाग में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। यह परम कल्याण का स्थान है। ऐसा स्थान तो स्वर्ग में देवों को भी दुर्लभ है। इस आनन्दकानन में विचरण करने वाले पशुओं को जितना आनन्द प्राप्त होता है उतना नन्दन वन में

विहार करने वाले देवों को भी प्राप्त नहीं हो सकता। दूसरे देश के परम सात्विक याज्ञिक से काशी नगरी का निवासी म्लेच्छ भी कहीं अधिक भाग्यवान् है क्यों कि ज्ञानियों के लिए भी परम दुर्लभ मोक्ष इस पुरी में अनायास ही प्राप्त होता है।

विश्वेश्वर की पुरी में दुर्वासा का चित्त जितना एकाग्र और सन्तुष्ट हुआ उतना भूलोक, स्वर्लोक और नागलोक के किसी स्थल में नहीं हुआ था। उन्हें यह नगरी सब से अधिक रमणीय प्रतीत हुई अतः वे तप करने के लिए आसन जमा कर बैठ गए। चिरकाल तक उन्होंने एकाग्र चित्त से भगवान् शङ्कर की आराधना की पर कुछ फल नहीं दिखाई दिया। दिन पर दिन वे तप की तीव्रता को बढ़ाते गए पर भगवान् शङ्कर की कृपा नहीं हुई।

अपने तप को व्यर्थ होते देख दुर्वासा को बड़ा क्रोध आया और वे काशी पुरी को शाप देने के लिए प्रस्तुत हुए। उन्होंने कहा कि इस पुरी ने मुझे बहुत धोखा दिया है। इसमें मैंने कठिन तप करते हुए बहुत समय व्यतीत किया पर कुछ हुआ नहीं। अब मैं शाप दे कर इस पुरी को ऐसा बनाए देता हूं जिसमें किसी को कभी इसके सेवन से मुक्ति मिल ही न सके। ऐसे वचन कह कर ज्यों ही वे शाप देने के लिए उद्यत हुए त्यों ही महादेव जी हँसते हुए प्रकट हुए और अपने मन में कहने लगे कि ये तपस्वी लोग विचित्र होते हैं। जिस स्थान में ये लोग तप करते हैं, जहाँ निवास करते हैं और जहाँ रह कर ही प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं उसी को अपनी क्रोधाग्नि से नष्ट करना चाहते हैं। अभीष्ट वस्तु पाने में ज्यों ही थोड़ी देर हुई त्यों ही ये क्रोध से लाल हो गए।

भगवान् सदाशिव अपने मन में ऐसा सोच ही रहे थे कि इतने में दुर्वासा की क्रोधाग्नि सम्पूर्ण गगनमण्डल में व्याप्त हो गई। उस अग्नि के दाह से संसार के जीवमात्र दग्ध होने लगे और भीषण हाहाकार मच गया। शिवजी के गण तो और भी अधिक क्षुब्ध हुए। वे प्रलयकालीन समुद्र के जल के समान उमड़ पड़े और गर्जते, तड़पते और भीषण आयुध चमकाते हुए भगवान् रुद्र के आस पास आ डटे।

क्रोध से लाल आँखें किए हुए वे सब कहने लगे कि हम लोगों के सामने यम, काल, मृत्यु अथवा अन्तक क्या चीज हैं। हम लोग इनको तृण के समान समझते हैं। आग को हम लोग पानी के समान पी सकते हैं, समस्त पर्वतों को क्षण भर में चूर चूर कर सकते हैं, सातों समुद्रों को सुखा कर मरु भूमि बना सकते

हैं। पाताल को आकाश में खींच सकते हैं और आकाश को पाताल में गिरा सकते हैं। सम्पूर्ण व्योम मण्डल को एक कौर बना कर निगल सकते हैं। इस विशाल ब्रह्माण्ड को फोड़ कर टुकड़े टुकड़े कर सकते हैं। इस धूमसंभार को और इस प्रचण्ड अग्नि को नष्ट कर देना तो हम लोगों के बाएँ हाथ का खेल है। मृत्युञ्जय भगवान् रुद्र के प्रताप को ऐसा कौन मतवाला होगा जो कि न जानता हो।

इस प्रकार कहते और भीषण ध्वनि से गर्जते हुए नन्दी, नन्दिषेण, सोमनन्दी, महोदर, वृकोदर, कृशोदर, क्षोभण, द्रावण, पिचिण्डिल, प्रचण्ड, चण्ड, तुण्डी, चण्डपाणि, शूलपाणि, पाशपाणि आदि असंख्य शिवगण आकाश और पृथ्वी को घेर कर खड़े हो गए और उस समय प्रलय सा होता दिखाई दिया। भगवान् ने उन सब गणों को शान्त करते हुए कहा कि ये दुर्वासा ऋषि मेरे ही अंश से उत्पन्न हैं। मैं और ये दो व्यक्ति नहीं। इस लिए तुम लोग अपना क्रोध शान्त करो; अभी सब ठीक हुआ जाता है।

इसी समय दुर्वासा मुनि के संस्थापित शिव लिङ्ग से सकलकल्याणप्रद शङ्कर भगवान् प्रकट हुए और मुनि से कहने लगे कि हे मुने! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूं, जो वर माँगना हो माँगो, मैं निस्सन्देह तुम्हें अभीष्ट वर दूँगा।

महादेव जी के वचन सुन कर दुर्वासा बड़े लज्जित हुए और बहुत विनयपूर्वक शिव जी से कहने लगे कि हे करुणानिधे! हे दीनवत्सल! मैंने क्रोध के वशीभूत हो कर भारी अपराध किया है। मैं त्रैलोक्य को अभय देने वाली काशी पुरी को शाप देने के लिए उद्यत हुआ इस लिए मुझे कोटिशः धिक्कार है। दुःखार्णव में डूबते हुए संसार के कष्टमय आवागमन से अत्यन्त खिन्न कर्मपाश में फँसे हुए जीवों को मुक्ति प्राप्त करने का काशी के अतिरिक्त कोई साधन है ही नहीं। काशी जीवमात्र की एकमात्र जननी है। यह उन्हें अमृत रूपी दूध पिला कर परम पद को पहुंचा देती है। अथवा काशी की उपमा जननी के साथ हो ही नहीं सकती क्यों कि जननी तो गर्भ में धारण कर जीव को संसार के बन्धनों से जकड़ देती है और काशी सांसारिक दुःख-दारिद्र्य से जीव को सदा के लिए मुक्त कर परब्रह्म में लीन कर देती है। ऐसी परमपदप्रदायिनी काशी पुरी को जो शाप देगा उसी को उलट कर वह शाप लग जाएगा और काशी का कुछ नहीं बिगड़ेगा। भगवन्! मैंने काशी के प्रति अपने मन में

दुर्भाव ला कर बड़ा पाप किया है। कृपया आप इस अपराध को क्षमा करें।

महर्षि दुर्वासा के मुख से काशी की स्तुति सुन कर शिव जी को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे मुनि से बोले कि हे महर्षे! तुमने जो काशी का माहात्म्य बताया है वह अक्षरशः सत्य है। मुझे जितनी प्रसन्नता काशी की स्तुति सुन कर होती है उतनी न तो दान करने से होती है और न यज्ञ करने से। जिसने काशी की स्तुति कर ली और काशी के माहात्म्य को हृदय में धारण कर लिया उसने कठिन से कठिन तप कर लिया और करोड़ों यज्ञ कर लिए। जिसकी जीभ पर काशी ये दो अक्षर रहते हैं उसे कभी गर्भवास का दारुण दुःख नहीं भोगना पड़ता। प्रातः काल उठ कर जो काशी के नाम का उच्चारण करता है वह इस लोक और परलोक दोनों लोकों को जीत कर इनके परे ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाता है। काशी की स्तुति की अभिलाषा रखने वाला मनुष्य मुझे जितना प्यारा है उतना मेरा दीक्षित भक्त भी प्यारा नहीं। जिसने इस आनन्दकानन की स्तुति कर ली उसने मेरी स्तुति कर ली।

हे मुने! आज तक घोर तप करने का जितना पुण्य तुम्हें न मिला होगा उतना आज काशी की स्तुति करके मिल गया। हे तपस्विप्रवर! मैं वर देता हूं कि तुम्हारी सब कामनाएं पूरी हो जाएं और महामोह का विनाशन करने वाला ज्ञान प्राप्त हो। हे ऋषे! तुम्हें और जो कुछ वर माँगना हो माँग लो मैं सब कुछ देने को तयार हूं। तुम्हारे ऐसे मुनिजन ही प्रशंसा के पात्र होते हैं। तुमने काशी के ऊपर कोप प्रकट किया इससे मैं अप्रसन्न नहीं हूं। जिसके शक्ति होती है वही तो कोप करता है। जो सामर्थ्यहीन हैं, मुर्दा है, वह क्या कोप करेगा। इस लिए तुम यह न समझना कि मैं तुम से असन्तुष्ट हूं।

ऐसे प्रिय वचन सुन कर दुर्वासा मुनि बहुत प्रसन्न हुए और प्रेमभरी वाणी से स्तुति करने लगे कि हे देवदेव! आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। संसार-ताप से तप्यमान जनों के ऊपर आप सदा करुणा करते हैं। बड़े बड़े अपराधों को भी क्षमा कर आप भक्त जनों का कल्याण करते हैं। आप की आराधना से अकाल मृत्यु का भय नहीं रह जाता। हे त्रिलोचन! हृदय में भक्ति का लेश मात्र रखने वाले अज्ञानियों को भी आप ज्ञान देकर दिव्य दृष्टि दे देते हैं और परमधाम का पथ बता देते हैं।

हे भगवन्! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो इस शिव लिङ्ग को कामेश नामक लिङ्ग बना दें और इस कुण्ड का नाम कामकुण्ड हो जाय। इस

कुण्ड में स्नान कर इन महादेवजी के पूजन से मनुष्य की सब कामनाएँ पूरी हो जाया करें।

शिवजी ने कहा कि हे मुने! तुम्हारे संस्थापित दुर्वासेश्वर का नाम आज से कामेश्वर होगा। जो मनुष्य शनिप्रदोषको कामकुण्ड में स्नान कर कामेश्वर के दर्शन करेगा वह किसी प्रकार की नरकयातना नहीं भोगेगा। सहस्रों जन्मों में किए गए असंख्य पाप भी कामतीर्थ में स्नान करने से उसी प्रकार भाग जाते हैं जिस प्रकार सिंह को देख कर मृग। कामेश्वर के सेवन करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

इतना वर देकर महादेवजी उसी लिङ्ग में लीन हो गए और दुर्वासा ऋषि ने अभीष्ट फल प्राप्त किए। भगवान् शङ्कर ने कामेश्वर के पूजन का माहात्म्य अपने मुख से दुर्वासा को बताया है:—

संस्नास्यति नरो धीमान् कामकुण्डे त्वदास्पदे।
त्वत्स्थापितं च कामेशं लिगं द्रक्ष्यति मानवः॥ ७६॥
स वै कामकृताद्दोषात् यामीं नाप्स्यति यातनाम्।
बहवोऽपि हि पाप्मानो बहुभिर्जन्मभिः कृताः॥ ७७॥
कामतीर्थाम्बुसंस्नानात् यास्यन्ति विलयं क्षणात्।
कामाः समृद्धिमाप्स्यन्ति कामेश्वरनिषेवणात्॥ ७८॥

काशीखण्ड उत्तरार्ध ८५ अ०

बयालीसवाँ रत्न

महामुनि वत्स

प्राचीन काल में वत्सनामक एक परम तेजस्वी ब्राह्मण थे। साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों का उन्होंने अच्छी प्रकार अध्ययन किया था। सभी शास्त्रों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। पठन-पाठन तथा भगवच्चरण सेवन में ही उनका अधिकतर समय व्यतीत होता था।

एक बार वे काननों में भ्रमण करते करते महर्षि देवरात के आश्रम में पहुंचे। वहाँ सब लक्षणों से युक्त रूप और यौवन से सम्पन्न अपूर्व सौन्दर्य से समन्वित मृगलोचनी देवरात की पुत्री मृगावती को देख कर वत्स का चित्त चञ्चल हो उठा। वे देवरात के समीप गए और मृगावती के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट करने लगे। देवरात ने अपनी कन्या का विवाह बड़ी प्रसन्नता के साथ शुभ मुहूर्त में वत्स से कर दिया।

उस परम सुन्दरी के साथ वन में विहार करते हुए वत्स जीवन का आनन्द लेने लगे। परन्तु मुनि के भाग्य में यह आनन्द अधिक काल के लिए नहीं लिखा था। एक दिन मृगावती अपनी सहेलियों के साथ कानन में विचरण करने के निमित्त गई। घूमते घूमते उसका पैर घास फूस से ढके हुए एक भयङ्कर नाग के सिर पर पड़ गया। उस सर्प ने क्रोध में आ कर मृगावती को काट लिया और वह उसके विष से तत्क्षण मर गई

उन सखियों ने यह दारुण वृत्तान्त मुनि को सुना दिया। वे यह दुःखद वृत्तान्त सुनते ही हाहाकार मचाते हुए घटनास्थल पर पहुंचे और अपनी प्राणप्रिया को निर्जीव देख कर छाती पीट पीट कर विलाप करने लगे और करुण स्वर में कहने लगे कि यह मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारी मृगलोचनी मृगावती परलोक को चल बसी। अब मैं अकेला नहीं जी सकता। प्रियारहित गृह में निवास करने से दुःख के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता। मुझ में इतना साहस और धैर्य नहीं कि अकेला इस लोक में रह सकूं इस लिए मैं भी अपने प्राणों का परित्याग कर उसी लोक में जाऊंगा जहाँ मेरी वल्लभा चली गई है। कर्णपर्यन्त नेत्रवाली, मधुर भाषण करने वाली मेरी दयिता ही जब नहीं है तो मैं अब किस लिए इस असार संसार में जीवन धारण करूँ।

इस प्रकार हृदयविदारक विलाप करते हुए वत्स ने चिता बनाई। मृगावती के शरीर को उस पर रख कर आग लगा दी और स्वयं उस चिता पर चढ़ने लगे। इतने में उनके कुछ मित्र इस दारुण वृत्तान्त को सुन कर उस जगह पहुंच गए और मुनि को इस आत्महनन रूपी दुष्कर्म करने से रोक कर किसी प्रकार समझा बुझा आश्रम में ले गए।

आधी रात तक तो वे किसी प्रकार विलाप करते हुए आश्रम में पड़े रहे पर ज्यों ही उनके समीपवर्ती जन निद्रा के वशीभूत हुए त्यों ही वे कान्ता के वियोग में विलाप करते हुए आश्रम को त्याग श्वापदसंकुल निर्जन वन की

ओर निकल पड़े। वे इस दुःसह वियोग से एक दम उन्मत्त हो गए और मार्ग में जिस किसी पशु, पक्षी, आदि को देखते उसी से अपनी प्रिया के विषय में पूछने लगते। वे अपने मन में सोचते कि सूखे घास का खाने वाला शिथिलेन्द्रिय जङ्गली पशु भी कान्ता के विरह में उदास हो जाता है तो मैं सज्ञान जवान इस परम सुन्दरी पतिभक्तिपरायण पत्नी से वियुक्त हो कैसे जी सकता हूं। पक्षियोनि में समुत्पन्न मयूर को अपनी मयूरी के सामने आनन्दोन्मत्त हो कर नृत्य करते हुए देख वत्स के कोमल हृदय पर वज्रपात सा हो जाता था और वे बेचैन हो कर करुण क्रन्दन करने लगते थे।

इस प्रकार रोते पीटते वे बहुत दूर तक निकल गए। इधर उनके मित्रों की जब नींद खुली तो वे वत्स को न पा कर बड़े दुःखित हुए और उनकी खोज में निकले। खोजते खोजते वे किसी प्रकार उनके समीप पहुंचे और उन्हें आश्रम में पकड़ लाए। आश्रम में आने पर उनका दुःख कोप में परिणत हो गया और उन्होंने आँखों के सामने आए हुए सभी सर्पों के मारने की प्रतिज्ञा की। सर्प जाति का विनाश करना ही उन्होंने अपने जीवन का एक मात्र कर्त्तव्य बना लिया।

उसी दिन से वत्स ने ब्राह्मण वृत्ति का तो परित्याग कर दिया और एक मोटा सा डण्डा लेकर साँपों की खोज में निकले। उनके सामने छोटे, बड़े, विषैले, काले, पीले, जैसे साँप पड़े सब दण्ड प्रहार से काल के गाल में पहुंच गए। इस प्रकार असंख्यों सर्पों को मारते हुए वे एक सरोवर के समीप पहुंचे। वहाँ एक वृद्धा बनैला साँप दिखाई दिया। उसको देखते ही वत्स ने मारने के लिए डण्डा उठाया।

काल को अपने सिर पर सवार देख उस वृद्ध सर्प ने नम्रतापूर्वक कहा कि हे ब्राह्मणसत्तम! मैं एकान्त में पड़ा हुआ अपना जीवन व्यतीत करता हूँ न किसी से बोलता हूं और न किसी को कष्ट पहुँचाता हूं। मुझ निरपराधी बूढ़े को आप क्यों मारते हैं?

वत्स से उसने बहुत प्रार्थना की पर उन्होंने डण्डा चला ही दिया। डण्डे के लगते ही उसका सर्प का शरीर तो न जाने कहां चला गया और सामने सूर्य के समान तेजस्वी एक महापुरुष दिखाई दिया। इस घटना को देख वत्स मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे प्रणाम कर कहने लगे कि हे महापुरुष! मैंने कोप के वश में हो कर बड़ा अनुचित कार्य किया है, कृपया मेरा अपराध क्षमा

कीजिए। मुझे दया करके बताइये कि आप कौन हैं और आपने यह सर्प का शरीर क्यों धारण किया था; किसी के शाप के कारण ऐसा हुआ या आप की यह लीलामात्र थी।

उस महापुरुष ने प्रसन्न गम्भीर वाणी में उत्तर दिया कि हे मुने! मैं आपको पूरा वृत्तान्त सुनाता हूं आप ध्यानपूर्वक सुनने का अनुग्रह करें। पूर्वजन्म में मैं चमत्कारपुर में निवास करता था। ईश्वर की दया से मैं परम तेजस्वी एवं धनधान्यसमृद्ध था। उसी रम्य नगर में सिद्धेश्वर महादेव का एक सुविशाल मन्दिर था। एक दिन उस शिवालय में बड़े उत्साह के साथ उत्सव मनाया गया। वहाँ पर जो नाना प्रकार के बाजे बजे तो उनकी गम्भीरता से तीनों लोक व्याप्त हो गए। उस नाद को सुन कर हजारों शैव, पाशुपत, कापालिक तथा अन्य शिवभक्त दूर दूर से आ पहुँचे। उनमें से कुछ तो एक बार भोजन करने वाले थे, कुछ सूखे पत्ते चबा कर निर्वाह करते थे, कुछ केवल जल पी कर रहते थे, कुछ वायु पी कर ही सन्तुष्ट रहते थे और कुछ एक दम निराहार रह कर भगवान् शङ्कर का ध्यान किया करते थे।

वे सब भगवान् सिद्धेश्वर की वन्दना कर उनके सामने बैठ गए और अनेक देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों की दया, धर्म, सत्य आदि के उपदेश देने वाली नाना कथाएँ कहने सुनने लगे। भक्तिपूर्ण हृदय वाले अनेक साधु जन नृत्य, गान, वादन आदि में मग्न हो गए। कुछ धनिक लोग दीन अन्ध और कृपणों को धन दे कर सन्तुष्ट करने लगे।

ऐसे समय में अपने यारों के साथ जवानी के मद में चूर मैं भी तमाशा देखने की गरज से वहीं जा डटा। मैं अज्ञान से अन्धा हो रहा था इस लिए मेरे हृदय में शिव की भक्ति तो थी नहीं केवल उस उत्सव में विघ्न डाल कर मज़ा लेना चाहता था। मैंने जीभ लपलपाता हुआ एक दीर्घकाय भयङ्कर जल-सर्प पकड़ कर उन लोगों के बीच फेंक दिया। उसे देखते ही समूची मण्डली तितर बितर हो गई और डर के मारे वे सब आनन्दरसमग्न भक्त इधर उधर भाग गए। केवल एक सुप्रिय नामक तपस्वी समाधि लगाए बैठे रहे। वे कम्प-रहित, सीधे और दृढ़ आसन से बैठे थे। उनकी ग्रीवा और देह अत्यन्त स्थिर और सीधी थीं। उनकी दृष्टि किसी ओर न जा कर केवल नासिका पर स्थिर थी। जीभ निश्चल रूप से तालु के मध्य भाग में जमी हुई थी और वायु के आवागमन को रोके हुई थी। हृदय के अण्दल कमल की कर्णिका में संस्थित

सूर्यमण्डल के मध्य में द्वादश आदित्य के समान प्रभावान् अवर्णनीय आकार वाले अङ्गुष्ठमात्र पुरुष का ध्यान अचल मन से कर रहे थे। वहाँ वे कमलासन पर विराजमान, अनिन्द्य, अभेद्य, जरा-मरण से रहित वेदनाथ महेश्वर का ध्यान कर रहे थे। उस परमानन्द में उनकी आखों से आँसू बह रहे थे। इन्द्रियों के सभी व्यापार बन्द हो गए थे, सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया था और वे महामुनि योगनिद्रा के वशीभूत हो गए थे। कहाँ क्या हो रहा है इसका उन्हें लेशमात्र भी ज्ञान नहीं रह गया था। और का क्या कहा जाय उन्हें अपने शरीर का भी भान नहीं हो रहा था। ऐसी अवस्था में सर्प के फेंके जाने के विषय में कुछ भी प्रतीत होना उनके लिए असम्भव था।

सर्प को और कोई तो मिला नहीं यही मुनि मिले। उसने इनके शरीर को अच्छी तरह जकड़ लिया। इतनी ही देर में उनके श्रीवर्धन नामक सर्व शास्त्र-पारङ्गत परम तपस्वी शिष्य आ गए। उन्हें अपने महामना पूज्य गुरु के शरीर को सर्प से वेष्टित देख कर और मुझे उनके समीप ही खड़े देख बड़ा क्रोध आया और उनकी आँखें लाल हो गईं। ओठ फड़कने लगे और रोष के मारे आँखों में आँसू भर आए। वे बड़े परुष स्वर में कहने लगे कि यदि मैंने तीव्र तप किया हो, गुरु की सच्चे हृदय से शुश्रूषा की हो और निर्विकल्प चित्त से भगवान् महेश्वर का ध्यान किया हो तो यह दुष्ट पापात्मा ब्राह्मणाधम इसी समय सर्पयोनि को प्राप्त हो जाय। उन महातपस्वी का वचन अन्यथा कैसे हो सकता था। शाप देते ही मैं मनुष्ययोनि से सर्पयोनि को प्राप्त हो गया।

कुछ काल के अनन्तर सुप्रभ मुनि का ध्यान टूटा। उन्होंने अपने शरीर में लपटे हुए एक भयङ्कर सर्प को देखा, पास ही मुझे सर्प के आकार में देखा तथा आस पास भयभीत जन समुदाय को देखा। ऐसी गम्भीर स्थिति देख सब बातें उनकी समझ में आ गईं। वे मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखते हुए श्रीवर्धन से बोले कि हे शिष्य! तुमने इस दीन ब्राह्मण को शाप दे कर तपस्विजन के योग्य कार्य नहीं किया। मान और अपमान को जो समान समझता हो, पत्थर और सोने में जो भेद न रखता हो, शत्रु और मित्र को जो एक सा मानता हो वही तपस्वी सिद्धि पा सकता है*। हे वत्स! तुमने अनजाने इसको शाप दे दिया है इस लिए इसका अपराध क्षमा कर शाप से मुक्त कर दो।

---

* समो मानेऽपमाने च समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तपस्वी सिद्धिमाप्नोति सुहृच्छत्रुसमाकृतिः॥

श्रीवर्धन ने हाथ जोड़ विनयपूर्वक गुरु से कहा कि हे पूज्य गुरो ! अज्ञान से अथवा ज्ञान से मेरे मुख से जो निकल गया वह अन्यथा नहीं हो सकता। इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। हे देव ! हँसी में भी मेरे मुख से निकले हुए वचन कभी झूठे नहीं हुए हैं, आप के निमित्त कहे गए क्या कभी झूठे हो सकते हैं। सूर्यदेव पूर्व दिशा को छोड़ कर पश्चिम दिशा में कदाचित् उदित हो सकते हैं, अगाध अनन्त महासागर सूख कर मरुस्थल बन सकता है, सुमेरु पर्वत क्रमशः नष्ट हो सकता है पर मेरा वचन झूठा नहीं हो सकता। इस लिए हे गुरो ! आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा कर अनुगृहीत करें।

महर्षि सुप्रभ ने कहा कि मैं अच्छी प्रकार जानता हूं कि तुम्हारे वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते। तुम्हें इस प्रकार उपदेश देना इस समय के लिए नहीं है किन्तु इस लिए है कि भविष्य में तुम्हें ऐसा करने का कभी साहस न हो। गुरु का यह कर्तव्य है कि वयस्थ शिष्य का भी सदा शासन करता रहे। तुम तो अभी बालक हो, तुम्हें उपदेश देना तो मेरा परम आवश्यक कर्तव्य है। इस लिए मैं तुमको उपदेश दे रहा हूं। क्षमा से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तपस्वियों के लिए तो क्षमा से बढ़ कर कोई शस्त्र ही नहीं। पापी के प्रति अपने मन में पापबुद्धि न लानी चाहिए; उसका पाप उसी को खा जाएगा। उपकार करने वाले के प्रति जो मनुष्य सज्जनता प्रकट करता है उसमें कोई विशेषता नहीं, जो मनुष्य अपकार करने वाले के साथ उपकार करे वह साधु कहा जाता है*।

इस प्रकार अपने शिष्य को अनेक प्रकार के उपदेश दे कर वे ऋषि मुझसे कहने लगे कि हे भाई ! मुझे तुम्हारी यह दशा देख कर दारुण दुःख है। परन्तु

---

* क्षमैका सिद्धिदा प्रोक्ता यतीनां च विशेषतः।
तस्मात् क्षमां पुरस्कृत्य वर्तितव्यं तपस्विभिः ॥ १७८ ॥
न पापं प्रति पापः स्याद् बुद्धिरेषा सनातनी।
आत्मनैव हतः पापो यः पापं तु समाचरेत् ॥ १७९ ॥
दग्धः स दह्यते भूयो हतमेव निहन्ति च।
सम्यग्ज्ञानपरित्यक्तो यः पापे पापमाचरेत् ॥ १८० ॥
उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः कीर्त्यते जनैः ॥ १८१ ॥

स्क० नागरखण्ड २९ अ०।

अब कुछ उपाय नहीं, मेरे शिष्य का कथन त्रिकाल में अन्यथा नहीं हो सकता। अतः सर्पयोनि से मुक्त होने के समय की प्रतीक्षा तुमको करनी ही पड़ेगी।

तब मैंने बड़ी नम्रता के साथ प्रश्न किया कि हे महाराज! मैं बड़ा अज्ञानी और दीन हूं। मेरे ऊपर कृपा कर बताइये कि मेरे शाप का अन्त कब होगा।

महर्षि सुव्रत ने कहा कि शिवालय में जो व्यक्ति एक क्षण भी नृत्य, गीत आदि करे उसके पुण्य का पारावार नहीं और जो इस उत्सव में एक क्षण भी विघ्न करे उसके पाप का ठिकाना नहीं। इस लिए हे दुर्बुद्धे! तुमने इस महोत्सव में विघ्न डाल कर घोर पाप किया है; अब केवल बातों से काम नहीं चलेगा। मैं जो उपाय बताता हूं उसके करने से इस घोर पातक से छुटकारा मिल सकता है। शिवजी के ॐ नमः शिवाय इस षडक्षर मन्त्र के जप करने से ब्रह्महत्या-जनित पाप से भी मुक्ति मिल जाती है। षडक्षर मन्त्र का यदि दस बार जप किया जाय तो एक दिन में किए गए सब पाप दूर हो जाते हैं। बीस बार के जप करने से साल भर के पाप नष्ट हो जाते हैं। तुम जल में बैठ कर इसी मन्त्र का जप करो। धीरे धीरे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जाएँगे। कुछ दिनों के अनन्तर वत्सनामक ब्राह्मण आएँगे। उनके डण्डे की चोट खाते ही तुम्हें इस योनि से मुक्ति मिल जाएगी।

महर्षि के उपदेश के अनुसार मैं तभी से इसी जलाशय में भक्तियुक्त चित्त से षडक्षर मन्त्र का जप किया करता था। आज आपके प्रसाद से मुझे छुटकारा मिला है। देखिए मेरे ले जाने को यह देवप्रेषित विमान चला आ रहा है अब मैं इसी पर बैठ कर परम धाम को चला जाऊँगा। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है इस लिए मुझे बताइये कि इस ऋण से मुक्त होने के लिए आपकी क्या सेवा करूँ।

वत्स ने कहा कि यदि आप मेरा कुछ उपकार करना चाहते हैं तो मुझे ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे मेरा यह प्रियाविरहजन्य हृत्ताप दूर हो जाए और शत्रु, व्याधि, दरिद्रता आदि से कभी दुःख न उठाना पड़े।

उस दिव्य पुरुष ने कहा कि हे मुने! आपने प्रश्न तो बड़ा भारी कर दिया। इतनी शीघ्रता में इसका पूरा उत्तर देना तो असम्भव है, संक्षेप में कुछ उपाय बताए देता हूं। शिवजी का षडक्षर मन्त्र प्राणियों के सब अशुभों का हरण करने वाला है। आप उस मन्त्र का यथाशक्ति दिन रात जप कीजिएगा। उसके पुण्य से आपकी सभी कामनाएँ पूरी होंगी, सब पातकों से मुक्त हो कर स्वर्ग,

मोक्ष आदि जो कुछ चाहिएगा अनायास ही मिल जाएगा। शास्त्रों में जितने प्रकार के दान कहे गए हैं उनके करने से जितना पुण्य प्राप्त होता है उतना ही इस मन्त्र के जप करने वालों को मिलता है। अखिल भूमण्डल के तीर्थों में भक्तिपूर्वक स्नान करने का जो फल होता है वही इस षडक्षर मन्त्र के जप करने का होता है। एक सहस्र चान्द्रायण व्रत करने का और इसके जप करने का एक सा फल होता है। सौ वर्ष तक वर्षा ऋतु में खुले मैदान में समय बिताने का, जाड़े में जल में निवास करने का, तथा गर्मी में पञ्चाग्नि तपने का जो पुण्य होता है वही पुण्य पवित्र हो कर श्रद्धासमेत रातदिन षडक्षर मन्त्र के जप करने का होता है। प्रतिवर्ष पितृपक्ष में गयाश्राद्ध करने का जो फल होता है वह फल षडक्षर मन्त्र के जप से भी प्राप्त होता है। कार्तिकी पूर्णिमा को एक सहस्र गोदान करने का उतना ही पुण्य होता है जितना इस मन्त्र के जप करने का होता है। सर्वसङ्ग का परित्याग कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वाले को जो परम पद मिलता है वही षडक्षर मन्त्र के जप करने वाले को मिलता है। इस लिए हे मुने! आप षडक्षर मन्त्र का जप कीजिए इससे आपकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी और प्रियाविरहसमुत्पन्न दुःख से भी मुक्ति मिल जाएगी। मैंने यह परम गोप्य मन्त्र बता दिया है।

परन्तु हे द्विजवर! यह मन्त्र तभी सिद्ध और फलादायक होगा जब आप हिंसा करने का पूर्णरूप से परित्याग कर देंगे। सब वेदों में अहिंसा ही परम धर्म बताया गया है। ब्राह्मण के लिए अहिंसा व्रत का पालन करना परमावश्यक है। अहिंसक जीवों का जो मनुष्य वध करता है उसे महाप्रलय पर्यन्त घोर नरक में निवास करना पड़ता है। चर और अचर भूतों को जो अभय देता है वह इस लोक में अनेकों सुख भोग कर स्वर्ग को जाता है।

उस दिव्य पुरुष का वचन सुन कर वत्स ने कहा कि मैंने वृद्धों के मुख से सुना है कि हिंसाजन्य पाप सबको नहीं लगता। राजा लोग वन में असंख्यों जीवों को मारते हैं उनको इसका पाप नहीं लगता। वैद्यों ने मांस का भक्षण परम हितकर बताया है; उसके सेवन से शरीर पुष्ट होता है और आयुष्य की वृद्धि होती है। हे महामते! मुझे इस विषय में बड़ा सन्देह है। आप इसको दूर कर दीजिए। आप जो कहेंगे उसे मैं अवश्य मान लूंगा।

दिव्य पुरुष ने उत्तर दिया कि यह मांसलोलुप महापापी दुर्जनों का मत है। ऐसे निर्दय पापी लोग शोचनीय हैं। मांस का भक्षण करना तो परम

दोषावह है। मांस से न तो आयु की वृद्धि होती है और न बल की। इसके भक्षण से आरोग्य लाभ होना भी असम्भव है। मांस के खाने वाले भी अनेक रोगों से पीड़ित दुर्बल तथा अल्पायु दिखाई देते हैं। इसी प्रकार मांस का परित्याग करने वाले मनुष्य नीरोग और मोटे ताजे पृथ्वी में आनन्द लेते हुए दिखाई देते हैं, उनकी आयु भी बड़ी होती है। अतः मांस के भक्षण से कुछ लाभ तो होता नहीं हानि अवश्य होती है।

जो मनुष्य मांस का भक्षण करता है वह घोर नरक में जाता है। घास, लकड़ी आदि निर्जीव पदार्थ से तो मांस मिलता नहीं, प्राणी के शरीर काटने से ही मिलता है। जैसा कष्ट अपने किसी अङ्ग के काटने से अपनी आत्मा को होता है वैसा ही कष्ट दूसरे की आत्मा को उसके अङ्गों के काटने से होता है। जितना कष्ट अपनी आत्मा को होता है उतना ही दूसरे की भी आत्मा को होता होगा ऐसा समझ कर जीवों की हत्या नहीं करनी चाहिए केवल उनके सौन्दर्य को और उनमें दिखाई गई जगदीश्वर परमेश्वर की कारीगरी को देखना और सराहना चाहिए। हिंसा करने का पाप केवल एक व्यक्ति को नहीं होता किन्तु आठ व्यक्तियों को होता है। जीव को मारने वाला, अनुमोदन करने वाला, उसके मांस को काटने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, उसका संस्कार करने वाला (पाचक), समीप लाने वाला तथा भक्षण करने वाला ये आठ प्रकार के घातक होते हैं। ये आठों उस हिंसाजनित पाप के भागी होते हैं। जो व्यक्ति मनसा, वाचा और कर्मणा हिंसा नहीं करता वह जरा और मरण से रहित परम पद को प्राप्त होता है। केवल शाक, मूल और फलों का खाने वाला हो और ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से पालन करता हो किन्तु हिंसा करता हो तो उसे किसी प्रकार का फल नहीं मिलता। सैकड़ों वर्ष घोर तप करने वाले मनुष्य से अहिंसा धर्म का पालन करने वाला दयालु पुरुष कहीं अधिक अच्छा है। दयावान् पुरुष जिस वस्तु की कामना करता है उसे अवश्य मिल जाती है। सब भूतों को अभय देने वाला मनुष्य स्वर्गलोक में सैकड़ों दिव्याङ्गनाओं से घिरा हुआ विमानों पर भ्रमण करता हुआ देवों के समान निरतिशय सुख भोगता है।

ऐसा अहिंसा का उपदेश दे कर वह दिव्य पुरुष उत्तम विमान पर आरूढ़ हो कर स्वर्ग लोक को चला गया। उसके चले जाने पर वत्स के मन में इतने सर्पों को निष्कारण मारने का बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे अनेक प्रकार विलाप करने

लगे। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि मैं हिंसा का परित्याग कर शिवदीक्षा ले कर महेश्वर की पूजा करूंगा। संसार के जितने सुख हैं वे सब तप से बहुत शीघ्र मिल जाते हैं।

उसी समय से उन्होंने भक्तियुक्त चित्त से शिव जी की दीक्षा ले ली और मौन धारण कर एक दिन रात का समय एक वृक्ष के नीचे बिताते हुए सब शरीर में भस्म रमाए हुए षडक्षर मन्त्र का जप करते हुए विचरने लगे। अन्त में सिद्धेश्वर महादेव की शरण में पहुंच अहर्निश उनकी आराधना और षडक्षर मन्त्र का जप करने लगे।

इस तप के प्रभाव से वत्स मुनि का यौवन चिरकाल के लिए स्थिर हो गया। उन्हें ऐसी सिद्धि हो गई जिससे वे एक स्थान पर बैठे हुए ही दूसरे लोगों का वृत्तान्त जान सकें। उसी तप के प्रभाव से उनमें आकाश मार्ग से आने जाने की शक्ति भी हो गई। वे लोक लोकान्तर में भ्रमण करते हुए तथा जीवन का अनुत्तम आनन्द लेते हुए अन्त में शिव लोक को चले गए।

षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य साधारण नहीं। इस मन्त्र के जप करने वाले को तो सब सिद्धियाँ प्राप्त हो ही जाती हैं, इसके माहात्म्य के श्रवण करने वाले को भी एक जन्म में किए गए सब पापों से मुक्ति मिल जाती है। स्कन्द पुराण में लिखा है:—

भुक्तिदं मुक्तिदं पुंसां सर्वापत्तिनिवारणम्।
षडक्षरस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २५५ ॥
यश्चैतत् शृणुयान्नित्यं सम्यक्श्रद्धासमन्वितः।
आजन्ममरणात् पापात् सोऽपि मुच्येत मानवः ॥ २५६ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं शत्रुपक्षक्षयावहम्।
पठतां शृण्वतां नित्यं सर्वकामाभयप्रदम् ॥ २५७ ॥

नागरखण्ड २९ अ०

तेतालीसवाँ रत्न

महर्षि वसिष्ठ

महर्षि वसिष्ठ एक आदर्श महापुरुष हो गए हैं। अपने ब्रह्मत्व और तप पर जितना उनको विश्वास था उतना किसी दूसरे में देखने में नहीं आया। विश्वामित्र ने उन्हें बहुत सताया और उनके मुख से अपने को ब्राह्मण कहवाना चाहा पर उन्होंने एक जन्मना क्षत्रिय को ब्राह्मण कहने में बड़ा पाप समझा और उन्हें राजर्षि ही कहते रहे। जिस समय विश्वामित्र ने उनके ऊपर अनेक भयङ्कर अस्त्र शस्त्र चलाए तो उनका निवारण केवल अपने ब्रह्मदण्ड के द्वारा किया। यह ब्रह्मवर्चस और अलौकिक शक्ति उन्हें भगवान् शङ्कर के अनुग्रह ही से मिली थी।

महर्षि वसिष्ठ अपने पवित्र आश्रम में निवास करते हुए भगवान् महेश्वर की आराधना में सुदारुण तप किया करते थे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँचों यमों का तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान इन पाँचों नियमों का वे यथाविधि पालन करते थे। प्रातः काल और सायंकाल अग्निहोत्र करने का उनका नियम था। इसी अग्निहोत्र करने की विधि पूरी करने के लिए वे नन्दिनी नाम की गौ को अपने आश्रम में रखते थे। उन्हें यह गौ प्राणों से भी अधिक प्यारी थी और इसकी रक्षा और सेवा के लिए वे सब कुछ कष्ट उठा सकते थे। इसी गौ के निमित्त उनका विश्वामित्र से चिर काल तक युद्ध होता रहा।

नन्दिनी कभी बाँधी नहीं जाती थी। उसे जब भ्रमण करने की इच्छा होती तो वन में जा कर घूम घाम आती थी। एक दिन वह आश्रम से भ्रमण के लिए कुछ दूर निकल गई। वहाँ एक बड़ा गर्त था। उस गर्त की गहराई का पता नहीं लगता था। नन्दिनी उस जलाशय के तट पर चर रही थी। उसी समय उसका पैर फिसल गया और वह उसी जल में डूबने लगी।

इतने में ही भगवान् सहस्ररश्मि अस्ताचल चूड़ा को सुशोभित करने के अनन्तर चल दिए और यह लोक अन्धकार समुद्र में डूब गया। नन्दिनी सूर्यास्त होने के पूर्व ही आश्रम में पहुंच जाया करती थी। उस दिन वह रात हो जाने पर भी नहीं आई। वसिष्ठ को इसकी बड़ी चिन्ता हुई और वे उसे खोजने के लिए निकले। ऊबड़ खाबड़ भूमि में खोजते हुए वे उसी गड़हे के समीप पहुंचे। उसमें से उसका डंकराना सुन कर मुनि को नन्दिनी के उसमें गिर जाने का पता लग गया।

वसिष्ठ महर्षि ने उसी समय सरस्वती नदी का स्मरण किया और उनकी प्रार्थना से सरस्वती ने अपने निर्मल जल से उसे लबालब भर दिया। नन्दिनी झट बाहर आ गई और महर्षि के साथ आश्रम को चली गई। वसिष्ठ ने विचार किया कि इस महागर्त का रहना जीवों के लिए बहुत हानिकर है, इस में अनेकों जन्तुओं के गिर कर मर जाने का भय है इस लिए इसको भर देना परम आवश्यक है।

इस विचार से वे नगाधिराज हिमालय को गए। हिमालय को महर्षि के आगमन से बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने पाद्य, अर्घ्य आदि सत्कार से उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और कहने लगे कि हे मुनिश्रेष्ठ! आज इन पवित्र चरणों की रज के गिरने से यह देश पवित्र हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया। आप ऐसे देवों के भी परम पूज्य महर्षियों का आगमन साधारण भाग्य से नहीं होता। मेरे लायक सेवा का आदेश दीजिए। आप ऐसे महर्षियों की सेवा में मैं अपना जीवन भी समर्पण कर सकता हूं।

वसिष्ठ ने उनके नम्र वचन सुन कर प्रसन्न होते हुए कहा कि हे नगाधिराज! मेरे आश्रम के सन्निकट ही एक भयङ्कर अगाध महागर्त है। उसमें अनेकों जन्तु गिर कर अपने प्राण गवाँ देते हैं। हाल ही में मेरी नन्दिनी भी उसमें गिर कर मरने से बची। मुझे तो भाग्यवश उसका पता लग गया नहीं तो डूब कर मर ही जाती। मैंने बड़ी कठिनता से उसे बाहर किया। मुझे फिर उसके गिर जाने का डर है। इस लिए आप किसी पर्वत को यहाँ से भेज दीजिए; वह वहाँ पर जा कर बैठ जाएगा और गर्त भर जाएगा।

हिमालय ने कहा कि महाराज! आप कृपया उस गर्त की लम्बाई चौड़ाई बता दीजिए उसी नाप का मैं एक पर्वत भेज दूं। वसिष्ठ ने उत्तर दिया कि वह गर्त दो हजार हाथ चौड़ा है और तीन हजार हाथ लम्बा। उसकी गहराई का पता लगाना असम्भव है। आप इसी आयाम के अनुसार किसी पर्वत को भेज दीजिए।

हिमालय ने कहा कि मैं पर्वत भेजने के लिए तैयार हूं पर उसके वहाँ तक जाने का क्या उपाय है? पहले तो पर्वतों के पक्ष थे और वे जहाँ चाहते थे उड़ कर चले जाते थे पर अब तो इन्द्र ने उनके पक्षों को काट कर अचल कर दिया और वे कहीं आ जा नहीं सकते। ऐसी अवस्था में यहाँ से पर्वत का जाना असम्भव है।

वसिष्ठ ने कहा कि हे पर्वतोत्तम ! आपका कहना तो ठीक है पर एक उपाय से काम चल सकता है । तुम्हारे नन्दिवर्द्धन नामक पुत्र का अर्बुद नामक एक मित्र है उसमें उड़ने की शक्ति है । वह नन्दिवर्द्धन को क्षण भर में मेरे आश्रम के समीप पहुंचा देगा । यदि आप मेरे भक्त हों तो विना किसी प्रकार के दुःख माने उन्हें वहाँ भेज़ दीजिए ।

विचारे हिमालय बड़े संकट में पड़े। उनका एक पुत्र मैनाक पक्षच्छेद के भय से सागर में छिप कर बैठा था । दूसरे को वसिष्ठ लेने आए । पुत्रों के वियोग में उनका जीवन किस प्रकार सुख से बीतेगा इसी की उन्हें चिन्ता थी। परन्तु इसी के साथ ही साथ उन्हें इसका भी भय था कि कहीं वसिष्ठ जी प्रतिज्ञाभङ्ग से कुपित हो कर शाप न दे दें । उन्होंने पुत्रवियोग को ब्राह्मण की शाप से अच्छा समझ नन्दिवर्धन को वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में जाने का आदेश दिया ।

नन्दिवर्धन ने विनयपूर्वक अपने पिता से कहा कि हे पिताजी ! वह देश तो बहुत ही बुरा है । न तो उसमें सुन्दर पुष्प हैं और न मधुर फल । पलाश, खैर, धव, सेमर आदि जितने वृक्ष वहाँ हैं उन में न तो सुगन्धित पुष्प होते हैं और न मधुर फल । भयङ्कर कोल, भील आदि दुष्ट जातियाँ ही उस प्रान्त में निवास करती हैं । वहाँ कोई नदी भी नहीं बहती है जिससे उस देश में रमणीयता आए। सबसे प्रधान बात यह है कि आपके सर्वाभीष्ट फल प्रद चरणों की सेवा छोड़ कर मुझे दूसरी जगह जाने में बड़ा कष्ट होगा । मुझे आप अपनी ही शरण में रखिए ।

वसिष्ठजी ने कहा कि वहाँ की खराबियों से तुम तनिक भी मत डरो । तुम्हारी शिखर पर मैं नित्य निवास करूँगा। परम पवित्र तीर्थ तथा देवों के मन्दिरों का मैं वहाँ संस्थापन करूँगा । विमल सलिल से लहराती हुई नदियाँ बुलाऊँगा । मनोहर पत्र, पुष्प और फलों से परिपूर्ण वृक्षों से उस देश की शोभा अलौकिक हो जाएगी । मनोहर कलरव करने वाले असंख्य विहगों से उसकी रमणीयता लोकोत्तर हो जाएगी । नाना प्रकार के जन्तु उस देशमें निवास करने लगेंगे । इन सब के अतिरिक्त मैं अपनी तपस्या के बल से भगवान् शङ्कर को ला कर उस प्रदेश का इतना महत्व बढ़ा दूँगा कि पृथ्वी के सभी प्रान्तों से सहस्रों की संख्या में लोग आएँगे और अपने जन्मलाभ की सफलता प्राप्त करेंगे ।

मुनि के वचन सुन कर नन्दिवर्धन को बड़ी प्रसन्नता हुई और अर्बुद पर्वत की सहायता से वसिष्ठजी के साथ उनके आश्रम में जा पहुंचे । अबदाचल ने

नन्दिवर्द्धन को उस गर्त में छोड़ दिया और स्वयं वहीं पर स्थित हो गया। उन दोनों पर्वतों पर वसिष्ठ जी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि जो तुम लोगों को वर माँगना हो माँग लो मैं बहुत प्रसन्न हूं।

अर्बुदाचल ने कहा कि हे महर्षे! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिए कि मेरे इस निर्मल सलिल से परिपूर्ण झरने की ख्याति नागतीर्थ के नाम से संसार भर में हो जाए। इसमें स्नान करने से मनुष्य को स्वर्ग मिले। यदि वन्ध्या इसमें स्नान कर ले तो उसे पुत्र प्राप्त हो।

वसिष्ठजी ने कहा कि तुम्हारी प्रार्थना मुझे स्वीकार है। जो वन्ध्या इस जल में स्नान करेगी वह सब लक्षणों से सुन्दर पुत्र पाएगी। श्रावण शुक्ल पंचमी को जो नारी फलों से इस की पूजा करेगी वह सौ वर्ष की बूढ़ी भी क्यों न हो अवश्य पुत्रवती हो जाएगी। जो मनुष्य इस पावन तीर्थ में स्नान करेंगे वे जरा और मरण से रहित परम धाम को प्राप्त होंगे।

नन्दिवर्धन ने वर में यही माँगा कि वसिष्ठ मुनि का वहाँ सर्वदा निवास हो और उस स्थान का नाम अर्बुद हो।

वसिष्ठजी ने इन दोनों वरों को दे कर उसी पर्वत पर अपना स्थायी आश्रम बनाया और अरुन्धती समेत उसी में निवास करने लगे। अपनी तपस्या के प्रभाव से वे गोमती नदी को वहाँ ले आए जिसमें स्नान करने से घोर पाप करने वाला भी मनुष्य स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। माघ के महीने में मनुष्य इस नदी में स्नान कर जितने तिलों का दान करेगा उतने ही वर्ष स्वर्ग में अलौकिक सुख भोगेगा।

उस स्थान का इतना सौन्दर्य और माहात्म्य बढ़ाने पर भी वसिष्ठजी को सन्तोष नहीं हुआ। शिवजी के निवास के बिना वह प्रान्त सूना सा प्रतीत होता था। जिस देश में भगवान् का मन्दिर न हो वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो कुदेश ही है। इसी लिए वसिष्ठजी ने महादेवजी की आराधना में दुष्कर तप करना प्रारम्भ कर दिया। सौ वर्षों तक उन्होंने केवल फलों का आहार किया। दो सौ वर्ष केवल सूखे पत्तों को खा कर निर्वाह किया। पाँच सौ वर्ष केवल जल पी कर बिताए। तदनन्तर एक हजार वर्ष तक वे केवल हवा पी कर भगवान् की आराधना करते रहे। तब भगवान् शङ्कर उनके ऊपर प्रसन्न हुए। पर्वत को भेद कर उनके सामने ही एक परम सुन्दर शिवलिङ्ग निकल आया। उसको देख कर मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे इस स्तोत्र से स्तुति करने लगे:—

नमः शिवाय शुद्धाय सर्वगायामृताय च ।
कपर्दिने नमस्तुभ्यं नमस्तस्मै त्रिमूर्तये ॥ १ ॥
नमः स्थूलाय सूक्ष्माय व्यापकाय महात्मने ।
निषंगिने नमस्तुभ्यं त्रिनेत्राय नमोनमः ॥ २ ॥
नमश्चन्द्रकलाधार नमो दिग्वसनाय च ।
पिनाकपाणये तुभ्यमष्टमूर्ते नमो नमः ॥ ३ ॥
नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानगम्याय ते नमः ।
नमस्ते ज्ञानदेहाय सर्वज्ञानमयाय च ॥ ४ ॥
काशीपते नमस्तुभ्यं गिरिशाय नमो नमः ।
जगत्कारणरूपाय महादेवाय ते नमः ॥ ५ ॥
गौरीकान्त नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं शिवात्मने ।
ब्रह्मविष्णुस्वरूपाय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥ ६ ॥
विश्वरूपाय शुद्धाय नमस्तुभ्यं महात्मने ।
नमो विश्वस्वरूपाय सर्वदेवमयाय च ॥ ७ ॥

उसी लिङ्ग में से वाणी निकली कि हे मुने ! तुम्हारे मन की सब बातें मैं जानता हूं । आज से मैं सदा इस लिङ्ग में निवास करूँगा और इस के पूजन से मनुष्य को सब प्रकार के सुख प्राप्त होंगे । इस स्तोत्र के पाठ करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूर्ण होंगी । मेरी प्रसन्नता के लिए इन्द्र के द्वारा भेजी गई इन त्रैलोक्यपावनी मन्दाकिनी में स्नान कर जो इस लिंग के दर्शन करेगा वह जरा और मरण से रहित परम पद को प्राप्त होगा ।

इतना कह कर महादेवजी चुप हो गए और वसिष्ठजी अत्यन्त प्रहृष्ट हो कर अनेक तीर्थों और देवों को ले आए । वसिष्ठजी की तपस्या के प्रभाव से वह निर्जन दुष्ट भूभाग संसार भर में विख्यात हो गया और असंख्य मुनियों ने सिद्धि प्राप्त करने के लिए यहाँ आ कर आश्रम बनाए । इस तीर्थ का महात्म्य स्कन्दपुराण में विस्तारपूर्वक बताया गया हैः—

नागतीर्थं समागत्य कृष्णपक्षेऽश्विनस्य च ।
यः पुनः कुरुते श्राद्धं तस्य वंशो न नश्यति ॥२४॥
न प्रेतो जायते राजन् ! वंशे तस्य कदाचन ।
यः पुमान् कामरहितः स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ २५ ॥

श्राद्धं च पार्थिवश्रेष्ठ ! तस्य लोकाः सनातनाः ।
या स्त्री पुष्पफलान्येव तीर्थे चास्मिन् विसर्जयेत् ॥२६॥
सा स्यात् पुत्रवती धन्या सौभाग्यं च प्रपद्यते ।
निष्कामा स्वर्गमाप्नोति दुष्प्राप्यं त्रिदशैरपि ॥ २७ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यात्रां तस्य समाचरेत् ।

प्रभास खण्ड अर्बुद खं० ५ अ०

चवालीसवाँ रत्न

महर्षि अत्रि और अनुसूया

दक्षिण दिशा में एक परम पावन कामद नाम का वन था। तप करने से वहाँ अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होती थी। जिन्हें थोड़े समय में और थोड़े परिश्रम से वाञ्छित फल प्राप्त करना होता वे दूर चलने का कष्ट उठा कर भी उसी वन में जा कर तप करते थे। वहां उनकी कामनाएँ पूरी हो जाती थीं। इसी से उसका नाम ही कामद वन पड़ गया था।

ब्रह्मा जी के मानस पुत्र महर्षि अत्रि भी अपनी परम पतिव्रता पत्नी अनुसूया के साथ उसी वन में निवास करते हुए भगवान् महेश्वर की आराधना में अपने समय का सदुपयोग करते थे। अभाग्यवश एक बार ऐसा हुआ कि सौ वर्षों तक एक दम वर्षा नहीं हुई। आकाश से पृथ्वी पर एक बूँद तक नहीं गिरी। पृथ्वी में कहीं जल के दर्शन तक नहीं होते थे। पत्तों और फलों का कौन कहे वृक्ष तक सूख गए थे। शौचादि नित्य कर्म के लिए ऐसे समय में जल मिलना तो असम्भव ही था। सभी जीव-जन्तु इस दीर्घ अवर्षण से घबड़ा उठे। खर वायु के प्रचण्ड वेग से प्राणिमात्र कलबला उठे। समस्त संसार अत्युग्र ताप से जलने लगा। विश्व भर में हाहाकार मच गया।

महर्षि अत्रि उस समय समाधि लगाए परमानन्द में मग्न थे। उन्हें इस अवर्षण का पता ही नहीं था। गुरुजी को ध्यानमग्न देख क्षुधा से पीड़ित शिष्य लोग वहाँ से चल दिए। केवल अनुसूया उस निर्जन वन में रह गईं। वे भला

अपने पति को ऐसी अवस्था में छोड़ कर कहां जा सकती थीं। ऐसे समय में पति की परिचर्या करना और महादेवजी की आराधना करना ही उन्होंने इस भयंकर आपत्ति से बचने का एकमात्र उपाय समझा।

अनुसूया ने पतिदेव के समीप ही एक सुन्दर पार्थिव लिङ्ग की विधिपूर्वक स्थापना की और अवर्षण के कारण अन्य किसी उपचार के न मिलने से मानस उपचारों द्वारा ही उनकी भक्तिपूर्वक आराधना करने लगीं। इस तरह उनका पूजन कर हाथ जोड़ शिवजी की और अपने पति की परिक्रमा करती थीं और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करती थीं। पान और भोजन का उन्होंने एक दम परित्याग कर दिया था और इन दोनों देवों की उपासनामात्र ही उनका एकमात्र कार्य रह गया था।

सुन्दरी सुकोमल अनुसूया के तप को देख कर सभी दैत्य और दानव विह्वल हो गए। उनके तेज के कारण लोग उनसे उतनी ही दूर रहते थे जितनी दूर लोग आग से रहते हैं। उनके समीप आने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। तपस्या में अनुसूया अत्रि से भी बढ़ गईं।

उस निर्जन वन में उस समय केवल अत्रि महर्षि और अनुसूया थीं। महर्षि ध्यान में एक दम लीन थे और उन्हें संसार में क्या हो रहा है इसका कुछ भी पता नहीं था। अनुसूया भी शिव की आराधना और पति की परिचर्या के अतिरिक्त कुछ जानती ही नहीं थीं। अत्रि के तप से और अनुसूया के भजन से सभी देवता तथा ऋषि आश्चर्य करने लगे और दर्शन करने के लिए आए। गङ्गादिक पवित्र नदियों को भी आश्चर्य हुआ और वे वहाँ आ पहुंचीं।

सभी लोग आपस में विचार करने लगे कि अत्रि का तप अधिक महत्व का समझा जाय अथवा अनुसूया का भजन। अन्त में यही निश्चय हुआ कि अनुसूया का भजन ही अधिक प्रशंसनीय है। उन लोगों ने कहा कि ऐसा तप तो बहुतों ने किया पर ऐसा भजन आज तक देखने सुनने में नहीं आया। ऐसा भजन आज तक किसी व्यक्ति ने किया हो नहीं। अनुसूया तो धन्य हैं ही अत्रि भी धन्य हैं जिनकी पत्नी ऐसा दुष्कर भजन कर रही हैं। इस श्रद्धा के साथ आज कल कौन भजन कर सकता है। इस प्रकार प्रशंसा करते हुए और सब लोग तो चले गए केवल गङ्गा जी और महादेव जी रह गए। गङ्गा जी तो पातिव्रत्य धर्म से मुग्ध हो कर रह गईं और उन्होंने बिना कुछ उपकार किए वहाँ से न हटने का निश्चय कर लिया। शिव जी उनके ध्यान के बन्धन में फँस गए और वहाँ

से न हट सके।

चौअन वर्ष के पश्चात् महर्षि अत्रि की समाधि टूटी। उठते ही उन्होंने जल माँगा। जल का वहाँ कहीं नाम भी न था। बिचारी अनुसूया बड़ी चिन्तित हुईं और कमण्डलु लेकर जल की खोज में चलीं। उनके पीछे पीछे सब नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा जी भी चलीं। मार्ग में उन्होंने अनुसूया से कहा कि देवि ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं, मुझसे जो कहो मैं करने के लिए तैयार हूं।

अनुसूया ने पूछा कि हे कमलनयने ! आप कौन हैं और कहां से पधारी हैं? आप जब तक मुझे अपना पूरा परिचय न देंगी तब तक मैं किसी प्रकार की प्रार्थना कैसे कर सकती हूं। अतः मुझे अपना यथार्थ परिचय दीजिए।

गङ्गाजी ने कहा कि हे शुचिस्मिते ! मैं गङ्गा हूं और तुम्हारी पतिभक्ति और शिवभक्ति देख कर मुग्ध हो गई हूं। इसी लिए तुम्हारे समीप ही निवास करने लगी हूं। मैं तुम्हारे ऊपर इस समय बहुत प्रसन्न हूं जो माँगना हो सो माँगो।

गङ्गाजी के ऐसे वचन सुन कर अनुसूया ने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा कि सरिद्वरे ! मेरे पतिदेव अभी समाधि से उठे हैं और जल माँग रहे हैं। इस प्रान्त में पचासों वर्ष से जल नहीं बरसा है। मैं जल लाऊँ तो कहाँ से लाऊँ। यदि आप मुझ से प्रसन्न हैं तो मुझे जल दीजिए जिसे ले कर मैं अपने पति के समीप जाऊँ और उनकी इच्छापूर्ति करूं।

गङ्गाजी ने अनुसूया से एक गर्त खोदने के लिए कहा और उस गर्त में प्रविष्ट हो गईं। उसी समय वह गर्त जल से लबालब भर गया और अनुसूया को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उससे जल ले कर अपने पतिदेव के समीप चलीं और गङ्गा जी से कहने लगीं कि जब तक मेरे स्वामी जी यहाँ न आएं तब तक आप इसी गर्त में निवास करें।

गङ्गाजी ने कहा कि हे देवि ! यदि तुम मुझे अपनी एक महीने की तपस्या का फल दे दो तो मैं इतने दिनों तक इसी गड़हे में निवास कर सकती हूं। अनुसूया ने उनका कथन स्वीकार कर लिया और जल ला कर महर्षि को समर्पण किया। महर्षि ने उस पवित्र जल से आचमन किया और उसके लोकोत्तर स्वाद को देख बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए।

मुनि ने इधर उधर दृष्टि फेरी तो आस पास के सभी वृक्ष सूखे पाए और दिशाएं आग से जलती पाईं। मुनि ने अनुसूया से कहा कि ज्ञात होता है कि

यहां बहुत दिनों से जल नहीं बरसा है। इस जल का स्वाद विचित्र सा मालूम पड़ता है। जैसा जल मैं पिया करता था वैसा नहीं है, इस लिए बताओ कि तुम यह जल कहाँ से लाई हो।

अनुसूया ने संकुचित होते हुए विनीत भाव से निवेदन किया कि हे पूज्य देव! भगवान् शङ्कर की आराधना से और आपकी सेवा से गङ्गाजी मेरे ऊपर प्रसन्न हो कर आई हैं, यह उन्हीं का पवित्र जल है।

महर्षि अत्रि को यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि हे सुन्दरि! तुम हँसी करती हो या सत्य वचन कहती हो? तुम कुछ भी कहो पर मुझे विश्वास नहीं होता। योगियों और देवों के लिए भी जो कार्य न हो वह कैसे हो सकता है? मुझे तुम्हारे कहने पर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो तुम चल कर मुझे वह स्थान दिखाओ। बिना देखे मैं विश्वास नहीं कर सकता।

अनुसूया ने मुनि को ले जा कर वह जलपूरित सुन्दर गर्त दिखा दिया। गङ्गाजी के दर्शन से मुनि के हर्ष का पारावार न रहा और वे हाथ जोड़ विनय-पूर्वक प्रार्थना करने लगे कि हे देवि! आपने इस देश के ऊपर बड़ी कृपा की है। इस प्रान्त का बड़ा भाग्य है कि आप का शुभ आगमन यहाँ हुआ। अब मेरी प्रार्थना यही है कि एक बार अङ्गीकृत इस देश का आप परित्याग न करें। अनुसूया ने भी इसी बात की प्रार्थना की।

उनका वचन सुन कर गङ्गाजी ने अनुसूया से कहा कि हे पतिव्रते! यदि तुम शिवजी की एक वर्ष पूजा का फल तथा अपने पतिदेव की सेवा का फल मुझे दे दो तो मैं यहाँ निवास कर सकती हूं। मुझे अधिक लोभ तुम्हारे इस पातिव्रत्य के फल का है। दान, स्नान, यज्ञ और योग इनमें से किसी से भी मुझे उतनी तुष्टि नहीं होती जितनी पातिव्रत्य से होती है। पतिव्रता को देख कर मुझे जितनी प्रसन्नता होती है उतनी किसी बात से नहीं होती। हे साध्वि! पतिव्रता स्त्री को देख कर मेरे भी पापों का नाश हो जाता है। इस लिए संसार के कल्याण के निमित्त यदि अपने एक वर्ष के तप का फल देने को राजी हो तो मैं अपना स्थिर निवास यहाँ कर लूँ।

गङ्गाजी के ऐसे वचन सुन कर अनुसूया ने एक वर्ष के कठिन तप का फल दे दिया क्योंकि महापुरुष लोग स्वयं कष्ट उठा कर दूसरों का उपकार करते हैं। ईख स्वयं तो कोल्हू में पेरी जाती है परन्तु दूसरों को मीठा रस देती है। इसी

प्रकार सोना स्वयं तो हथौड़ी से पीटा जाता है पर आभूषण के रूप में हो कर दूसरे को विभूषित करता है। उक्त फल को पा कर गङ्गाजी ने उस स्थान में रहने का वचन दे दिया। वह गड़हा था तो केवल एक हाथ भर का पर उसमें जल इतना हो गया कि कभी समाप्त हो न हो।

उसी समय अनुसूया द्वारा संस्थापित उस पार्थिव शिवलिङ्ग में से पञ्चमुख महादेवजी का आविर्भाव हुआ। उन्हें देख कर उन दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। महादेवजी बोले कि हे साध्वि! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूं, जो वर माँगना हो माँगो।

अनुसूया ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे महेश्वर! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप इस वन में निवास करें और अपने सर्वःदुःखहर दर्शन दे कर संसार को भवबाधा से बचावें।

आशुतोष भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और पार्वती तथा गङ्गाजी के साथ उस आश्रम में निवास करने लगे। उसी दिन वह दीर्घ अवर्षण समाप्त हो गया और काले मेघों ने मुसलधार से जल बरसा कर संसार का चिरकालीन ताप क्षण भर में नष्ट कर दिया। उस वन में सब प्रकार के धान्य एवं फल-मूल उत्पन्न होने लगे। दूर दूर से आकर ऋषि लोग सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस वन में बस गए और इस प्रकार अनुसूया की तपस्या से, महर्षि अत्रि के पुण्य से एवं भगवान् शङ्कर की अनुकम्पा से उस वन में फिर जीवन आ गया। इस परम पावन तीर्थ में निवास करने से मनुष्य को अवश्य ही मुक्ति मिलती है। अत्रीश्वर महादेव के माहात्म्य सुनने ही से सब प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं। लिखा है:—

अत्रीश्वरस्य माहात्म्यं श्रुत्वा कल्याणमाप्नुयात्।
मनसा चिन्तयेद् यस्तु स स्वर्गमाधिगच्छति॥
पठेद् यः परया भक्त्या, श्रावयेत् परया मुदा।
स विमुक्तः पातकेभ्यः शिवसायुज्यतां व्रजेत्॥

शिवपुराण ज्ञानसं० ४१ अ०

पैंतालीसवाँ रत्न

महर्षि मार्कण्डेय

सत्ययुग के आरम्भ में महर्षि मार्कण्डेय पवित्र विन्ध्य पर्वत पर निवास करते थे। वहाँ उन्होंने मुनियों के मुख से नर्मदा नदी का बड़ा माहात्म्य सुना और वे अपने शिष्यों को साथ लेकर नर्मदा नदी के तट पर पहुंचे। वहाँ पर असंख्य परम तपस्वी ब्राह्मण अपने अपने आश्रमों में निवास कर जीवन को सफल बना रहे थे। कुछ तो ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का यथाविधि पालन करते हुए कठिन तपस्या कर रहे थे। कुछ लोग प्रथम आश्रम से द्वितीय आश्रम में प्रवेश कर गार्हस्थ्य धर्म का पालन कर रहे थे। कुछ उससे भी परे वान-प्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर अपनी अपनी सहधर्मिणियों के साथ कठिन तप करते हुए भगवान् शङ्कर की सपर्या में समय का सदुपयोग कर रहे थे। कुछ महा-पुरुष जीवन के सब कृत्यों को समाप्त कर ब्रह्मानन्द में मग्न हो रहे थे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर का उनके हृदय में क्षण भर के लिए भी प्रवेश नहीं हो सकता था। वे शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों से अतीत थे। उनके दर्शनों ही से महापातकी भी पातकमुक्त हो जाते थे।

मार्कण्डेयजी ने भी उसी सुरम्य नर्मदा तट पर अपना आसन जमा लिया और शिव एवं कृष्ण इन दोनों देवों की आराधना करने लगे। दस हजार वर्षों तक उन्होंने दारुण तप किया। आहार-विहार का पूर्ण परित्याग कर वे निरन्तर इन्हीं देवों का ध्यान करते थे और सांसारिक सभी वासनाओं को छोड़ बैठे थे। उनके तप की दारुणता से सम्पूर्ण वन दीप्त हो उठा और मुनिजन उस ताप से तप्त होने लगे।

उनके तप से भगवान् शङ्कर और पूज्यदेव विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हो कर उनके सामने प्रकट हुए। उनके दर्शन करते ही मार्कण्डेयजी का हृदय परम प्रफु-ल्लित हो उठा और वे हर्षगद्गद वाणी से दोनों की स्तुति करने लगे। स्तुति सुन कर वे और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे मुने! तुम्हारी इस कठिन तपस्या से हम लोग बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारी जो अभिलाषा हो बताओ, वह अवश्य पूरी की जाएगी। मार्कण्डेयजी ने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि हे महाराज! मैं आप लोगों के चरणों में अटल भक्ति की प्रार्थना करता हूं। धर्म के ऊपर मेरी दृढ़ आस्था हो और सदा धर्मपालन में तत्परता रहे। मुझे कोई

आधिव्याधि कभी न सताए और न जरा से कभी कष्ट हो। मैं सदा पचीस वर्ष का ही बना रहूं। एक प्रार्थना यह भी है कि आप लोग इस स्थान में सदा निवास करें। वे दोनों देव "तथास्तु" कह कर अन्तर्धान हो गए। मार्कण्डेयजी उन दोनों देवों की पूजा कर कृतकृत्य हो गए और भगवान् की आराधना का परम सुख उठाने लगे।

यह स्थान तभी से परम सिद्धिप्रद हो गया। वहाँ के वृक्षों के दूर से ही दर्शन कर लेने से ब्रह्महत्या सदृश पापों से भी मुक्ति मिल जाती है। वहाँ पर श्राद्ध करने से पितर लोगों को अक्षय तृप्ति मिलती है। एक ब्राह्मण के भोजन कराने से एक करोड़ ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल मिलता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र के पाठ करने से सम्पूर्ण ऋग्वेद के पाठ करने का फल मिलता है। स्कन्दपुराण में लिखा है:--

मार्कण्डेश्वरवृक्षान् यो दूरस्थानपि पश्यति ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते शंकरोऽब्रवीत् ॥ २९ ॥
श्राद्धं च कुरुते तत्र पितॄनुद्दिश्य सुस्थिरः ।
तस्य ते ह्यक्षयां तृप्तिं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ २१ ॥
एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ।
ऋचमेकां जपेद्यस्तु ऋग्वेदस्य फलं लभेत् ॥ २५ ॥

रेवाखण्ड १६७ अ०

छियालीसवाँ रत्न

महर्षि भृगु

जगत्प्रसिद्ध महर्षि भृगु ब्रह्माजी के छठएँ मानस पुत्र थे। वे श्री वृत नामक क्षेत्र में भगवान् शंकर की आराधना कर रहे थे। एक हजार वर्ष तक उन्होंने कठिन तप किया। तप करते करते वे एक दम सूख गए थे। न तो वे कुछ खाते थे और न शरीर रक्षा का अन्य कोई उपाय करते थे। वे पत्थर की मूर्ति के समान बैठे तप कर रहे थे।

एक बार शिवजी और पार्वतीजी विमान में बैठे हुए भ्रमण करते करते उस क्षेत्र की ओर जा निकले। उनको वल्मीक के समान बैठे देख कर पार्वतीजी उनके विषय में शिवजी से पूछने लगीं। शिवजी ने उत्तर दिया कि हे देवि! ये भृगु नाम के महर्षि हैं। दारुण तप करते हुए इन्होंने एक हजार वर्ष तक मेरी आराधना की है। एक मास समाप्त होने पर कुशा के अग्रभागसे एक बूँद जल अपने मुख में डाल लेते हैं। एक सौ वर्षों तक ये खड़े हो कर तप करते रहते हैं और तदनन्तर क्षण भर के लिए विश्राम लेते हैं।

यह सुन कर पार्वतीजी से न रहा गया और वे कुछ कुपित सी होती हुईं बोलीं कि हे देव! आपका 'उग्र' यह नाम यथार्थ है। आप में दया है ही नहीं। आप की आराधना करना सहल नहीं है। आप सब प्राणियों को भय तो देते हैं पर आपके हाथों से उनका उपकार और पालन होना कठिन है। इस बिचारे ब्राह्मण ने एक हजार वर्ष तक आपकी आराधना की, सब प्रकार के सुखों का परित्याग कर दिया, शरीर सुखा दिया उस पर भी आप प्रसन्न नहीं होते हैं। क्या ऐसा करना आपको शोभा देता है?

शिवजी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया कि हे देवि! तुम इसका कारण नहीं जानती अन्यथा ऐसी बात कभी न कहतीं। देखो! गर्व से स्त्री का, क्रोध से तप का, दूर दूर घूमने से गायों का और शूद्र के अन्न के खाने से ब्राह्मणों का नाश हो जाता है*। ये ब्राह्मण बड़े क्रोधी हैं इसी कारण इनके तप की सिद्धि नहीं हो रही है। ये हजार क्या दस हजार वर्ष तक भी तप करते रहें तो भी कुछ फल नहीं मिल सकता। यदि तुमको इनके क्रोध की परीक्षा लेनी हो तो मैं अभी इसका प्रबन्ध किए देता हूं।

इतना कह कर शिवजी ने वृषभ का ध्यान किया। ध्यान करते ही एक दीर्घकाय भयंकर बैल डकराता हुआ उनके सामने आया और कहने लगा कि हे सुरश्रेष्ठ! मुझे आपने किस काम के लिए याद किया। कहिए मैं किसके जीवन की यात्रा समाप्त कर दूँ।

शिवजी ने कहा कि तुम जा कर भृगु ऋषि को कुपित कर दो। उनकी आज्ञा पाते ही वह बैल उनके समीप पहुँचा और पहुँचते ही उसने अपने सींगों से मुनि को उठा कर नर्मदा में फेक दिया।

---

* स्त्री विनश्यति कोपेन तपः क्रोधेन नश्यति।
गावो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥
रेवाखण्ड १८१ अ०

भृगु के क्रोध का ठिकाना न रहा। इतना अपमान उनके लिए असह्य था। वे एक मोटा लट्ठ लेकर उसके पीछे दौड़े। उनको अपने पीछे आते देख उसने अपने खुरों से एक गड़हा खोद डाला और मुनि को सींगों पर उठा कर उसमें पटक दिया। दूसरी बार अपना अपमान देख कर वे एक दम आग हो गए और उसके पीछे दौड़े।

उनके क्रोध से वह बैल जलने लगा और प्राण लेकर भागा। जम्बू, कुश, क्रौञ्च, शाल्मलि, शाक, गोमेद, और पुष्कर इन सातों द्वीपों की परिक्रमा करता हुआ सातों पातालों में भगता फिरा पर कहीं शरण नहीं मिली। तब वह भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, तपोलोक, सत्यलोक, और जनलोक को गया पर भृगु ने उसका पीछा न छोड़ा। तब वह वरुण, कुबेर, यम, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु की शरण गया पर ब्राह्मण की कोपाग्नि से उसे कोई न बचा सका। सबने उसे कोरा जवाब दे दिया।

तब वह भगवान् देवदेवकी शरण गया और उनके चरणों पर गिर पड़ा। उनके क्रोध को देख कर पार्वतीजी को आश्चर्य हुआ और वे शिवजी से कहने लगीं कि हे देवदेव! शीघ्रता से इनको वर देकर प्रसन्न कर दीजिए नहीं तो शाप देकर कहीं अनर्थ न कर डालें।

भगवान् उसी समय प्रकट हुए। भस्म रमाए, जटा जूट से विभूषित त्रिशूल धारण किए हुए त्रिलोचन शंकर को देख कर भृगुमुनि उनके चरणों पर गिर गए और अधोलिखित स्तोत्र से उनकी स्तुति करने लगे।

प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं भूतिदं भयातीतम्।
भवभीतो भुवनपते विज्ञप्तं किंचिदिच्छामि ॥ १ ॥
त्वद्गुणनिकरान् वक्तुं का शक्तिर्मानुषस्यास्य।
वासुकिरपि न तावद्वक्तुं वदनसहस्रं भवेद्यस्य ॥ २ ॥
भक्त्या तथाऽपि शङ्कर शशिधर करजालधवलिताशेष।
स्तुतिमुखरस्य महेश्वर प्रसीद तव चरणनिरतस्य ॥ ३ ॥
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्तिविनाशनं देव।
भवभीतो भुवनपते भुवनेश शरणनिरतस्य ॥ ४ ॥
यमनियमयज्ञदानं वेदाभ्यासश्च धारणायोगः।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हन्ति वै कलासहस्रांशम् ॥ ५ ॥
उत्कृष्टरसरसायनखड्गांजनविवरपादुकासिद्धिः।
चिह्नं हि तव नतानां दृश्यत इह जन्मनि प्रकटम् ॥ ६ ॥

शाठ्येन यदि प्रणमति वितरसि तस्याऽपि भूतिमिच्छया देव ।
भवति भवच्छेदकरी भक्तिर्मोक्षाय निर्मिता नाथ ॥ ७ ॥
परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसंतप्तम् ।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि ॥ ८॥
अधिकाभिमानमुदितं क्षणभंगुरविभवविलसंतम् ।
क्रूरं कुपथाभिमुखं शंकर शरणागतं परित्राहि ॥ ९ ॥
दीनं द्विजं वरार्थे बन्धुजने नैव पूरिता ह्याशा ।
छिंधि महेश्वर तृष्णां किं मूढं मां विडम्बयसि ॥ १० ॥
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं दद हृदयवासिनीं नित्यम् ।
छिंधि मदमोहपाशं मामुत्तारय भवाच्च देवेश ॥ ११ ॥

इस करुणाभ्युदय नामक स्तोत्र को सुन कर महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि मुने! तुम्हें जो माँगना हो माँगो। मैं सब कुछ इस समय दे सकता हूं। भृगुजी ने कहा कि हे महाराज! यह सिद्धिक्षेत्र मेरे नाम से प्रसिद्ध हो और आप का यहाँ सदा निवास रहे। मैं यहाँ पर रहता हूं। आप की कृपा से इस स्थान का माहात्म्य बढ़ जाएगा। भगवान् शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और तब से श्रीघृततीर्थ का नाम बदल कर भृगुकच्छ हो गया।

इस क्षेत्र में मरने से कीड़े मकोड़े भी शिवलोक को प्राप्त होते हैं। वृषखात में स्नान करने से तथा शिवजी की पूजा करने से सर्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ वृषोत्सर्ग करने से शिव की सायुज्यता मिलती है। स्कन्द पुराण में लिखा है:—

भृगुक्षेत्रे मृता ये तु कृमिकीटपतङ्गकाः ।
वासस्तेषां शिवे लोके मत्प्रसादाद् भविष्यति ॥ ४१ ॥
वृषखाते नरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
सर्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४० ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा वृषमुत्सृजते नरः ।
स याति शिवसायुज्यमित्येवं शंकरोऽब्रवीत् ॥ ४९ ॥

रेवाखण्ड १८२ अ०

सैतालीसवाँ रत्न

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी

अपने पिताजी की आज्ञा से रामचन्द्रजी ने चौदह वर्ष वन में निवास करना स्वीकार किया था। उस वनवास के समय रावण सती सीता को हर ले गया। श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी बड़ी भारी वानरी सेना लेकर समुद्र के ऊपर पुल बाँध कर लङ्का में घुस गए और वहाँ उन्होंने राक्षसों से युद्ध ठान दिया।

रावण ने इन लोगों को तुच्छ समझ कर थोड़े से साधारण राक्षस भेज दिए परन्तु इधर के वानरों ने उन्हें क्षण भर में समाप्त कर दिया। तब तो रावण ने समझा कि किसी भारी शक्ति से सामना करना है और इस लिए कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि महाबलशाली निज कुटुम्बियों को साथ लेकर रणक्षेत्र में उतर गया। इन लोगों के सामने आने पर श्रीरामजी और लक्ष्मणजी भी कमर कस के तयार हो गए। परन्तु यह था धर्म और अधर्म का युद्ध। एक ओर अपनी भार्या के उद्धाररूपी धर्म के पालन के लिए दुष्टों का संहार करने वाले महापुरुष थे और दूसरी ओर परदारापहारी देवता और मुनिगण को दुःख देने वाले नराधम। धर्म की विजय तो सर्वत्र होती ही है। इस युद्ध में भी वानरी सेना ने राक्षसों के दल को मल डाला। हनुमान् ने धूम्राक्ष को, विभीषण ने प्रहस्त और मकराक्ष को, सुग्रीव ने देवान्तक और नरान्तक को, लक्ष्मणजी ने त्रिशिरा और कुम्भकर्ण को अपने अपने आयुधों से काल के गाल में पहुंचा दिया।

रावण को यह देख कर बड़ा क्रोध आया और उसने परम पराक्रमी इन्द्र को भी जीतने वाले पुत्र मेघनाद को युद्ध में भेजा। वह अपनी राक्षसी माया से राम और लक्ष्मण को मोहित कर कुमुद, अङ्गद, सुग्रीव, नल, जाम्बवान् आदि महाबलशाली वानरों को समरांगण में गिरा कर आकाश में अन्तर्धान हो गया। वह सबको देख सकता था पर उसे कोई नहीं देख पाता था।

ऐसी अवस्था देख कर कुबेर ने ऐसा जल भेजा जिसके आँखों में लगाने से छिपा हुआ भी मनुष्य दिखाई पड़ जाता था। विभीषण के कहने से सब ने उस जल से आँखें धो डालीं। आँखों के धोते ही सब लोगों को आकाश में छिपा हुआ मेघनाद दिखाई दिया। लक्ष्मणजी ने दौड़ा कर उसके ऊपर बाणों की वर्षा की, उसने भी इसका समुचित उत्तर दिया। इस प्रकार तीन दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। चौथे दिन लक्ष्मणजी ने उसका सिर काट लिया।

इधर भगवान् रामचन्द्रजी ने ब्राह्म अस्त्र से रावण के दसों सिर काट डाले। रावण के मरते ही लंका में रामराज्य हो गया।

राक्षसी सेना का विनाश कर दल बल समेत श्रीरामचन्द्र भगवान् गन्धमादन पर्वत पर विराजमान हुए। उसी समय मुनि लोग उनकी स्तुति करने के लिए पहुंचे। श्रीरामचन्द्रजी ने उनसे आदरपूर्वक कहा कि हे पूज्य मुनिगण! संसार सागर से मुक्ति पाने के लिए लोग मेरी शरण आते हैं और मैं उनको पार कर देता हूं। परन्तु स्वात्मलाभ से सन्तुष्ट प्राणिमात्र के उपकार करने वाले अहंकार-रहित शान्त ऊर्ध्वरेता मुनियों की मैं सदा रक्षा करता हूं। इसी से लोग मुझे ब्रह्मण्यदेव कहते हैं। मुझे पुलस्त्य के कुल के विनाश से ब्रह्महत्या का पाप लगा है। मैं आप लोगों से यह जानना चाहता हूं कि उस पाप से मुझे कैसे छुटकारा मिल सकता है?

मुनियों न विचार कर कहा कि हे जगद्रक्षाधुरन्धर श्रीरामचन्द्रजी! आप संसार में भव्य आदर्श उपस्थित करने के लिए महापुण्य तथा मुक्ति के देने वाले शृङ्ग पर शिवलिङ्ग का स्थापन कीजिए। दशग्रीव के वध का पाप इससे छूट जाएगा। लिङ्गस्थापन के फल का वर्णन चार मुखवाले ब्रह्मा भी नहीं कर सकते, मनुष्य तो कर ही क्या सकता है। आपके द्वारा गन्धमादन पर्वत पर संस्थापित शिवलिङ्ग के दर्शनों का विश्वनाथजी के दर्शनों से कोटिगुणित अधिक फल होगा। हे महाभाग! आप ही के नाम पर इस लिङ्ग का नाम पड़ेगा और इसके दर्शनों से महापातकों का भी शमन हुआ करेगा। इस लिए संसार के उपकार के लिए आप अवश्य शिवलिङ्ग की संस्थापना इसी पवित्र पर्वत पर कीजिए।

श्रीरामजी ने मुनियों का वचन सुन कर शुभ मुहूर्त का विचार किया। दो घड़ी के भीतर ही लिङ्गस्थापना का मुहूर्त निकला। श्रीरामजी ने हनुमान् को कैलास से इसी समय के भीतर शिवलिङ्ग लाने का आदेश दिया। हनुमान् वहाँ से चले और क्षण भर में आकाश में उड़ते हुए कैलास पर पहुंचे। वहाँ उन्हें शिवजी के दर्शन न हुए इस लिए वे कुश के अग्र भाग पर खड़े हो कर प्राणायाम साधे हुए तप करने लगे। भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उन्हें लिंग की प्राप्ति हो गई।

इधर मुनियों ने देखा कि पुण्यकाल निकला जा रहा है तो वे रामजी से बोले कि हे महाभाग! हनुमान् तो अभी तक आए नहीं, समय व्यतीत हो रहा है, खराब मुहूर्त में काम करने से अभीष्टसिद्धि नहीं होती। इस लिए जानकी

जी के बनाए हुए इस बालू के लिङ्ग की ही स्थापना कर दीजिए।

मुनियों की आज्ञा के अनुसार रामचन्द्रजी ने ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवार को भगवान् शंकर की स्थापना की और उनकी भक्तिपूर्वक पूजा की।

लिंग थापि विधिवत करि पूजा * शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा (१)
शिवद्रोही मम भक्त कहावै * सो नर सपनेहु मोहिं न भावै (२)
शंकर विमुख भक्ति चह मोरी * सो नर मूढ़ भेद मति थोरी (३)
शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरकमहँ वास ॥ ३ ॥ लंका काण्ड

वानर लोग सुन्दर मनोहर सुगन्धित पुष्प उस वन में से तोड़ लाए। फलों और मूलों के तो उन्होंने पर्वत लगा दिए। सभी तीर्थों और नदियों का जल भर लाए। सर्वशास्त्रपारंगत परम पुनीत महर्षियों के वेदघोष से आकाश गूँज उठा। षोड़श उपचारों से पूजन कर श्रीरामचन्द्रजी स्तुति करने लगे।

उसी समय उस लिङ्ग से पार्वती को साथ लिए हुए शङ्कर भगवान् प्रकट हुए और कहने लगे कि हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हारा ब्रह्मकुल के विनाश से समुत्पन्न पातक दूर हो गया। तुम्हारे हाथों से स्थापित इस लिङ्ग का जो मनुष्य दर्शन करेगा उसके सब पाप नष्ट हो जाएँगे। इस प्रकार वर देकर वे अन्तर्धान हो गए।

श्रीरामचन्द्रजी उस सैकत लिङ्ग की आराधना कर ही रहे थे कि इतने में हनुमान् सुन्दर लिङ्ग लेकर आ पहुंचे। अपना परिश्रम व्यर्थ होता देख कर उन्हें दुःख हुआ और वे बोले कि यहां पर असंख्य वानर थे उनमें से आपने मेरे ऊपर दया करके आज्ञा दी। मैं आप की आज्ञा के अनुसार शीघ्र वहाँ गया। शिवजी के न मिलने के कारण मुझे आने में देर हुई तो भी मैं समय बीतने के पहले ही आ गया। आपने मेरे आने की प्रतीक्षा कुछ भी न की और एक बालू का लिंग स्थापित कर दिया। अब कैलास से लाए गए लिंग का क्या होगा? आपने मेरे ऊपर इतनी भी दया न की, अब मैं संसार में मुख दिखाने योग्य नहीं रह गया। इस लिए अब मैं शरीर का परित्याग कर दूंगा। ऐसा कह कर वे रामजी के चरणों पर गिर पड़े।

अपने भक्त के दुःख से रामचन्द्रजी के मन में बहुत दुःख हुआ और वे करुणार्द्र हृदय से सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि हे प्रिय भक्त! तुमने जो मेरी सेवा की है उसको मैं अच्छी तरह से जानता हूं। तुम्हारे आने की प्रतीक्षा न

कर मैंने जो शिवलिंग स्थापित किया उसके भी औचित्य और अनौचित्य को मैं खूब समझता हूं। जीव का जन्म-मरण, स्वर्ग और नरक में गमन अपने ही कर्मों से होता है। परमात्मा तो असंग निर्गुण और निर्लेप है। मान अपमान तो इस शरीर का हुआ करता है। आत्मा तो निरंजन, निराश्रय और निर्विकार है। तत्व ज्ञान में बाधा पहुंचानेवाला शोक तुम क्यों कर रहे हो? तुम्हें तत्व ज्ञान में प्रेम करना चाहिए और सदा यह ध्यान करना चाहिए कि मेरी आत्मा स्वयंप्रकाश है उसका कभी मान-अपमान नहीं हो सकता। शरीर आदि लौकिक पदार्थों की ममता छोड़ कर धर्म का सेवन करो।

सज्जनों की सेवा किया करो। प्राणिमात्र की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा कर लो। दूसरे के दोषों की कभी चर्चा न चलाया करो। शिव, विष्णु आदि देवों की सदा भक्तिपूर्वक पूजा किया करो। सत्य का पालन किया करो और शोक का परित्याग करो। तुम्हें शान्ति मिलेगी।

तुम्हें इस समय भ्रान्ति हो रही है भ्रम बड़ा हानिकारक होता है। भ्रान्त जन को अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। वे रागद्वेष के वश में हो कर धर्म अधर्म के झगड़े में पड़ जाते हैं और स्वर्ग-नरक में चक्कर लगाया करते हैं। इस पार्थिव शरीर का उन्हें बड़ा मोह हो जाता है और उस निर्लेप आत्मा को भूल जाते हैं।

यह शरीर बड़ा ही अधम है। चन्दन, अगुरु, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य भी इस शरीर के संयोग से मल हो जाते हैं। संसार के सुन्दर से सुन्दर परम स्वादिष्ट भक्ष्य पदार्थ इस शरीर के संयोग से ऐसे रूप में बदल जाते हैं कि उनके छूने में भी घृणा होती है। शीतल सुगन्धित जल इस के संगम से मूत्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है और उसके स्पर्श मात्र से वस्तु अपवित्र हो जाती है। अति धवल एवं परम पवित्र वस्त्र भी इस शरीर के संयोग से मलिन हो जाते हैं। ऐसे मलिन शरीर को थोड़ी सी भी बुद्धि रखने वाला मनुष्य कभी अच्छा नहीं कह सकता। इसके ऊपर ममता रखना बुद्धिमानी का काम नहीं।

हे वायुनन्दन! मैं तुम को परमार्थ की बात बताता हूं। देखो! इस संसार-गर्त में सौख्य का नाम भी नहीं है। मनुष्य का जीवन आदि से अन्त तक दुःखों ही से पूर्ण है। जीव पहिले तो गर्भ का दारुण दुःख भोगता है। बाल्यकाल में पराधीनता का दुःख तो असह्य ही हो जाता है। फिर जवानी आती है और मनुष्य यौवन मद में चूर होकर लौकिक क्षणिक सुख को ही परम सुख मान बैठता है और परलोक को एक दम भूल जाता है। थोड़े ही दिनों में जवानी

ढल जाती है और बुढ़ौती आ जाती है। इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, शरीर जीर्ण हो जाता है चलने फिरने की शक्ति नहीं रह जाती। परम प्रिय पुत्र, कलत्र आदि भी घृणा करने लगते हैं। ऐसी अवस्था में दारुण कष्ट का अनुभव होने लगता है। परन्तु शरीर की ममता उस समय भी नहीं छूटती। अन्त में शरीर से प्राण निकलने लगते हैं। उस समय एक करोड़ बिच्छू के डंक मारने का कष्ट जीव को होता है। परन्तु कुछ उपाय न होने के कारण वह दारुण दुःख भोगना ही पड़ता है। मरने के अनन्तर फिर अनेक योनियों के कष्ट उठाने पड़ते हैं।

ये सब दुःख अज्ञान ही के कारण होते हैं। जब अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है उस समय उत्तम सुख प्राप्त होता है। अज्ञान की निवृत्ति कर्म से कभी नहीं होती जब होती है तब ज्ञान ही से होती है। "तत्त्वमसि", 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि वेदान्त-वाक्यों के अर्थानुभव से ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान ही साक्षात् ब्रह्म है। ज्ञान की प्राप्ति गुरु के प्रसाद से मुख्याधिकारी परम विरक्त ही को होती है अन्य को नहीं। जब मनुष्य के हृदय के सब काम निवृत्त हो जाते हैं, किसी प्रकार की वासना नहीं रह जाती तभी जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

क्रूर कृतान्त जागते, सोते, खाते, पीते समय जीव को कवलित कर लेता है। मनुष्य को मरने से तो डरना ही नहीं चाहिए क्योंकि इस पार्थिव शरीर का तो एक दिन अन्त होना ही है। जिस प्रकार फल के पक जाने पर उनका पतन अवश्यम्भावी होता है उसी प्रकार इस शरीर का पतन अवश्य होगा। बहुत दृढ़ नींव होने पर भी समय आने पर जैसे भवन बिना गिरे नहीं मानता उसी प्रकार भोजनाच्छादन से सुदृढ़ भी शरीर जरा और मृत्यु के वश में पड़ कर नष्ट हो जाता है। मृत्यु साथ ही साथ रहती है। कोई कितनी भी दूर चला जाए मृत्यु उसका पीछा नहीं छोड़ती। परन्तु इस मृत्यु से डरना नहीं चाहिए क्योंकि यह मृत्यु आत्मा की तो होती नहीं शरीर की होती है। आत्मा को तो न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल हानि पहुंचा सकता है और न वायु उसे सुखा सकती है*। यह आत्मा सब में एक रूप से व्याप्त

* नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

भगवद्गीता २ अ०

है। इस में भेद नहीं। एक ब्रह्म के सिवा संसार में दूसरी कोई वस्तु ही नहीं। इस लिए तुम्हारी आत्मा और मेरी आत्मा में कोई भेद नहीं है। जो काम मैंने किया वह तुम्हारा किया हो गया, जो तुमने किया वह मेरा किया हो गया। मेरे हाथों से संस्थापित लिंग तुम्हारे ही हाथों से स्थापित समझा जाना चाहिए।

हे पवन सुत! पुण्यकाल बीता जाता था इसी से वालू का लिंग स्थापित कर दिया। तुम्हें इस पर शोक या दुःख नहीं करना चाहिए। कैलास से लाए हुए लिंग को तुम अपने हाथों से इसी पवित्र भूमि में स्थापित करो। यह तुम्हारे नाम पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा। तुमने बहुत से ब्रह्मराक्षसों का वध किया है इस लिए तुम्हें भी शिवस्थापन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि मुझ को। इस लिंग के स्थापन से तुम पापमुक्त हो जाओगे।

स्वयं शिवजी के दिए हुए लिंग के दर्शन कर जो रामनाथेश्वर के दर्शन करेगा वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाएगा। एक हजार योजन दूर बैठा हुआ भी मनुष्य यदि हनुमदीश्वर और रामनाथेश्वर का नाम लेगा उसे सायुज्य मुक्ति प्राप्त होगी। जो इन दोनों के दर्शन करेगा उसे सब यज्ञों और सब तपों का फल मिल जाएगा। इस लिए अपने पापसमुदाय की शुद्धि के लिए इस लिंग की स्थापना यहीं कर दो।

यदि तुम्हें मेरे कथन से सन्तोष न हो तो तुम इस लिंग को उखाड़ डालो, मैं तुम्हारे ही लाए हुए लिंग को स्थापित कर दूँगा। मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें यह आज्ञा देता हूं कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसे उखाड़ो।

हनुमान् जी को इस आज्ञा से बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हों ने अपने मन में विचार किया कि इस बालु के लिंग के उखाड़ डालने में कितना परिश्रम होगा इसे तो मैं अनायास ही उखाड़ डालूंगा। परन्तु उन्होंने यह विचार नहीं किया कि उस लिंग की स्थापना भगवान् रामचन्द्र के हाथों से स्थिर मुहूर्त में हुई थी, उसका उखाड़ना हँसी खेल नहीं है। पुण्य मुहूर्त का माहात्म्य उन्हें ज्ञात नहीं था।

हनुमान् ने सब लोगों के सामने ही उस वालु के लिंग के उखाड़ने का प्रयत्न किया। वे अपनी पूरी शक्ति लगा कर उसको हिलाने लगे पर वह तिल भर भी अपने स्थान से न डिगा। तब उन्हों ने घोर किलकिला शब्द करते हुए पुच्छ से उस लिंग को लपेट लिया और बड़े वेग से आकाश की ओर उछले। उस समय सातों द्वीपों की पृथ्वी हिल गई। सभी कुलाचल डिग गए। सूर्य और

चन्द्र भी डोल गए।

यह लिंग तल, अतल, वितल, सुतल, पाताल आदि तक प्रविष्ट था। उसका हनुमान् जी को इतने जोरों से ढक्का लगा कि वे कोस भर दूर जा गिरे। उनके सभी छिद्रों से रक्त की धाराएँ बहने लगीं और वे मूर्च्छित हो गए। सब ने समझा कि प्राण निकल गए इस लिए हाहाकार मच गया। राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, अङ्गद आदि दौड़ कर उस स्थान पर पहुंचे और विलाप करने लगे।

सीता जी ने अपने कोमल हाथों से उनके शरीर का स्पर्श किया और रुदन करने लगीं। भगवान् रामचन्द्रजी ने उन्हें अपनी गोद में उठा लिया और कातर स्वर में उनके गुणों का वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा कि हे महावीर! तुम ने हम लोगों की बड़ी सेवा की है। ऐसे एसे कठिन समयों में तुम ने मेरी सहायता की जिस समय दूसरे की शक्ति काम ही नहीं दे सकती थी। तुम्हारी ही सहायता से हम लोग रावणादि राक्षसों को मार सके हैं। हे अंजनानन्दन! तुम हम लोगों को मार्ग ही में छोड़ कर क्यों चले गए? अब मुझे संसार में किसी से कुछ काम नहीं। न तो मुझे राज्य चाहिए और न सीता। मैं अब अपने शरीर का परित्याग करूँगा।

इतने में ही हनुमान् जी की मूर्च्छा निवृत्त हो गई और उनका चित्त स्वस्थ हो गया। अपने सामने भगवान् को देख कर उनकी आँखें खुल गईं और उन्हें हनुमान् ने साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर के रूप में देखा। वे उनके चरणों पर गिर गए और स्तुति करने लगे।

उनकी स्तुति से रामजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि तुमने यह काम अज्ञान से किया उसका फल मिल गया। मेरे स्थापित इस लिंग को संसार की समूची शक्ति भी नहीं उखाड़ सकती। महादेव के अपराध से तुमको यह फल मिला, अब कभी शिव जी का विरोध मत करना।

हनुमान् जी ने रामनाथेश्वर के समीप ही कैलास से लाए हुए लिंग का संस्थापन करा दिया। रामचन्द्रजी के वचन से उस लिंग के दर्शन किए बिना रामनाथेश्वर के दर्शनों का कुछ फल नहीं होता।

रामचन्द्रजी ने उनकी पूजा के लिए अनेकों ग्राम लगा दिए। जिनकी आय से पूजा करने वाले सद्ब्राह्मणों के कुटुम्ब का पालन हो सके। शिवजी के भोग के लिए भी अनेकों गाँव लगा दिए गए। हार, केयूर, कटक, कुण्डल आदि अनेक

आभरण समर्पण किए और सुन्दर रेशमी वस्त्र पहिरने के लिए सेवा में उपस्थित किए।

भगवान् रामचन्द्र ने रामनाथेस्वर और हनुमदीश्वर का माहात्म्य स्वयं वर्णन किया है

जे रामेश्वर दर्शन करिहहिं * ते तनु तजि मम धाम सिधरिहहिं ॥
जे गंगाजल आनि चढ़ाइहिं * सो सायुज्य मुक्तिवर पाइहिं ॥

स्वयं हरेण दत्तं तु हनुमन्नामकं शिवम् ।
सम्पश्यन् रामनाथं च कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ६१ ॥
योजनानां सहस्रेऽपि स्मृत्वा लिंगं हनूमतः ।
रामनाथेश्वरं चापि स्मृत्वा सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥
तेनेष्टं सर्वयज्ञैश्च तपश्चाकारि कृत्स्नशः ।
येन दृष्टौ महादेवौ हनूमद्राघवेश्वरौ ॥ ६३ ॥

स्क० पु० ब्र० ख० से० मा० ४५ अ०

अड़तालीसवाँ रत्न

शेषावतार लक्ष्मणजी

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी अपनी साध्वी पत्नी सीता के हरण करने वाले रावण को दण्ड देने के लिए वानरी सेना लेकर लङ्का पर जा चढ़े। वहाँ राक्षसों में और इन लोगों में घोर युद्ध हुआ। युद्ध में श्रीरामचन्द्र जी की विजय होते देख मेघनाद ने निकुम्भिला शिला में यज्ञ कर दैवास्त्र प्राप्त करना चाहा। उसके पा जाने पर संसार में उसको कोई हरा नहीं सकता था। विभीषण को इस बात का पता लग गया और उन्होंने यह सब वृत्तान्त श्री रामचन्द्रजी को सुना दिया। श्री रामचन्द्रजी ने उसके मारने के लिए लक्ष्मण को भेजा।

लक्ष्मण उस स्थान पर गए। वहाँ वह एकान्त में भगवान् शम्भु की आराधना कर रहा था। उसका यज्ञ समाप्त होने वाला ही था कि इतने में लक्ष्मण उस पर बाण बरसाने लगे। उसके पास उस समय न तो हथियार थे न युद्ध की और कुछ सामग्री थी। वह उस गुफा से निकल आया और किसी प्रकार युद्ध करने लगा। युद्ध में लक्ष्मण ने उसे मार डाला। रामचन्द्रजी ने रावण

आदि असंख्य राक्षसों का संहार कर दिया और लंका के राज्य पर विभीषण का अभिषेक कर दिया। सीताजी को लेकर भगवान् श्रीरामजी अयोध्या चले गए और वहाँ आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे।

थोड़े ही समय के अनन्तर लक्ष्मण को राजयक्ष्मा रोग ने पकड़ लिया। वे दिन दिन सूखने लगे और उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। अनेक उपचार किए गए पर किसी से रोग की निवृत्ति नहीं हुई। श्रीरामचन्द्रजी अपने परम सहायक तथा प्रेमपात्र भाई की ऐसी दुरवस्था देख बहुत चिन्तित हुए और वे अपने कुलगुरु वसिष्ठजी से विनयपूर्वक इस रोग का कारण पूछने लगे।

वसिष्ठजी ने कहा कि हे रामजी इन्द्र को जीतने वाले परम पराक्रमी वीर मेघनाद का इन्होंने तपस्या करते समय वध किया है। मेघनाद उस समय युद्ध से एक दम अलग था। वह यज्ञ कर रहा था। ऐसे समय में ब्राह्मण को मार कर उन्होंने बड़ा पातक किया। उसी महापातक से इन्हें राजयक्ष्मा रोग ने आ घेरा है। इस से छुट्टी मिलना साधारण बात नहीं। यदि ये कुब्जाम्र नामक पावन तीर्थ में जा कर घोर तपस्या करें तो इनका यह भया वह रोग दूर हो सकता है। तप ही इस पातक का एक मात्र प्रायश्चित्त है।

वसिष्ठजी के वचन सुन कर रामचन्द्र जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने गुरुवर से पूछने लगे कि हे महाराज! आपके कथन से मेरे मन में बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया है। रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि तो बड़े पातकी थे। गौ और ब्राह्मणों के वध करने में उन्हें लेशमात्र भी आशङ्का नहीं होती थी। देवता मुनि और सज्जनों से उनका स्वाभाविक वैर था। दूसरे की स्त्रियों का हरण करना उनका प्रतिदिन का काम था। दूसरे की धरती, धन और धान्य को लूट लेना ही उनका एक मात्र व्यापार था। हे सर्वज्ञ! ऐसे पातकियों को मारने से हम लोगों को पाप कैसे लग गया?

वसिष्ठ जी ने रामचन्द्रजी को समझाते हुए कहा कि हे महाबाहो रामजी! रावण आदि राक्षस यद्यपि बड़े दुराचारी थे, संसार को अनेक प्रकार के कष्ट पहुंचाते थे पर थे तो वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न। पतित से पतित ब्राह्मण इतर जाति का परम पूज्य देव होता है। ब्राह्मण लोग परमात्मा की जङ्गम मूर्त्ति हैं। इसी से वे भूदेव कहे जाते हैं। उनके दर्शन से पापों की राशि क्षण भर में उसी प्रकार भस्म हो जाती है जिस प्रकार आग से रूई का ढेर। जहाँ ब्राह्मणों का आवागमन हुआ करता है वहाँ सभी तीर्थों का निवास होता है। उन्हें प्रयत्न के साथ सुन्दर

स्वादिष्ट भोजन कराने चाहिए। दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु ब्राह्मणों को देनी चाहिए। ब्राह्मणों की सङ्गति करने से, उनकी पूजा करने से और उन्हें तृप्त करने से घोर नरक की यातना सहते हुए भी पितरों का तारण हो जाता है और वे उत्तम लोक को चले जाते हैं। इस लिए बहुत प्रयत्न करके ब्राह्मणों की परिचर्या करनी चाहिए। ब्राह्मण के दहिने पैर के अँगूठे में सब तीर्थ निवास करते हैं। ब्राह्मण के चरण की रेणु के जितने कण भक्तिपूर्वक सिर पर धारण किए जाएँ उतने ही हजार वर्ष मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है। उनके चरणोदक की जितनी कणिका मनुष्य के शरीर पर पड़ जाएँ उतने ही हजार साल वह ब्रह्मलोक का परमानन्द भोगता है। श्राद्ध में यदि ब्राह्मणों को भोजन न कराए जाएँ तो पितर सीधे नरक को चले जाते हैं। महामूर्ख ज्ञानरहित भी ब्राह्मण संसार का पूज्य होता है। वेद-वेदाङ्ग-पारग विद्वान् ब्राह्मण का तो पूछना ही क्या।

जो लोग ब्राह्मणों को प्यारे हैं वे धन्य हैं जो लोग ब्राह्मणों की पूजा करते हैं उनका फिर इस संसार में आगमन नहीं होता। ब्राह्मणों को प्रणाम करने वाले लोग मनुष्य नहीं साक्षात् देवता हैं। विप्रों का चरणोदक परम पवित्र और पुण्यप्रद होता है। उसके ग्रहण करने से आधि-व्याधि का विनाश हो जाता है। ब्राह्मणों के प्रसाद से सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं और ब्राह्मणों के क्रोध से सब कल्याण नष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मण चाहे विद्या से रहित हो चाहे सहित पर वह भगवान् का रूप ही है। इस लिए ब्राह्मण का कभी अपमान नहीं करना चाहिए। संसार के ताप से तप्त प्राणियों को ब्राह्मण ही शान्ति दे सकता है।

जब तक इस लोक में गङ्गाजी की धारा बहती रहेगी, जब तक वेदों का घोष होता रहेगा और जब तक ब्राह्मणों की पूजा होती रहेगी तब तक कलि का प्रवेश नहीं हो सकता। इस लिए ब्राह्मण की सदा पूजा करनी चाहिए और उसका कभी अपमान नहीं करना चाहिए। ब्राह्मणों के कोप से देवराज इन्द्र के सिंहासन पर बैठा हुआ भी राजा नहुष अतिनीच सर्पयोनि में गिरा दिया गया।

जो ब्राह्मण थोड़ा सा भी वेद और शास्त्र जानता है उसके दर्शनमात्र से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जहाँ वेदवक्ता विप्र निवास करता है वहाँ सभी पुण्य क्षेत्र निवास करने लगते हैं। जहाँ शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण रहता है वहाँ साक्षात् विष्णु भगवान् निवास करते हैं। पुराणवक्ता विप्र जिस स्थान पर चलता फिरता है वहाँ सभी तीर्थ और सभी देव अपना स्थिर स्थान बना लेते हैं। ब्रह्महत्या आदि महापातकों से मुक्ति मिलने का उपाय विप्र के चरण की सेवा ही है।

जिसने उनके चरणों की पूजा कर ली उसने यज्ञ, दान, जप, तप, होम आदि सभी कर लिए। जिस प्रकार सब देवों में भगवान् श्रेष्ठ हैं, वेदों में सामवेद प्रधान है, पुरियों में काशी पुरी उत्तम है, पर्वतों में हिमालय सर्वमान्य है, पशुओं में गौ सर्वपूज्य है, उसी प्रकार संसार के सब प्राणियों में ब्राह्मण सर्वपूज्य हैं।

ब्राह्मणों की पूजा करने के अनन्तर उनकी आज्ञा के अनुसार जो कार्य किया जाता है वह विधिरहित होने पर भी सम्पूर्ण ही होता है। ब्राह्मण की आज्ञा के विना जो कार्य किया जाता है वह चाहे कितने भी परिश्रम से क्यों न किया गया हो निष्फल ही होता है। जो व्यक्ति ब्राह्मण से अपनी विद्या या धन का घमण्ड करता है वह घोर नरक में जाता है और उसके कुल का नाश हो जाता है। जिसका धन और पराक्रम ब्राह्मणों के उपकार में काम आता है वह पुरुष परम पुण्यात्मा है।

हे महाराज राम! ब्राह्मण के वीर्य से चाण्डाली में भी उत्पन्न मनुष्य अवध्य होता है। पुलस्त्य के पौत्र सर्वशास्त्रपारङ्गत रावण के वध का पाप न हो यह बात असम्भव है। हे मर्यादापुरुषोत्तम! यद्यपि आप अलेप और असङ्ग हैं तथापि ब्राह्मणों और गौओं की रक्षा के लिए तथा संसार में सुन्दर आदर्श उपस्थित करने के लिए इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। कुब्जाम्र नामक तीर्थ में ब्रह्महत्या-जनित पाप दूर हो जाता है। उसी का सेवन लक्ष्मण को करना चाहिए वहां तप करने से लक्ष्मणजी का यह भयंकर रोग समूल नष्ट हो जाएगा।

गुरुवर के कथनानुसार लक्ष्मण जी कुब्जाम्रक तीर्थ में गए। वहाँ से एक कोस भर पर एक बहुत ही सुन्दर तपोवन था। उसके समीप ही त्रैलोक्यपावनी त्रिपथगा माता गङ्गा बह रही थीं। अनेकों सिद्ध उस भूमि में बैठे परमाराध्य देव भगवान् पिनाकपाणि का ध्यान कर रहे थे। वहीं पर एक सुन्दर पवित्र भूभाग में लक्ष्मणजी ने एक शिवलिङ्ग संस्थापित किया। उन्होंने आहार-विहार का पूर्ण परित्याग कर बारह वर्ष तक भगवान् शिव में अपने मन की सभी वृत्तियों को लीन कर दिया और षडक्षर मंत्र का जप करते रहे। सौ वर्षों तक उन्होंने केवल वायु पीकर शरीर का पोषण किया। तदनन्तर पत्र और फलों को खाते हुए तथा सब इन्द्रियों को वश में किए हुए वे एक पैर पर सौ वर्ष तक खड़े रहे और भगवान् का ध्यान करते रहे।

उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर अपनी कान्ति से सब दिशाओं

को व्याप्त करते हुए प्रकट हुए। वे महोच्च वृषभ पर आरूढ़ थे। उनका ललाट अर्धचन्द्र से सुशोभित हो रहा था। व्याघ्राम्बर से अपने शरीर को वे ढाँके हुए थे और सर्पों का यज्ञोपवीत पहिने हुए थे। वे आकर बोले कि हे प्रिय वत्स लक्ष्मण! मेरे प्रसाद से तुम सब पातकों से मुक्त हो चुके। इस क्षेत्र में स्नान करने से तुम्हारा ब्रह्महत्या-जनित पाप दूर हो गया। तुम अब जाकर राज्य के सुख भोगो। तुम्हारे शरीर में रोग का नाम भी नहीं रह जाएगा। आज से मैं इसी लिंग में निवास करूँगा और इस लिङ्ग का नाम तुम्हारे ही नाम पर लक्ष्मणेश्वर होगा। ऐसा कह कर भगवान् शिवजी उसी जगह अन्तर्धान हो गए।

भगवान् से वर पाकर लक्ष्मणजी अपनी राजधानी अयोध्या को चले गए और वहाँ भगवान् रामचन्द्रजी की सेवा का अनुत्तम आनन्द उठाने लगे।

लक्ष्मणकुण्ड में स्नान और जप करने से अनन्त फल मिलते हैं। लक्ष्मणेश्वर के दर्शन करने से सब पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। उनके स्नान कराने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होती है। मायापुरी माहात्म्य में लिखा है:—

गङ्गायाः पश्चिमे तीरे यत्र सिन्दूरवर्णका।
मृत्तिका वर्तते विप्र! तत्र लक्ष्मणकुण्डकम् ॥ २४ ॥
तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानन्त्यं लभेन्नरः।
लक्ष्मणेश्वररुद्रोऽत्र दर्शनात् सर्वपापहा ॥ २५ ॥
यः स्नापयति तल्लिङ्गमम्बुना भक्तितत्परः।
सर्वान् कामानवाप्नोति जलदानेन नारद! ॥ २६ ॥

मायापुरी माहात्म्य २३ अ०

उनचासवाँ रत्न

बलराम

जिस समय कौरवों और पाण्डवों का युद्ध छिड़ा तो दोनों दल कृष्ण और बलराम के समीप गए और उनकी सहायता माँगने लगे। कृष्ण ने तो पाण्डवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उनकी ओर हो गए। पर बलराम ने आपस के झगड़े में सम्मिलित होना उचित नहीं समझा इस लिए जब तक इन दोनों दलों में निपटारा न हो जाए तब तक तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया।

कृष्ण, दुर्योधन और अर्जुन को अपना निश्चय सुनाकर वे द्वारका को चले गए। उस परम रमणीय सर्वसुखसम्पन्न नगरी में वे अपने अन्तःपुर का आनन्द लेने लगे। सुरापान कर रमणियों के साथ विहार करना ही उनके समय-यापन का एक मात्र साधन था।

एक दिन वे रेवती आदि सुन्दरियों को साथ लेकर परम रमणीय रैवत उद्यान में मदिरा के नशे में झूमते हुए पहुँचे। वहाँ की अनुपम शोभा देख कर उनका चित्त मुग्ध हो गया। हरे भरे गगनचुम्बी वृक्ष अपने शाखारूपी हाथों से उन लोगों को अपनी ओर बुलाकर अपनी अलौकिक छटा दिखाना चाहते थे। उन वृक्षों पर बैठे हुए नाना प्रकार के विहङ्गम अपनी मनोहर ध्वनि से श्रान्त पान्थों का स्वागत सा करते हुए उनकी थकावट दूर कर रहे थे। उन वृक्षों से रंग बिरंगे सुस्वादु सुपक्व फल अतिथियों की सेवा के लिए टपके से पड़ते थे।

वहाँ के सरोवरों की शोभा अवर्णनीय थी। उनका जल इतना स्वच्छ था कि उनके तल में अनेक प्रकार की क्रीड़ा करती हुई मछलियाँ साफ दिखाई देती थीं। कुमुद, पुण्डरीक, कमल, कल्हार, उत्पल आदि सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से उन सरोवरों की शोभा दुगुनी हो रही थी और सम्पूर्ण वन सुगन्ध से भर रहा था। हंस, सारस, चक्रवाक आदि जल के पक्षी विमल सलिल में स्वच्छन्दतापूर्वक कलोलें कर रहे थे।

उस वन में पहुँचते ही राम का और रमणियों का उत्साह अपरिमित हो गया। वे उस वन की अलौकिक छटा निहार कर आनन्द से उन्मत्त हो गए। अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हुए वे लोग एक रमणीय लतानिकुञ्ज में पहुँचे। वहाँ पर एक एकान्त निर्बाध प्रदेश में परम तेजस्वी एवं तपस्वी मुनि-जन बैठे हुए थे। मृगचर्मों पर गौतम, भरद्वाज, भृगु, कुशिक आदि महर्षियों

के वंशज परम पुनीत द्विजसत्तम शोभायमान हो रहे थे। उन ऋषियों के मध्य में एक ऊँचे और महनीय आसन पर पुराणवक्ता सूतजी विराजमान थे। वे देवताओं और देवर्षियों की मनोहर एवं पुण्यप्रद कथाएँ कह रहे थे और सब महर्षि कथाश्रवण में मग्न हो रहे थे। आनन्दरस में सब लोग इतने लीन हो रहे थे कि किसी को अपने शरीर का भी ध्यान नहीं था।

उसी समय नशे में लड़खड़ाते और प्रलाप करते हुए बलराम अपनी मण्डली के साथ उसी जगह जा पहुँचे। उनको नशे में चूर देख कर सब लोग घबड़ा कर उठ बैठे। केवल सूतजी आसन छोड़ कर न उठे। राम ने समझा कि सूतजी मारे अहंकार के नहीं उठ रहे हैं इस लिए उन्हें बड़ा क्रोध आया और वे उनके ऊपर झपट पड़े उन्होंने सूतजी को पकड़ कर व्यास गद्दी से नीचे पटक दिया। पटकते ही उनके प्राण निकल गए और वे निश्चेतन हो भूमि पर गिर पड़े। अपनी आँखों के सामने सूतजी की दुर्दशा और हत्या देखकर मुनि लोग अत्यन्त त्रस्त हो गए और इस डर से कि कहीं बलराम की दृष्टि उन लोगों के ऊपर भी न घूम जाए वे प्राण लेकर वहाँ से भाग गए।

जब यह सब हत्याकाण्ड हो गया तब बलराम की आँखें खुलीं और उनका नशा दूर हुआ। वे अपने कुत्सित कर्म पर पश्चात्ताप करते हुए मदिरा की निन्दा करने लगे। सूत ऐसे लोकप्रसिद्ध पुराणवक्ता की हत्या करने का उन्हें दारुण दुःख हुआ और इसके प्रायश्चित्त करने का उन्हों ने दृढ़ संकल्प किया।

उन्होंने विचार किया कि स्मृतियों में सब पापों के प्रायश्चित्त बताए गए हैं। उनमें लिखा है कि प्रच्छन्न पापों का जप से, मानसिक पापों का मनस्ताप से, शारीरिक पापों का कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत और मन्त्र जपानुष्ठान से, बुद्धि-जनित पाप ज्ञान से तथा आत्मा की शुद्धि विज्ञान से होती है। शरीर की शुद्धि के अनेक प्रायश्चित्त बताए गए हैं। इस लिए आज से मैं बारह वर्ष का व्रत करूँगा। अपने इस दुष्कर्म का ख्यापन करता हुआ मैं तीर्थयात्रा करूँगा। मैंने अनजाने में बिना किसी स्वार्थ के ब्राह्मण का वध किया है इस लिए इसी प्रायश्चित्त से इस पाप की निवृत्ति हो जाएगी। स्वार्थवश किए गए ब्रह्महत्या आदि पाप का तो कोई प्रायश्चित्त ही नहीं बताया गया है। औषध, भोजन आदि देने से यदि ब्राह्मण या गौ आदि के ऊपर कुछ आपत्ति आ जाए तो उसका पाप नहीं लगता। घर, भूमि आदि के लिए यदि कोई ब्राह्मण किसी के ऊपर प्राण दे दे तो उसका पाप नहीं लगता। बहुत से मनुष्य एक उद्देश्य

से किसी को मारने के लिए शस्त्र ले कर जाएँ और उनमें से एक वध करे तो वे सब घातक कहे जाते हैं। मैंने मदिरा के आवेश में बड़ा दुष्कर्म कर डाला। मुझ पापाचरण करने वाले को कोटिशः धिक्कार है। मैं बड़ा ही पापी हूं।

इस प्रकार बलराम अपने मन में बहुत पश्चात्ताप कर रहे थे और संतप्त हो रहे थे उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि हे राम! तुम अपने मन में लेशमात्र सन्ताप मत करो। तुम सीधे प्रभासक्षेत्र में चले जाओ जहाँ सरस्वती देवी अपने परम पावन सलिल से असंख्य पापियों का उद्धार करती रहती हैं। गङ्गा आदि जितनी पवित्र नदियाँ हैं उन सब में सरस्वती सर्वश्रेष्ठ हैं। संसार के सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने का और सरस्वती में स्नान करने का समान फल होता है। ब्रह्महत्यादिक पाप तभी तक गरजते रहते हैं जब तक सरस्वतीजी के दर्शन नहीं होते*। तुम वहाँ जाकर भगवान् शङ्कर की आराधना करो वहीं तुम्हें इस पाप से छुटकारा मिलेगा।

बलराम इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर परम आनन्दित हुए और प्रभास क्षेत्र में जाने के लिए उद्यत हो गए। वे अपनी सेना लेकर प्रभास क्षेत्र में पहुंच गए और वहाँ सरस्वती और समुद्र के संगम पर एक उत्तम शिवलिङ्ग संस्थापित किया। उन्हीं महादेवजी के सामने अखण्ड समाधि लगा कर सांसारिक वासनाओं का परित्याग कर बलरामजी घोर तपस्या करने लगे। अपनी सब इन्द्रियों को वश में कर के वे निराहार हो भगवान् की आराधना करने लगे।

उनकी कठिन तपस्या देख शङ्कर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं प्रकट हो कहने लगे कि हे राम! तुम्हारी तपस्या से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है और मैं तुम पर अतीव प्रसन्न हूं। तुम्हारा ब्रह्महत्या-जनित महापातक दूर हो गया। यह कह कर वे अन्तर्धान हो गए।

बलराम का वह महा-पातक दूर हो गया और शरीर शुद्ध हो गया। उसी दिन से उस लिङ्ग का नाम रामेश्वर हो गया। पाप के भय को दूर कर देने वाले इस शिवलिङ्ग के पूजन से मनुष्य महापातकों से भी मुक्त हो जाता है।

---

* तावद्गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
यावन्न दृश्यते देवी प्रभासस्था सरस्वती ॥ ५८ ॥

प्र० क्षे० मा० २०२ अ०

ब्रह्मकूर्च विधान से अष्टमी के दिन पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। स्कन्दपुराण में बलरामजी के संस्थापित रामेश्वर महादेव का बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

यस्तत् पूजयते देवि लिङ्गं पापभयापहम् ।
रामेश्वरेति कथितं सोऽपि मुच्येत पातकात् ॥ ७३ ॥
अष्टम्यां च विशेषेण ब्रह्मकूर्चविधानतः ।
यस्तत्र कुरुते देवि सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ७४ ॥

प्रभास खं० प्र० दे० मा० २०२ अ०

पचासवाँ रत्न

लीलापुरुषोत्तम कृष्ण

कंस का अत्याचार सुन कर कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम को साथ ले कर मथुरा गए और वहाँ उन्होंने अपने मामा कंस को सुरधाम पहुंचा कर अपने माता-पिता को कारागार से मुक्त कर दिया और उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठा दिया। वहाँ से वे सान्दीपनि के यहाँ विद्या सीखने को गए और थोड़े ही काल में सब विद्याएँ सीख कर मथुरा को लौट आए और दैत्यों से युद्ध करने लगे। उस समय यह पुरी दैत्यों से एक दम भरी थी। इसी बीच उन्हों ने अपनी द्वारका नाम की नगरी समुद्र के मध्य में बनवा ली और उसे अपनी योग-माया के द्वारा गगनचुम्बी प्रासादों से तथा सुरम्य उपवनों से विभूषित कर नाना-कला-विशारद सभ्य नागरिकों से परिपूर्ण कर दिया।

दैत्यों ने उस समय बहुत उपद्रव मचा रक्खा था। कालयवन आदि अनेक दुष्टों का विनाश करने पर भी कृष्ण को शान्ति नहीं मिल रही थी और वे बहुत व्यग्र हो रहे थे। वे इसी चिन्ता के दूर करने का उपाय खोजते हुए रैवत पर्वत पर शैव-शिरोमणि महर्षि उपमन्यु के समीप गए और विजय पाने का उपाय पूछने लगे। उन्हों ने कहा कि हे महाराज! मैं निरन्तर दैत्यों का वध किया करता हूं और अनेकों को यमलोक भेज चुका हूं पर इनका अन्त नहीं होता। रोज एक एक नया दैत्य आकर उपद्रव मचाता है। मुझे ये सब चैन नहीं लेने देते।

हे महर्षे ! मुझे आप ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे मैं विजय पाकर सुख और शान्ति का अनुभव कर सकूँ।

उनके वचन सुन कर उपमन्यु ने कहा कि हे महापुरुष ! आप तो विष्णु के रूप हैं, आप शिवजी की आराधना क्यों नहीं करते ? आपने पहिले भी तो महादेवजी की आराधना कर सुदर्शन चक्र पाया था और उससे दैत्यों का संहार किया था। शिवजी आप के सदा सहायक हैं और अब भी यदि आप उनकी आराधना करेंगे तो वे आप की कामना पूर्ण करेंगे। उनके भजन से आप को सब कुछ मिल सकेगा। इतना कह कर उन्हों ने कृष्णजी को मन्त्र भी दे दिया।

महर्षि उपमन्यु से उपदेश और मन्त्र पाकर कृष्णजी ने आराधना करने का निश्चय किया। उन्हों ने उसी पवित्र पर्वत पर एक शिवलिङ्ग स्थापित किया और विविध उपचारों से उनकी पूजा करने लगे। वे प्रतिदिन अनेक वर्ण के कमल लाकर शिवजी को चढ़ाते थे। करवीर, मन्दार और शंखी के पुष्प वे उन्हें भक्तियुक्त चित्त से रोज समर्पण करते थे। दूर्वा और बिल्वपत्र से वे उन्हें विभूषित करते थे। पूजन के अनन्तर वे उनका अविचल मन से ध्यान करते थे और प्रेममयी स्तुति सुनाते थे। इस प्रकार आराधना करते करते सात महीने व्यतीत हो गए।

भगवान् शिव उनकी इस अनन्य भक्तिसे बहुत प्रसन्न हुए और उस लिङ्ग से पार्वतीसमेत प्रकट हुए और कहने लगे कि इस तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूं जो वर माँगना हो वह माँगो।

कृष्णजी अत्यन्त प्रमुदित होकर विनयपूर्वक कहने लगे कि हे देवदेव ! आपकी प्रसन्नता से मुझे सब कुछ मिल चुका। दैत्य मुझे तंग कर रहे हैं, उन्हीं से पीड़ित होकर मैं आपकी शरण आया हूं। हे दयानिधे ! मुझे इस दुःख से बचाइये।

शंकर भगवान् ने कहा कि आज से धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, अतुल सामर्थ्य तुम्हें सदा प्राप्त रहेंगे और दैत्यों का विनाश अनायास कर सकोगे। विजयलक्ष्मी तुम्हारा साथ कभी न छोड़ेगी। हे कृष्ण ! तुम अब जाओ और अपने कार्य में प्रवृत्त होकर संसार का कल्याण करो। उनकी आज्ञा पाकर कृष्ण भगवान् द्वारका को चले गए और दैत्यों का विनाश कर राज्य का सुख से सञ्चालन करने लगे। उन्होने शिवजी की प्रतिदिन पूजा करने का नियम कर लिया।

उस शिवलिङ्ग की सात महीनों तक बिल्वपत्रों से निरन्तर पूजा होती रही

इस लिए उसका नाम विल्वेश्वर हो गया । उनकी आराधना करने से मनुष्य की अभीष्ट सिद्धि होती है और अन्त में शिवलोक की प्राप्ति होती है । इनके दर्शनों से कायिक, वाचिक और मानसिक पाप नष्ट हो जाते हैं । जो प्रति दिन इनके दर्शन करे उसे सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करने का पुण्य मिलता है ।

वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यच्च दुष्कृतम् ।
विनश्येत् किल्विषं सर्वं श्रीबिल्वेश्वरदर्शनात् ॥
बिल्वेश्वरं तु यो भक्त्या नित्यं पश्यति मानवः ।
अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
युज्यते नात्र सन्देहः सत्यमेव तपोधनाः ॥

शिवपुराण ज्ञान सं० १६ अ०

इक्यावनवाँ रत्न

वीरशिरोमणि अर्जुन

दुर्योधन ने पाण्डवों को द्यूत में हरा कर बारह बरस का वनवास देदिया । बिचारे पाण्डव कुन्ती और द्रौपदी के साथ एक श्वापदसंकुल निर्जन वन में समय काटने लगे । भीम और अर्जुन ऐसे महापराक्रमी वीर दुष्ट दुर्योधन के इस दारुण व्यवहार को सह नहीं सकते थे और उसी समय कौरवों का विनाश करना चाहते थे परन्तु सत्यव्रती युधिष्ठिर मर्यादा को तोड़कर कलङ्कित होना नहीं चाहते थे और अपने भाइयों को धैर्य का माहात्म्य बताया करते थे ।

एक दिन द्रौपदी के स्मरण करने पर श्रीकृष्ण उस वन में आए । उनके उचित आदर सत्कार करने के अनन्तर पाण्डवों ने अपने प्रबल शत्रु के विनाश का उपाय पूछा । भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया कि मैं भी अपने शत्रुओं से बड़ा हैरान था । उन के विनाश के लिए मैंने भगवान् शङ्कर की आराधना की । एक पर्वत के शिखर पर एकान्त में विल्वेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापित कर सात महीनों तक मैंने मनसा, वाचा और कर्मणा महादेवजी की पूजा की । उस पूजा के प्रताप से मुझमें अपूर्व शक्ति आ गई और मैंने अपने सब शत्रुओं का विना

प्रयास ही विनाश कर दिया। अभी तक मैं उन भुक्ति और मुक्ति देने वाले भगवान् का प्रतिदिन ध्यान करता हूं। आशुतोष भगवान् सब कामनाओं की पूर्ति करेंगे। इतना कहकर कृष्णजी चले गए और थोड़े ही दिनों के पश्चात् परम तेजोराशि जटाजूट विभूषित व्यासजी पाण्डवों से मिलने आए।

पाण्डवों ने उनका बड़ा सत्कार किया और कहा कि हे महाराज ! आपने इस दुःख में दर्शन देकर बड़ा अनुग्रह किया। आप ऐसे महापुरुषों के दर्शन से ही मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं। अब हमें पूरा विश्वास है कि हम लोगों के सब कष्टों का अन्त शीघ्र ही हो जाएगा।

व्यासजी उनके आतिथ्य-सत्कार से बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि आप ऐसे सत्पुरुषों का सदा कल्याण ही है। सुख–दुख तो संसार में लगे ही रहते हैं, इनसे मनुष्य को अधीर नहीं होना चाहिए। थोड़े ही समय के पश्चात् इस दुःख का अन्त हो जाएगा। तदनन्तर अनन्त सौख्य का आनन्द मिलेगा। अब कौरवों के अत्याचारों और पापों का घड़ा भर गया, वह फूटना ही चाहता है। इस दुःख के अन्त करने का मैं सर्वोत्तम उपाय बताता हूं।

भगवान् शङ्कर की आराधना से सब कामनाओं की पूर्ति होती है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त संसार में जितनी वस्तुएँ हैं वे सब शिवरूप ही हैं। सब दुःखों के हरण करनेवाले शङ्कर भगवान् की सभी देवता, मुनि और मनुष्य पूजा करते हैं। विष्णु देव भी सब मनोरथ पूरे करते हैं पर बहुत दिनों में प्रसन्न होते हैं। शिव जी थोड़े ही समय में प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति दे देते हैं। इसलिए भुक्ति और मुक्ति की कामना करनेवाले मनुष्य को सदाशिव की आराधना सदा करनी चाहिए। अर्जुन इस आराधना के लिए सब से अधिक उपयुक्त हैं।

हे अर्जुन ! इन्द्रकील पर्वत पर जाकर पहिले क्षत्रियों के उपास्य देव इन्द्र की उपासना कीजिए। मैं मन्त्र देता हूं उसीके जप से अभीष्टसिद्धि होगी। इन्द्र को प्रसन्न करने के अनन्तर शिवजी की आराधना करना। शिव के वर पाने पर अवश्य ही विजय होगी।

इतना कह कर महर्षि व्यास चले गए और अर्जुन ने तप करने की तयारी की। वे सब भाइयों से तथा कुन्ती और द्रौपदी से विदा हो कर इन्द्रकील पर्वत को चले गए और वहाँ परम पावनी गङ्गाजी के सुरम्य तट पर दारुण तप करने लगे। उनकी तपस्या से देवराज बहुत प्रसन्न हुए और अर्जुन के समीप गए। अर्जुन उन्हें देख अत्यन्त आनन्दित हुए और प्रेममयी स्तुति करने लगे।

इन्द्र ने कहा कि हे अर्जुन ! तुम्हारा प्रयत्न प्रशंसनीय है। दुर्योधन के समान आततायियों का वध करना तुम्हारे ऐसे धर्मपरायण क्षत्रियों का परम आवश्यक कर्तव्य है। विजय प्राप्त करने के लिए तुम भगवान् शङ्कर की आराधना करो। वे तुम्हें शत्रु के संहार करने की शक्ति दे सकते हैं। द्रोण, भीष्म, कर्ण आदि महारथियों को हराने की शक्ति मैं नहीं दे सकता। ब्रह्मा, विष्णु आदि जितने महापुरुषों ने विजय पाई है वे सब महेश्वर के उपासक हैं। आज से मेरे मन्त्र के जप को छोड़ कर शिवजी का सर्वभाव से भजन करो। अनेक उपचारों से उनकी पूजा करो, सिद्धि अवश्य होगी। अच्छे कामों में अनेक विघ्न होते हैं इस लिए तुम धैर्य धारण किए रहना। शिवजी फल देवेंगे ही।

इतना कह कर इन्द्र अन्तर्धान हो गए और अर्जुन ने शिवाराधना प्रारम्भ कर दी। वे प्रतिदिन त्रैलोक्यपावनी गङ्गाजी में स्नान सन्ध्या कर अङ्गन्यास और करन्यास करते और तब प्राणायाम चढ़ा कर एक पर पर खड़े हो जाते थे। सूर्य देव की ओर एक टक दृष्टि से देखते हुए वे महेश्वर का ध्यान और षडक्षर मन्त्र का जप दिन भर करते रहते थे। उनके दारुण तप के तेज से संसार व्याप्त हो गया और सब लोगों को आश्चर्य होने लगा। देवता लोग शिवलोक में गए और शिवजी से कहने लगे कि अर्जुन आपकी प्रसन्नता के लिए इतना दुष्कर तप कर रहे हैं। आप उनकी कामना की पूर्ति क्यों नहीं करते ?

देवों के वचन सुनकर शिवजी ने कहा कि आप लोग अपने लोकों को जाइये। मैं अभी जाता हूं और अर्जुन को अभीष्ट वर देकर इस दारुण तप से निवृत्त करता हूं।

इतने ही में दुर्योधन का भेजा हुआ मूक नामक दैत्य शूकर का रूप धारण कर पर्वत की चट्टानों और विशाल द्रुमों को गिराता हुआ और अनेक प्रकार के भीषण शब्द करता हुआ अर्जुन के सामने से निकला। अर्जुन ने अपने मन में विचार किया कि यह या तो कोई दैत्य है और मुझे अकेला समझ बदला लेना चाहता है अथवा दुर्योधन का भेजा हुआ कोई व्यक्ति है और मेरे तप में विघ्न डालना चाहता है। इसके देखते ही मेरे मन में यह बात आती है कि यह कोई मेरा शत्रु अवश्य है। जिसके दर्शन से मन में प्रसन्नता हो उसे हित समझना चाहिए और जिसे देख मन कलुषित हो जाए उसे शत्रु समझना चाहिए। आचार-विचार से कुल का पता लगता है, शरीर से भोजन का प्रकार ज्ञात होता है, भाषण से विद्वत्ता की थाह लगती है और आंखों से प्रेम का पता

चलता है। आकार, गति, चेष्टा, भाषण और अपने मन की वृत्ति से दूसरे के मन के भाव ज्ञात हो जाते हैं। नेत्रों में चार प्रकार के परिवर्तन हुआ करते हैं। मित्र के दर्शन से नेत्र उज्ज्वल और आह्लादित हो जाते हैं, पुत्र के दिखाई देने पर सरल, कामिनी को देखते ही कुटिल और शत्रु के सामने आते ही लाल हो जाते हैं। इसे देख मेरी सभी इन्द्रियां कलुषित हो गई हैं, इस लिए यह अवश्य मेरा शत्रु है। इसको यमलोक भेज देना मेरा परम कर्तव्य है।

ऐसा विचार कर इधर तो अर्जुन आयुध लेकर उसे मारने के लिए उद्यत हुए और उधर शिवजी अर्जुन की रक्षा और परीक्षा के लिए भील का रूप धारण कर उसी जगह जा पहुँचे। शिवजी के असंख्य गण भी भीलों का रूप धारण कर भयङ्कर गर्जन करने लगे। उस शूकर के भयङ्कर गर्जन से तथा सेना के गम्भीर कोलाहल से सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हो गईं और वन के सभी जीव-जन्तु व्याकुल हो उठे। अर्जुन भी अपने मन में चिन्तित हुए। वे अपने मन में कहने लगे कि जो कुछ भी हो शिवजी मेरा कल्याण अवश्य करेंगे। वेद, पुराण और स्मृतियाँ का यही कथन है कि शिवजी सदा कल्याण करते हैं उनके भजन से मुक्ति और भुक्ति सभी अनायास प्राप्त होती हैं। उनके नाम के स्मरण करने से मनुष्य का सब प्रकार कल्याण होता है। सर्व भाव से भजन करने वाले के पाप और दुःख भस्म हो जाते हैं।

इस प्रकार अर्जुन मन में विचार कर ही रहे थे कि इतने में शूकर समीप आ गया। अर्जुन धनुष और बाण लेकर सामने डट गए। शिवजी भी यह सोच कर कि कहीं कुछ अनर्थ न हो जाए शूकर के पीछे पीछे दौड़े। दोनों ने एक ही क्षण में बाण चलाए। अर्जुन का बाण मुंह में घुस कर पृष्ठ भाग से निकल गया और शिवजी का बाण पृष्ठ भाग से प्रवेश कर मुख से निकल गया और भूमि में घुस गया। बाणों के लगते ही वह दैत्य अपने असली रूप में आ गया और उसका विकराल रूप भूभाग पर जागिरा। उसी समय आकाश में दुन्दुभियों की आनन्दमयी ध्वनि होने लगी और पुष्पों की वर्षा होने लगी। शिवजी और अर्जुन दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

अर्जुन अपने बाण को लेने चले और उधर से शिवजी का भेजा हुआ एक भील भी उसे लेने को पहुंचा। दोनों में विवाद होने लगा। अर्जुन कहते थे कि यह मेरा बाण है और भील कहता था कि यह मेरे महाराज का है। बहुत देर के कलह के अनन्तर यह निश्चय हुआ कि युद्ध में जो हरा दे उसी का बाण समझा जाए।

फिर क्या था गहिरा युद्ध ठन गया। एक ओर तो अपनी अनन्त सेना लिए हुए भील का रूप धारण किए हुए साक्षात् रुद्र और दूसरी ओर तपस्या जनित क्षीणता के कारण अस्थिचर्मावशिष्ट शरीरधारी अकेले अर्जुन। शिवजी के गण अपने अनेक प्रकार के भयङ्कर आयुधों से अर्जुन के ऊपर प्रहार करने लगे और शिवजी स्वयं बाणों की वर्षा करने लगे। अर्जुन अकेले उन सब का जवाब देते थे और उनके आयुधों को काट कर दूर फेंक देते थे। गणों को उन्होंने इतना पीड़ित किया कि वे उस रणभूमि को छोड़ चिल्लाते हुए दूर भाग गए। रह गए अकेले शिवजी।अब दोनों में भीषण युद्ध होने लगा। शिवजी दया कर धीरे धीरे प्रहार करते थे और अर्जुन विजय प्राप्त करने की लालसा से पूरी शक्ति लगा रहे थे। इस लिए दोनों पक्ष बराबर हो रहे थे।

शिवजी ने अर्जुन के सब आयुध नष्ट कर दिए और कवच भी काट डाला। तब दोनो में मल्लयुद्ध होने लगा। उनके युद्ध से समुद्रपर्यन्त मेदिनी पीड़ित हो उठी। सभी देवता दुःखित होकर हाहाकार करने लगे। उनका युद्ध समाप्त नहीं होता था। शिवजी उड़ कर आकाश में पहुँच गए और वहाँ से लड़ने लगे। अर्जुन भी आकाश में उड़ कर शिवजी से भिड़ गए। आकाश ही में घमासान युद्ध होने लगा। अन्त में अर्जुन को मौका मिला और वे शिवजी के पैर पकड़ कर उन्हें घुमाने लगे। उसी समय महादेवजी ने कृपाकर अपना स्वरूप धारण कर लिया और उसी रूपसे अर्जुन के सामने खड़े हो गए।

वेद और शास्त्रों में प्रतिपादित भगवान् के रूप को देखकर अर्जुन अत्यन्त लज्जित हो गए और अपने मन में पश्चात्ताप करने लगे। वे शङ्कर भगवान् के पैरों पर पड़ गए और प्रार्थना करने लगे कि हे महेश्वर! हे दया-निधे! मैंने अनजाने में आप से युद्ध किया। हे प्रभो! आपकी माया बड़ी बल-वती है। बड़े बड़े योगी भी आपकी माया से मोहित हो जाते हैं मुझ तुच्छ की तो गणना ही क्या। हे देवेश! मुझे आप क्षमा करें।

अर्जुन के वचन सुन कर महादेवजी ने मधुर शब्दों में कहा कि हे वत्स! मैंने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। तुम्हें इसका लेशमात्र भी सोच न करना चाहिए। हे अर्जुन! तुम्हारे ऊपर मैं परम प्रसन्न हूं। तुम्हारे प्रहारों को मैंने अपना पूजन मान लिया है। मैंने यह अपनी इच्छा से किया है इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं। शत्रुओं में इस युद्ध से तुम्हारी धाक जम जाएगी। हे वत्स! तुम इसका थोड़ा भी सोच न करो।

भगवान् के ऐसे प्रिय वचन सुन कर अर्जुन स्तुति करने लगे और कहने लगे

कि हे देव! संसार में जितना प्रकाश है वह सब आपका ही है। आपके गुणों का वर्णन करना वेदों की भी शक्ति के बाहर है। मेरी तो बात ही क्या।

इस स्तुति को सुन कर महादेवजी प्रसन्न हो गए और अभीष्ट वर माँगने के लिए अर्जुन से कहने लगे अर्जुन ने उन्हें प्रणाम कर कहा कि हे महेश्वर! आप तो अन्तर्यामी हैं और सब के मन की बात जानते हैं तो भी आपकी आज्ञा के अनुसार मैं प्रार्थना करता हूं कि हे देव! शत्रुओं को रण में पराजित कर ऐहिक सकल सिद्धियाँ मुझे प्राप्त हों।

शिवजी ने उन्हें अपना अनन्य भक्त समझ कर पाशुपत अस्त्र दे दिया। और कहा कि हे अर्जुन! इस अस्त्र के धारण करने वाले को ब्रह्माण्ड में कोई पराजित नहीं कर सकता। संसार में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं जो अब तुम्हें नीचा दिखा सके। इस अस्त्र से अपने सब शत्रुओं का तुम नाश कर दोगे। कृष्ण से भी मैं कह दूँगा वे तुम्हारी सहायता करेंगे। विजय पाकर तुम राज्य का अनन्त सुख भोगोगे और अनेक प्रकार के यज्ञ आदि धार्मिक कृत्य करोगे। इतना कह कर तथा उनके सिर पर हाथ रखकर वे अन्तर्धान हो गए। अर्जुन भी प्रसन्न होते हुए अपनी माता एवं भाइयों के चरणों में पहुँच गए। उस समय आकाश में दुन्दुभियों का गम्भीर स्वन सुनाई देने लगा और पुष्पों की वृष्टि होने लगी। सब देवों ने आकर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र उन्हें दिए। पाण्डव लोग इससे बहुत प्रसन्न हुए और युद्ध की तयारी कराने लगे।

महाभारत के युद्ध में इसी पाशुपतास्त्र के बल से अर्जुन ने भीष्म, द्रोण, कर्ण समान महापराक्रमी महारथियों को परास्त कर निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया और चिरकाल तक इस लोक का स्वाराज्य सुख भोग कर परलोक में भी उच्च पद को प्राप्त हुए। इसी प्रकार जिन जिन लोगों ने भगवान् की आराधना की वे सब अभीष्ट फल पाकर कृतकृत्य हो गए। शिवपुराण में शिवजी की कृपालुता का वर्णन बड़े सुन्दर और सारगर्भित शब्दों में किया गया है।

शिवः शुभकरः प्रोक्तः शिवः सुखकरः सदा।
मुक्तिदश्च परं प्रोक्तो भुक्तिदो नात्र संशयः ॥ २८ ॥
तन्नाम स्मरतां पुंसां कल्याणं जायते ध्रुवम्।
भजतां सर्वभावेण दुःखं पापं च नश्यति ॥ २९ ॥

शिव पु० ज्ञान सं० ६५ अ०

बावनवाँ रत्न

ध्रुवजी

प्राचीन काल में उत्तानपाद नाम के एक बड़े प्रतापी राजा हो गए हैं। उनके पुत्र ध्रुव जी तो अपने पिता जी से भी अधिक प्रभावशाली एवं तेजस्वी हुए। उन्हों ने पाँच वर्ष की अवस्था में छ महीनों तक घोर तप कर के भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया और उस ध्रुव पद को पहुंचे जिसका कभी विनाश नहीं हो सकता। चिर काल से सम्पूर्ण ग्रहचक्र उनकी परिक्रमा करता आया है और अनन्त काल तक इसी प्रकार परिक्रमा करता रहेगा।

वे बड़े महात्मा एवं ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न थे। उनके सुचारु शासन से प्रजा परम सन्तुष्ट थी। उनके दर्शनों ही से चित्त प्रसन्न होजाता था और सांसारिक चिन्ताएँ निवृत्त हो जाती थीं।

चिर काल तक राज्य प्रबन्ध करते करते उनके मन में एक बार तीर्थयात्रा करने की अभिलाषा हुई। प्रभास क्षेत्र का माहात्म्य सुन कर वे वहीं गए और भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उन्हों ने अपने नाम पर ध्रुवेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग स्थापित किया और उनको आराधना करने लगे।

वे प्रतिदिन प्रातःकाल वन में जाकर सुन्दर सुगन्धित कमल, मन्दार, धतूर आदि के कुसुम चुन चुन कर ले आते थे और भगवान् शङ्कर को एक एक फूल बड़े प्रेम से चढ़ाते थे। तदनन्तर वन से लाए हुए सुस्वादु कन्द, मूल और फल भगवान् को समर्पण करते थे। अन्त में वे प्रेममग्न हो कर प्रेमाश्रु बहाते हुए शङ्कर भगवान् की नए नए स्तोत्रों से स्तुति करते थे।

इस प्रकार आराधना करते करते उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन वे षोड़शोपचार से पूजा करने के अनन्तर हाथ जोड़ कर अधोलिखित स्तोत्र से स्तुति करने लगे:—

कैलासतुङ्गशिखरं प्रविकम्प्यमानं कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन।
यः पादपद्मपरिपीड़नया दधार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥ १॥
येनासुराश्चापि दनोश्च पुत्रा विद्याधरोरगगणैश्च वृताः समग्राः।
संयोजिता न तु फलं फलमूलमुक्ता स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥ २॥
यस्याखिलं जगदिदं वशवर्ति नित्यं योऽष्टाभिरेव तनुभि र्भुवनानि भुंक्ते।

यत्कारणां परमकारणकारणानां तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ ३ ॥
यः सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देवस्तत्पञ्चमं च सहसैव पुरातिरुष्टः ।
ब्राह्मं शिरस्तरुणपद्मनिभं चकर्त तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ ४ ॥
यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या श्रुत्वा च वाग्भिरमलाभिरतन्द्रिताभिः ।
दीप्तस्तमांसि नुदति स्वकरैर्विवस्वांस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ ५ ॥

इस स्तोत्र से शङ्कर भगवान् अत्यन्त तुष्ट हो गए और उनके आश्रम में वर देने के निमित्त पधारे। आते ही उन्हों ने ध्रुव से कहा कि हे प्रिय भक्त ! तुम्हारी इस दारुण तपस्या से और विशेष कर इस स्तुति से मैं परम प्रसन्न हो गया हूं। इस स्तोत्र से जो मनुष्य मेरी स्तुति करेगा वह इस लोक में सब प्रकार के सुख भोग कर अन्त में शिव लोक को प्राप्त होगा। हे वत्स ! मैं तुमको दिव्य दृष्टि देता हूं जिससे तुम मेरे दर्शन कर सकोगे।

इतना वचन कहते ही ध्रुव की दिव्य दृष्टि हो गई और सामने जटाजूट-धारी नागहारविभूषित भगवान् शङ्कर की सुरम्य एवं परम दीप्तिमती मूर्ति दिखाई पड़ी। उनका प्रसन्न मुख-कमल देख ध्रुवजी का चिर काल की दारुण तपस्या से समुत्पन्न खेद क्षण भर में विलीन हो गया और आह्लाद से चित्त प्रफुल्लित हो उठा। द्विगुणित प्रेम से वे उनकी स्तुति करने लगे और चरणों में गिर पड़े।

महादेवजी और भी अधिक प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे भक्त शिरोमणे ! तुम्हारे मन में जो अभिलाषा हो प्रकट करो। मैं तुम्हें सब कुछ दे सकता हूं।

ध्रुवजी ने कहा कि हे महाराज ! मुझे न तो ब्रह्मपद चाहिए और न विष्णु पद। इन्द्र लोक की भी मुझे लेशमात्र अभिलाषा नहीं है। इन सब लोकों में जाकर फिर जन्म-मरण का अनन्त दुःख भोगना पड़ेगा। हे करुणावरुणालय ! आप कृपा कर मुझे अपनी अटल भक्ति दीजिए जिससे भुक्ति और मुक्ति अनायास मिल जाती हैं। आप संसार के उपकार के लिए इसी लिङ्ग में विराजमान हो जाइये।

शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी कामना की पूर्ति कर दी और शिवलोक को चले गए। ध्रुवजी उस लिङ्ग की समाराधना कर के वहाँ से विदा हुए और अपनी राजधानी में जाकर भगवान् की आराधना करते हुए राज्य का अनुपम सुख भोगने लगे।

ध्रुवेश्वर की आराधना करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

श्रावण की अमावास्या तथा आश्विन की पूर्णमासी के दिन पूजा करने से एक अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। पुत्रार्थी पुत्र पाता है और धनार्थी धन पाता है। सौन्दर्य और सौभाग्य की वृद्धि होती है। सब शास्त्रों का पाण्डित्य प्राप्त होता है। साँसारिक सभी सुखों को भोग कर अन्त में हंसयुक्त विमान पर चढ़ कर रुद्रलोक को चला जाता है। स्कन्दपुराण में ध्रुवेश्वर महादेव का माहात्म्य इस प्रकार लिखा है:—

श्रावणस्य शुभामायां यस्तल्लिङ्गं प्रपूजयेत् ।
आश्वयुक् पौर्णमास्यां वा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ २ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
रूपवान् सुभगो भोगी सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २१ ॥
हंसयुक्तविमानेन रुद्रलोके महीयते ॥

प्रभास खण्ड प्र० क्षे० मा० १३१ अ०

तिरपनवाँ रत्न

सत्यव्रती राजा हरिश्चन्द्र

जगत्प्रसिद्ध महाराज हरिश्चन्द्र सूर्यवंश में उत्पन्न महाराज त्रिशंकु के पुत्र थे। उनका राज्य रामराज्य था। प्रजा सब प्रकार से सुखी एवं सतुष्ट थी। उस समय न तो दुर्भिक्ष होता था और न दुष्ट रोग किसी को सताते थे। अकाल-मरण का तो कोई नाम भी नहीं जानता था। मेघ ठीक समय पर पानी बरसाते थे। हरे भरे धान्यों से पृथ्वी लहराती रहती थी। वृक्षों में बारहों महीने फल लगा करते थे। चोरों और लम्पटों का लेशमात्र भी भय नहीं था।

राजा को प्रजा के सुख से बड़ा सुख मिलता था। प्रजा का वे पुत्रों के समान पालन-पोषण करते थे। भगवान् शङ्कर की दया से उन्हें सब प्रकार के सुख प्राप्त थे। चिन्ता थी तो केवल एक पुत्र की। बहुत समय बीत जाने पर भी उनके कोई पुत्र नहीं होता था। पुत्र के अभाव से उन्हें राज पाट सब सूना प्रतीत होता था। गुरुजन के उपदेश से हरिश्चन्द्र ने पुत्रप्राप्ति के लिए शङ्कर की आराधना प्रारम्भ की।

चमत्कार पुर नामक परम पावन तीर्थ में जाकर उन्होंने एक शिव लिङ्ग

शास्त्रोक्त विधान के साथ स्थापित किया। वे उनकी सोलहों उपचारों से पूजा करने लगे। वे रात दिन भगवान् महेश्वर का ही ध्यान किया करते थे। गर्मी की ऋतु में पंचाग्नि का तपना, वर्षा में खुले मैदान में बैठे रहना और शीत काल में ठण्डे जल में डुबकी लगाए रहना यही उनकी तपस्या का प्रकार था। उनके मन की वृत्ति भगवान् शम्भु के ध्यान में ही लगी रहती थी।

इस प्रकार तप करते उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। शिवजी इनकी आराधना से बहुत प्रसन्न हुए और पार्वती जी को साथ लेकर हरिश्चन्द्र के सामने आए। उनके परम पुण्यप्रद भव्य दर्शन कर राजा कृतार्थ हो गए और बड़ी नम्रता के साथ अनेक सूक्तों से स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से भगवान् और भी अधिक प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे राजन्! मैं तुम्हें अभीष्ट वर देने आया हूं। तुम्हें जो कुछ माँगना हो माँग लो। सुदुर्लभ वस्तु भी मैं तुम को देने को तयार हूं।

हरिश्चन्द्र ने उनके परमानन्द देने वाले चरणकमलों का स्पर्श करते हुए विनयपूर्वक कहा कि हे देवदेव! हे सुरश्रेष्ठ! आप के प्रसाद से संसार में जितनी सुख की सामग्रियाँ हैं वे सब वर्तमान हैं। परम सुन्दरी रानियाँ सदा चित्त को प्रफुल्लित करती हैं। साम्राज्य भर में एक भी शत्रु नहीं दिखाई देता। शरीर में रोग का प्रवेश नहीं होने पाता। रुपए-पैसे, हीरे-मोती कितने हैं इसकी गणना नहीं है। परन्तु नयनानन्दकारक एक पुत्र के बिना सब कुछ सूना मालूम पड़ता है। इस लिए हे महाराज! आप मुझ को एक पुत्र देकर मेरे घर का अन्धकार दूर कीजिए।

शिवजी ने कहा कि हे नृपश्रेष्ठ! मेरे प्रसाद से तुम्हारे बहुत शीघ्र ही एक पुत्र होगा। इसमें तुम लेशमात्र भी सन्देह न समझना। तुम शीघ्र इस तीर्थ से अपनी राजधानी अयोध्या को जाओ और राज्य का संचालन करो।

हरिश्चन्द्र ने महादेव जी को तो नमस्कार किया था पर साथ में आई हुई पार्वती जी की ओर देखा भी नहीं था। इससे पार्वती जी बहुत कुपित हुई और कहने लगीं कि हे मूर्ख! शिवजी को तो तुमने प्रणाम किया पर मुझे प्रणाम नहीं किया। तुमने मेरा बड़ा अपमान किया। इस लिए मैं शाप देती हूं कि शिवजी के दिए पुत्र की मृत्यु का दुःख तुम्हें भोगना पड़ेगा। लड़कपन में ही वह मर जाएगा और तुम उसके लिए रोओगे।

इतना कह कर वे शिवजी के साथ चली गईं। राजा ने यह शाप सुन कर प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक पार्वती जी को प्रसन्न न कर लूंगा तब तक इस स्थान

से नहीं टलूंगा। ऐसा निश्चय कर राजा ने एक ही आसन पर पार्वती जी और शिवजी को स्थापित किया और सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से उनकी पूजा करने लगे। उनकी आराधना में ही वे अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत करते थे। उन्होंने कठिन भूमि पर सोने का नियम कर लिया था। चित्त में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं आने देते थे। छठवें पहर में केवल एक बार भोजन करते थे।

इस प्रकार तप करते करते उन्हें एक वर्ष व्यतीत हो गया। उनकी तपस्या से जगन्माता पार्वती बहुत शीघ्र प्रसन्न हो गईं और शिवजी को साथ लेकर राजा के सामने प्रकट हुईं। उनके दर्शनकर राजा ने दोनों को एक साथ भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर कहने लगे कि हे देवि! उस समय मैं आप लोगों के दर्शन कर इतना आनन्द में मग्न हो गया था कि कर्तव्याकर्तव्य का मुझे कुछ भी ध्यान न रहा। मुझे उस समय अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहा। हे महादेवि! मैंने जान बूझ कर आपकी उपेक्षा नहीं की थी। दूसरी बात यह है कि मैंने शिवजी की पूजा की थी उनको प्रणाम किया था। आप तो उनकी आधी देह हैं क्या उनको प्रणाम करने से आपको प्रणाम नहीं हुई? मैं समझता हूं कि शिवजी की पूजा करने से आपकी भी पूजा हो गई। हे करुणामयि! मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिए और ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि भगवान् का दिया हुआ पुत्र दीर्घायु तथा वंश की वृद्धि करने वाला हो। आपकी दया बिना मेरी यह चिर काल की तपस्या व्यर्थ हो जाएगी।

उनके करुण वचन सुन कर पार्वतीजी को दया आ गई और वे कहने लगीं कि हे राजन्! मेरा वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकता। इस लिए तुम्हारे पुत्र की लड़कपन में मृत्यु तो अवश्य होगी। परन्तु मृत्यु का थोड़ा सा ही दुःख तुम्हें दिखा कर वह फिर जीवित हो जाएगा। उसके अनन्तर उसकी आयु बहुत बड़ी होगी और वह वंश की बड़ी वृद्धि करेगा। जितने चक्रवर्ती राजा होंगे उन सब से इसकी कीर्ति बहुत अधिक होगी। धर्म के सम्पूर्ण रहस्य का ज्ञान प्राप्त कर संसार का उद्धार करेगा। दान और यज्ञ करने की ओर इसकी विशेष प्रवृत्ति होगी। इस लिए हे नृप! तुम अपनी राजधानी को जाओ और प्रजा का पालन करो। जैसा मैंने बताया है वैसा पुत्र तुम्हें मिलेगा।

पार्वतीजी के वचन समाप्त होने पर शिवजी ने कहा कि हे नृपश्रेष्ठ! मेरे दर्शन व्यर्थ कभी नहीं होते इस लिए तुम और कुछ वर माँगो।

हरिश्चन्द्र ने कहा कि हे महाराज! आपकी दया से मेरे सब कुछ है केवल एक पुत्र के अभाव से राज्य सूना मालूम पड़ता था वह भी आपके वर से मिल

ही जाएगा। अब मुझे किसी बात की कामना नहीं। आप मुझ पर प्रसन्न हो कर कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे ऐसा वर दीजिए जिसमें मैं राजसूय यज्ञ कर सकूं और उसमें किसी प्रकार का विघ्न न हो। इस प्रकार वर देकर शिवजी पार्वतीसमेत कैलास को चले गए और राजा अपनी राजधानी को चले गए।

इन उमा-महेश्वर की पूजा करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य एक वर्ष तक प्रत्येक पंचमी को शिवजी और पार्वती जी के प्रत्येक अङ्ग की पूजा करेगा उसे वंश के उद्धार करनेवाला सुत प्राप्त होगा। स्कन्दपुराण में इनके पूजन का बड़ा माहात्म्य लिखा है।

यस्ताभ्यां कुरुते पूजां संप्राप्ते पंचमी दिने।
फलैः सर्वेषु गात्रेषु यावत् संवत्सरं द्विजाः॥
सुतं प्राप्नोति सोऽभीष्टं स्ववंशोद्धरणक्षमम् ॥ ४८ ॥

नागरखण्ड ४९ अ०

चौअनवाँ रत्न

महाराज भगीरथ

महाराज सगर के साठ हजार पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म हो गए। सगर के वंश में समुत्पन्न भगीरथ ने गोकर्ण तीर्थ में एक हजार वर्ष तक कठिन तपस्या कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। वे प्रसन्न होकर वर देने के लिए भगीरथ के पास आए और भगीरथ से वर माँगने के लिए कहने लगे।

भगीरथ ने हाथ जोड़ कर कहा कि मेरे पूर्वज इस समय न जाने किस दशा में पड़े हैं उनका उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है। हे देव! आप ऐसा प्रयत्न कीजिए कि गङ्गाजी इस पृथ्वी लोक पर आकर अपने पावन जल से मेरे पूर्वजों का उद्धार करें।

ब्रह्माजी ने कहा कि मैं गङ्गाजी को तो कह सुन कर भूलोक में भेज दूंगा पर उनके प्रवाह के सहने की शक्ति पृथ्वी में नहीं है। इस के लिए शिवजी जब तक कृपा नहीं करेंगे तब तक काम सिद्ध नहीं होगा। वे ही गङ्गाजी के प्रवाह के वेग का सहन कर सकते हैं। इस लिए हे भगीरथ! तुम उन को आराधना करो।

ब्रह्माजी के उपदेश के अनुसार भगीरथ ने शिवजी की आराधना का प्रारम्भ कर दिया। वे अन्न-जल का परित्याग कर पैर के एक अँगूठे पर खड़े होकर एक वर्ष तक भगवान् शङ्कर का ध्यान करते रहे। उनकी अनन्यमनस्कता से प्रसन्न होकर भगवान् उमापति प्रकट हुए और कहने लगे कि हे भक्त! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूं और तुम्हारी कामना-पूर्ति करने आया हूं। मैं गङ्गा को अपनी जटा में रोक लूंगा और इस प्रकार तुम्हारा प्रिय कार्य करूंगा।

गङ्गा जी को अपने वेग का बड़ा गर्व था और उन्हों ने अपने मन में शिवजी को बहाते हुए पाताल में प्रवेश कर जाने का निश्चय किया। वे विशाल रूप धारण कर बड़े दुःसह वेग से शिवजी के मस्तक पर टूट पड़ीं।

शिवजी को उनके अभिमान का पता लग गया इस लिए उन्होंने गङ्गाजी को अपने जटाजूट में ही बाँध रखने का निश्चय कर लिया। गङ्गाजी पूरे वेग से शिवजी की जटा पर गिरीं और उसी में समा गईं। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पृथ्वी पर उतर जाएँ पर किसी प्रकार जटामण्डल से नहीं निकल सकीं। वहीं पर वे कई वर्षों तक चक्कर लगाती रहीं।

भगीरथ को इस बात से बड़ा दुःख हुआ और वे पुनः शिवजी की आराधना करने लगे। शिवजी ने भगीरथ की प्रार्थना पर गङ्गा को अपनी जटा से मुक्त कर दिया। उस समय गङ्गा के सात सोते हो गए। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नाम की तीन धाराएँ पूर्व दिशा की ओर बह पड़ीं। सुचक्षु, सीता और सिन्धु नाम की तीन धाराएं पश्चिम दिशा को निकल चलीं। सातवीं धारा भगीरथ के रथ के पीछे पीछे चली। आगे आगे सुन्दर रथ पर भगीरथ जारहे थे पीछे पीछे भागीरथी गङ्गा जारही थीं। उस धारा के साथ साथ अनेक मत्स्य, कच्छप आदि जलजन्तु भी आए और भूलोक की दुगुनी शोभा बढ़ाने लगे।

अनेक देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध आदि इस अद्भुत दृश्य को देख कर मुग्ध होगए। स्वर्ग में देवता लोग भी आकर इस गङ्गावतरण को देखने लगे। सब लोग उस जल को शिवजी के अंग से निकलते देख बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसका स्पर्श करने लगे। वह गङ्गा की धारा भूलोक के प्राणियों का उद्धार करती हुई रसातल तक चली गई और वहाँ पहुंच भगीरथ के भस्मीभूत पितामहों का उसने उद्धार कर दिया।

वाल्मीकि रामयण बा॰ कां ४२ सर्ग

ही जाएगा। अब मुझे किसी बात की कामना नहीं। आप मुझ पर प्रसन्न हो कर कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे ऐसा वर दीजिए जिसमें मैं राजसूय यज्ञ कर सकूं और उसमें किसी प्रकार का विघ्न न हो। इस प्रकार वर देकर शिवजी पार्वतीसमेत कैलास को चले गए और राजा अपनी राजधानी को चले गए।

इन उमा-महेश्वर की पूजा करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य एक वर्ष तक प्रत्येक पंचमी को शिवजी और पार्वती जी के प्रत्येक अङ्ग की पूजा करेगा उसे वंश के उद्धार करनेवाला सुत प्राप्त होगा। स्कन्दपुराण में इनके पूजन का बड़ा माहात्म्य लिखा है।

यस्ताभ्यां कुरुते पूजां संप्राप्ते पंचमी दिने।
फलैः सर्वेषु गात्रेषु यावत् संवत्सरं द्विजाः॥
सुतं प्राप्नोति सोऽभीष्टं स्ववंशोद्धरणक्षमम् ॥ ४८॥

नागरखण्ड ४९ अ०

चौअनवाँ रत्न

महाराज भगीरथ

महाराज सगर के साठ हजार पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म हो गए। सगर के वंश में समुत्पन्न भगीरथ ने गोकर्ण तीर्थ में एक हजार वर्ष तक कठिन तपस्या कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। वे प्रसन्न होकर वर देने के लिए भगीरथ के पास आए और भगीरथ से वर माँगने के लिए कहने लगे।

भगीरथ ने हाथ जोड़ कर कहा कि मेरे पूर्वज इस समय न जाने किस दशा में पड़े हैं उनका उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है। हे देव! आप ऐसा प्रयत्न कीजिए कि गङ्गाजी इस पृथ्वी लोक पर आकर अपने पावन जल से मेरे पूर्वजों का उद्धार करें।

ब्रह्माजी ने कहा कि मैं गङ्गाजी को तो कह सुन कर भूलोक में भेज दूंगा पर उनके प्रवाह के सहने की शक्ति पृथ्वी में नहीं है। इस के लिए शिवजी जब तक कृपा नहीं करेंगे तब तक काम सिद्ध नहीं होगा। वे ही गङ्गाजी के प्रवाह के वेग का सहन कर सकते हैं। इस लिए हे भगीरथ! तुम उन की आराधना करो।

ब्रह्माजी के उपदेश के अनुसार भगीरथ ने शिवजी की आराधना का प्रारम्भ कर दिया। वे अन्न-जल का परित्याग कर पैर के एक अँगूठे पर खड़े होकर एक वर्ष तक भगवान् शङ्कर का ध्यान करते रहे। उनकी अनन्यमनस्कता से प्रसन्न होकर भगवान् उमापति प्रकट हुए और कहने लगे कि हे भक्त! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूं और तुम्हारी कामना-पूर्ति करने आया हूं। मैं गङ्गा को अपनी जटा में रोक लूंगा और इस प्रकार तुम्हारा प्रिय कार्य करूंगा।

गङ्गा जी को अपने वेग का बड़ा गर्व था और उन्हों ने अपने मन में शिवजी को बहाते हुए पाताल में प्रवेश कर जाने का निश्चय किया। वे विशाल रूप धारण कर बड़े दुःसह वेग से शिवजी के मस्तक पर टूट पड़ीं।

शिवजी को उनके अभिमान का पता लग गया इस लिए उन्होंने गङ्गाजी को अपने जटाजूट में ही बाँध रखने का निश्चय कर लिया। गङ्गाजी पूरे वेग से शिवजी की जटा पर गिरीं और उसी में समा गईं। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पृथ्वी पर उतर जाएँ पर किसी प्रकार जटामण्डल से नहीं निकल सकीं। वहीं पर वे कई वर्षों तक चक्कर लगाती रहीं।

भगीरथ को इस बात से बड़ा दुःख हुआ और वे पुनः शिवजी की आराधना करने लगे। शिवजी ने भगीरथ की प्रार्थना पर गङ्गा को अपनी जटा से मुक्त कर दिया। उस समय गङ्गा के सात सोते हो गए। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नाम की तीन धाराएँ पूर्व दिशा की ओर बह पड़ीं। सुचक्षु, सीता और सिन्धु नाम की तीन धाराएं पश्चिम दिशा को निकल चलीं। सातवीं धारा भगीरथ के रथ के पीछे पीछे चली। आगे आगे सुन्दर रथ पर भगीरथ जारहे थे पीछे पीछे भागीरथी गङ्गा जारही थीं। उस धारा के साथ साथ अनेक मत्स्य, कच्छप आदि जलजन्तु भी आए और भूलोक की दुगुनी शोभा बढ़ाने लगे।

अनेक देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध आदि इस अद्भुत दृश्य को देख कर मुग्ध होगए। स्वर्ग में देवता लोग भी आकर इस गङ्गावतरण को देखने लगे। सब लोग उस जल को शिवजी के अंग से निकलते देख बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसका स्पर्श करने लगे। वह गङ्गा की धारा भूलोक के प्राणियों का उद्धार करती हुई रसातल तक चली गई और वहाँ पहुंच भगीरथ के भस्मीभूत पितामहों का उसने उद्धार कर दिया।

वाल्मीकि रामयण बा० कां ४२ सर्ग

पचपनवाँ रत्न

राजा वेन और वैन्य

क्षीरसागर में शयन करते हुए भगवान् विष्णु के नाभि कमल से सर्वलोक-पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उनके मानस पुत्र मरीचि हुए। महर्षि मरीचि ने कश्यप को उत्पन्न किया। उनसे मनु की उत्पत्ति हुई। मनु के मुख से राजा क्षुत का प्रादुर्भाव हुआ। वे बड़े प्रतापी थे और सागरपर्यन्त पृथ्वी का बड़ी सफलता के साथ पालन करते थे। उनकी पत्नी का नाम भया था। वह काल की लड़की थी इस लिए जैसा उसका नाम था वैसी ही वह थी भी भयावह।

उस भया के गर्भ से वेन की उत्पत्ति हुई। वेन जन्म ही से दुष्ट और अत्याचारी था। लड़कपने से ही वह प्रजा को तंग करने लगा। परमधर्मिष्ठ राजा क्षुत प्रजा के असहनीय कष्ट को न देख सके इस लिए वे राज का परित्याग कर वन को चले गए और भगवान् महेश्वर की आराधना में घोर तप कर आवागमन से रहित स्थान को चले गए।

वेन और भी स्वतन्त्र हो गया और स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी मनमानी करने लगा। वेदों की वह सदा निन्दा किया करता था और उसने डुगडुगिया पिटवा दी थी कि यज्ञ, होम और दान करने वाले व्यक्ति को घोर दण्ड दिया जाएगा। मैं तुम लोगों का पालन करता हूं तुम लोग मेरी ही पूजा किया करो। मुझसे बड़ा संसार में कोई देवता नहीं। मेरी छत्र छाया में तुम लोग सब प्रकार के भोग विलास का परम सुख प्राप्त करो।

इस घोषणा को सुन कर सभी दैवयज्ञ प्रजा को बन्द कर देने पड़े। इसका फल यह हुआ कि यज्ञ में भाग न मिलने से देवता लोग कुपित होगए और उन्होंने वर्षा एक दम रोक दी। अवर्षण के कारण सूखा पड़ गया। लोग भूख-प्यासके मारे व्याकुल हो उठे संसार तप्त हो गया।

ऐसी भयङ्कर दुर्दशा देख ऋषिलोग वेन के सन्निकट गए और उसे समझाने लगे कि संसार की यह दुर्दशा यज्ञ होम आदि के अभाव से हो रही है। इस उपदेश ने आग पर घी का काम किया। वह क्रोध से लाल हो गया और कहने लगा कि नहीं मेरा हुक्म मानना होगा। जो मनुष्य देवता का नाम भी लेगा उसे प्राण दण्ड दिया जाएगा।

इस अपमान को ऋषिलोग सह न सके और अत्यन्त कुपित हो गए। वज्र

के समान शक्ति रखने वाले कुशों से उन्होंने राजा की जीवनकथा समाप्त कर दी और उसके दाहिने हाथ का मन्थन कर उसमें से एक विशालकाय दिव्य-लक्षणलक्षित सुन्दर पुरुष उत्पन्न किया। इन्द्र, वरुण आदि दिक्पालों ने राज-सिंहासन पर वेन के शरीर से उत्पन्न वैन्य का अभिषेक कर दिया।

वैन्य बड़े प्रेम से प्रजा का पालन करने लगे। उनकी प्रजावत्सलता से सब लोग वेन के अत्याचारों को भूल गए। प्रजा को सर्वसुखसम्पन्न एवं धन-धान्य-समृद्ध देख कर वैन्य को बड़ा आनन्द मिलता था। परन्तु उनके मन में पिता की अधोगति की सदा चिन्ता बनी रहती थी। वे सर्वदा उनके उद्धार का उपाय सोचा करते थे।

एक दिन अनेक लोकों में भ्रमण करते हुए देवर्षि नारद राजा के यहाँ पधारे। राजा ने पाद्य, अर्घ्य आदि से उनका स्वागत कर उन्हें उच्च आसन पर बैठा दिया और हाथ जोड़ कर पूछने लगे कि हे महाराज! आप सब लोकों में भ्रमण करते हैं, आप तो अवश्य ही जानते होंगे कि मेरे पिता जी इस समय कहाँ हैं और किस दशा में हैं। पुत्र वही है जो नरक में पड़े हुए पिता का उद्धार करे। इस लिए हे दयानिधे! आप उनके उद्धार का भी उपाय बताइये।

नारद जी ने दिव्य दृष्टि से देख कर कहा कि हे राजन्! आपका पिता म्लेच्छ के घर में उत्पन्न हुआ है और इस समय यक्ष्मा एवं गलित कुष्ठ से दारुण कष्ट पा रहा है। कुष्ठ से उसके प्रत्येक अङ्ग गल गए हैं और वह दिन रात करा-हता हुआ अपने पूर्व जन्म के किए का फल भोग रहा है। हे राजन्! आप जाकर उसे तीर्थों में स्नान कराइये। तीर्थ में स्नान करने से उसके पाप नष्ट हो जाएँगे और दिव्य देह मिल जाएगी।

नारद की आज्ञा के अनुसार राजा उत्तर देश में गए और वहाँ म्लेच्छों की एक झोपड़ी में क्षय और कुष्ठ से पीड़ित एक व्यक्ति को देखा। उसे देख कर वैन्य को बड़ा दुःख हुआ और वे उसे पालकी पर बैठा कर तीर्थ में स्नान कराने को ले चले। वे लोग बहुत जल्दी जल्दी चल कर कुरुक्षेत्र से होते हुए स्थाणु तीर्थ को पहुंच गए। वैन्य ज्यों ही उस तीर्थ में उनको स्नान कराने लगे त्यों ही पवन देवने कहा कि हे राजन्! ऐसा साहस मत करो। इस तीर्थ की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। इसने वेदों की निन्दा कर के बड़ा भारी पातक किया है, इसके स्नान करने से इस तीर्थ का महत्व जाता रहेगा।

साधु के ऐसे वचन सुन कर वैन्य ने कहा कि मेरे पिता जी घोर पाप से युक्त हैं मुझे इस बात का बड़ा दुःख है। देवता लोग जो प्रायश्चित्त बताएँगे उसे करने को मैं तयार हूं।

देवता लोगों ने कहा कि इसने देवताओं की निन्द कर अपना महत्व बढ़ाना चाहा था। ब्राह्मणों ने भी इसका परित्याग कर दिया था। इस लिए यह महा-पातकी है। हे राजन्! तुम तीर्थों में जाकर इन के उद्धार के निमित्त स्नान करो और उन तीर्थों के जल से इनका अभिषेक करो। क्रमशः इनका पाप नष्ट हो जाएगा।

वैन्य ने उसी समय एक आश्रम में अपने पिता के रहने का प्रबन्ध कर दिया और सेवा के लिए अनेक नौकर चाकर रख दिए। स्वयं वे तीर्थयात्राको निकल पड़े। अनेक तीर्थों में वे प्रतिदिन स्नान करने लगे और वहाँ के जल से उनका अभिषेक करने लगे। उस अभिषेक से राजा वेन के पापों का धीरे धीरे विनाश होने लगा।

एक दिन एक कुत्ता सरस्वती में स्नान कर उनके आश्रम में घुस गया और अपने जाति-स्वभाव से अङ्ग फड़फड़ाने लगा। सरस्वती के कण राजा के शरीर पर पड़ गए। उसके प्रभाव से वेन के सभी पाप नष्ट होगए। उसी समय उनके हृदय में सद्बुद्धि उत्पन्न हुई और वे एक शिवलिङ्ग स्थापित कर पूजा करते हुए भगवान् शंकर की स्तुति प्रेम पूर्ण हृदय से करने लगे। चिरकाल तक वे बड़े भक्तिभाव से स्तुति करते रहे।

उनकी स्तुति से परम करुणानिधि भगवान् सदाशिव बड़े प्रसन्न हुए और वेन के सामने प्रकट हुए। उनके अपूर्व दर्शन पाते ही वेन उनके चरणों पर गिर गया। शिवजी ने वेन से कहा कि हे भक्त! मैं तुम्हारे स्तोत्र से बड़ा प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें और क्या वर दूं केवल इतना कहता हूं कि तुम्हारा मेरे साथ सदा निवास होगा। तुम मेरे ही शरीर से उत्पन्न हो कर अन्धक नाम धारण करोगे और देवों को अनेक प्रकार के कष्ट दोगे। उस समय मैं तुम्हारे शरीर को त्रिशूल से छेदकर गिरा दूंगा। तुम मेरे दर्शन पाकर कृतकृत्य हो जाओगे और तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाएँगे। मेरे प्रसाद से तुम भृंगरिटि नाम धारण कर गणाधिप बनोगे और मेरे समीप चिरकाल तक निवास करोगे। तदनन्तर तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी और सायुज्य मुक्ति मिल जाएगी। इतना कह कर शिवजी वहीं अन्तर्धान होगए।

महेश्वर के प्रसाद से राजा वेन के सब रोग दूर हो गए और उनका दिव्य रूप हो गया। जब वैन्य लौट कर आए तो कुटी को शून्य देख कर बड़े विस्मित

हुए। उसी समय दिव्यरूपधारी राजा वेन आकर अपने पुत्र को अनेक धन्यवाद देने लगे और कहने लगे कि हे पुत्र! तुम यथार्थ में मेरे पुत्र हो। तुमने मेरा उद्धार कर दिया। इस घोर योनि से उद्धार कर तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। तुम्हारे लाए हुए तीर्थ जल के अभिषेक से मेरे सब पातक दूर हो गए। अब मैं उस लोक में निवास करूँगा जहाँ भगवान् शङ्कर स्वयं निवास करते हैं।

ऐसा अपने पुत्र से कह कर वेन ने वहीं पर विधिविहित विधान से एक शिवलिङ्ग स्थापित किया और बड़ी भक्ति-श्रद्धा एवं उत्सव-उत्साह के साथ उनका पूजन किया उसी समय स्वर्ग से विमान आया और उस पर चढ़ कर अपने पुत्र की पितृभक्ति को सराहते हुए वे शिवलोक को चले गए।

महाराज वैन्य भी पितृ ऋण से मुक्त होकर कृतकृत्य हो गए। उन्होंने अनेक पुत्र उत्पन्न किए, अनेक यज्ञ किए, पवित्र ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिए। स्वयं अनेक प्रकार के भोग कर तृप्त हो गए। अपने मित्रों के घर धन-धान्य से भर दिए। अपनी रानियों को पूर्णरूप से सन्तुष्ट किया। अन्त में वे अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठा कर कुरुक्षेत्र को चले गए और वहाँ घोर तप कर के परमेश्वर शिव को प्रसन्न किया। उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर उन्होंने अपनी इच्छा से शरीर त्याग दिया और परम पद को पहुंच गए।

स्थाणु नामक महादेव के प्रभाव के श्रवण करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है और परम पद को प्राप्त होता है। वामन पुराण में इनकी पूजा का बड़ा माहात्म्य लिखा है।

एतत्प्रभावं देवस्य स्थाणोर्यः शृणुयान्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ॥ ३५ ॥

वामन पु० ४८ अ०

छप्पनवाँ रत्न

शतशृङ्ग की कन्या बर्करी

महाराज शतशृङ्ग के आठ लड़के हुए और एक लड़की। उस लड़की का सम्पूर्ण शरीर तो बहुत ही सुन्दर था केवल मुख बकरी के ऐसा था। पूर्व जन्म में यह लड़की बकरी ही थी। वह एक दिन इधर उधर घूमती हुई एक लता-जाल में फँस गई। उसका सम्पूर्ण शरीर तो महीसागर संगम नामक पवित्र तीर्थ में गिर गया केवल सिर उसी में लटका रह गया। उस तीर्थ में गिरने के प्रभाव से उसका शरीर तो सर्वाङ्ग सुन्दर हो गया केवल सिर बकरी के समान ही रह गया।

उस का बकरी का सा मुख देख कर उनके माता, पिता आदि को बड़ा दुःख हुआ पर ईश्वर की देन पर किस का जोर चल सकता है। अपने शरीर से उत्पन्न व्यक्ति कितना भी कुरूप क्यों न हो उसका मोह होता ही है। सब लोग उसका बड़े ध्यान से पालन-पोषण करने लगे। धीरे धीरे उसकी युवा अवस्था आगई और उसने कुतूहलवश अपना मुख दर्पण में देखा। पूर्व जन्म के प्रभाव से उसे अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। उसने माता और पिता से कहा कि मेरा आधा शरीर जिस तीर्थ में गिरने से इतना सुन्दर हो गया उसी तीर्थ का सेवन कर मैं अपना मुख भी सुन्दर बनाऊंगी। आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिए। मैं महीसागरसंगम तीर्थ में जाना चाहती हूं। कृपया मुझे वहां भेजवाने की कृपा कीजिए।

राजा ने उसके जाने का सब प्रबन्ध कर दिया और वह जहाज पर चढ़ कर उसी स्थान में पहुंच गई। उसने लताजाल के भीतर फसा हुआ अपना सिर खोज लिया और उसका दाह कर हड्डियाँ उस तीर्थ में फेक दीं। उसी समय उसका मुख इतना सुन्दर और मनोहर हो गया कि जिसका वर्णन करना असम्भव है। न तो वैसा मुख किसी देवकन्या का देखा गया और न किसी नागकन्या का। मानुषियों का ऐसा मुख होना तो असम्भव ही है।

उसी समय उस कन्या ने भगवान् शिव की उपासना प्रारम्भ कर दी और कठिन तप करना आरम्भ कर दिया। आहार और निद्रा का परित्याग कर वह सर्वदा भगवान् आशुतोष का ही ध्यान करती रहती थी। एक वर्ष व्यतीत होने पर देवदेव महेश्वर उसके सामने प्रकट हुए और वर माँगने के लिए

कहने लगे।

वह कुमारी शिवजी के दर्शन पाकर तथा उनके वात्सल्यपूर्ण वचन सुन कर कहने लगी कि हे महाराज! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप यही कृपा कीजिए कि आप का इस स्थान में सदा निवास हो। आपके दर्शनों से संसार का कल्याण हो।

शिवजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और स्वयं कैलास को पधार गए। बर्करी ने विधि विधान से वहाँ पर एक शिवलिंग स्थापित किया और उनका नाम बर्करेश्वर रख दिया।

वहाँ शिवलिङ्ग की स्थापना देख कर महादेव जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुष्ट होकर उन्होंने वर दिया कि जिन मनुष्यों के मृत शरीर का इस पवित्र तीर्थ में दाह होगा और उनकी हड्डियाँ समुद्र में फेंक दी जाएँगी उनकी अक्षय गति होगी। वे चिर काल तक स्वर्ग में निवास कर इस भूलोक में जन्म लेंगे और बड़े प्रतापी राजा होंगे। बर्करेश की जो भक्तिपूर्वक पूजा करेंगे और इस पावन तीर्थ में स्नान करेंगे उनकी अभीष्टसिद्धि होगी।

शिवजी का वर पाकर वह कुमारी अपने पिता के घर गई और उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसका समाचार सुनकर सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। वे सब उस तीर्थ को गए और बर्करेश का दर्शन कर कृतकृत्य हो गए। वहाँ स्नान कर, शिवजी की पूजा कर और अनेक दान देकर वे लोग घर लौटे और अखिल भरत खण्ड के नौ भाग कर एक एक भाग तो अपने आठों पुत्रों को दिया और अवशिष्ट नवम भाग इस कुमारी को दिया। उस खण्ड का नाम कुमारिका खण्ड हो गया। राजा शतशृङ्ग इस प्रकार अपने राज्य का विभाग कर वन में तप करने चले गए और अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए।

स्कन्दपुराण में इन बर्करेश महादेव का बड़ा माहात्म्य लिखा है।:—

बर्करेशं च यो भक्त्या सम्पूजयति मानवः।
स्नात्वार्णवमहीतोये तस्य स्यान्मनसेप्सितम् ॥ १०३ ॥
कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां श्रद्धयान्वितः।
पूजयेद् बर्करेशं यः सर्वपापैः स मुच्यते ॥१०४॥

कौमारिका खण्ड ३९ अ०

सत्तावनवाँ रत्न

राजर्षि ययाति

राजा ययाति ने चिर काल तक आनन्द पूर्वक राज्य किया। प्रजा की भलाई और उन्नति करना ही उनका एक मात्र व्रत था। उनके राज्य में अन्याय का कहीं नाम भी नहीं सुनाई देता था। प्रजा जन को वे अपने पुत्र के समान समझते थे और उनके पालन पोषण का वे पूरा प्रयत्न और प्रबन्ध करते थे। उनके राज्य में शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। प्रजा सब प्रकार से सुखी थी। अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईतियाँ केवल पुस्तकों में लिखी दिखाई देती थीं। आधि-व्याधि से भी किसी को कष्ट हो सकता है इसका किसी को अनुभव भी नहीं था।

चिर काल तक राज्य का पूर्ण सुख भोग उन्होंने अपना राज्य अपने परम प्रतापी और चतुर पुत्र को सौंप दिया और स्वयं अपनी देवयानी और शर्मिष्ठा नाम की दोनों पटरानियों के साथ तपस्या करने के लिए पवित्र तीर्थ खोजने लगे। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ श्रीमार्कण्डेय ऋषि से पूछा कि हे महाराज! आप सर्वज्ञ हैं, आप को इस लोक और पर लोक की सभी बातें अच्छी प्रकार ज्ञात हैं। महाराज! मुझे यह बताइये कि सब तीर्थों में प्रधान कौनसा तीर्थ है और मुझे किस तीर्थ में जाकर तपस्या करनी चाहिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा कि हे राजन्! इस समय तो मुझे चमत्कारपुर नाम का तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ मालूम पड़ता है। उसमें सभी तीर्थों का निवास है। वहाँ पर विष्णुपदी गंगा स्वयं विराजमान हैं और सब प्राणियों के पापों को नाश करने के लिए स्थित हैं। शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी देवता उसमें नित्य निवास करते हैं। दूसरे स्थान में पुण्य कर्म करने से जितना फल वर्ष भर में होता है उतना ही पुण्य इस तीर्थ में एक दिन पुण्य-धर्म करने से होता है। इस लिए हे धर्मात्मन्! तुम वहीं जाकर भगवान् शङ्कर की अनन्य मन से आराधना करो। तुम्हें अनायास सिद्धि प्राप्त होगी।

महर्षि के ऐसे वचन सुन कर अपनी दोनों धर्मपत्नियों को साथ लेकर वे परम पावन क्षेत्र चमत्कार पुर में गए और वहाँ देवदेव भगवान् शङ्कर का शुभ शिवलिंग स्थापित कर अच्छी प्रकार से आराधना करने लगे। षोडश उपचारों से वे नित्य भगवान् की पूजा करते और एक पैर पर खड़े

हो कर निश्चल चित्त से चिर काल तक उनकी स्तुति करते रहते थे। भगवान् का ध्यान तो वे उठते बैठते सोते जागते सदैव करते रहते थे।

इस प्रकार चिर काल तक तपस्या और भगवान् आशुतोष की आराधना करते करते उनका स्वयं पवित्र शरीर और भी पवित्र हो गया और अन्त काल में वे सुन्दर विमान पर आरूढ होकर स्वर्ग को चले गए।

उस शिवलिंग का नाम ययातीश्वर हो गया। ययातीश्वर के दर्शन करने ही से मनुष्य के सब पाप क्षण भर में उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार अग्निकण से तूलराशि। वहाँ पर मनुष्य को अवश्यमेव शुभ कर्म करने चाहिए। थोड़े से ही परिश्रम से वहाँ अनन्त सिद्धि प्राप्त होती है। स्कन्दपुराण में लिखा है:—

यदन्यत्र शुभं कर्म वर्षेणैकेन सिध्यति।
तत्तत्र दिवसेनैव सिद्धिं याति क्षितीश्वर ॥ १० ॥
पवित्राणि च तीर्थानि यानि संति धरातले।
तेषामत्र च सांनिध्यं सर्वदा नृपसत्तम ! ॥ ११ ॥

नागरखण्ड ३९ अ०

अट्ठावनवाँ रत्न

राजर्षि कुवलयाश्व

सूर्यवंश में एक बड़े प्रतापी राजा बृहदश्व थे। उनके सर्वगुण सम्पन्न जगद्विख्यात कुवलयाश्व नाम के पुत्र हुए। उन्हों ने धुन्धु नाम के एक बड़े देवद्रोही महादैत्य को युद्ध में मारकर संसार को उसके अत्याचारों से बचाया था। इसी से उनका नाम संसार भर में धुन्धुमार हो गया।

उन्हों ने चिरकाल तक बड़ी योग्यता और सफलता के साथ राज्य का संचालन किया। प्रजा के लोग उन्हें अपने पिता से बढ़ कर मानते थे और उनके लिए प्राण देने को भी तयार थे। जीवन भर उन्हों ने संसार के सब भोगों का भोग किया। वृद्धावस्था में उन्हें संसार से पूर्ण वैराग्य हो गया और वे अपना राज्यभार अपने सुयोग्य पुत्र को देकर तपस्या करने चले।

वे चमत्कार पुर का माहात्म्य सुन कर वहीं पहुंचे और वहाँ भगवान् शंकर की आराधना करने लगे। उन्हों ने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और उसके मध्य भाग में बहुमूल्य रत्नों की वेदी पर एक विशाल शिवलिङ्ग स्थापित किया। वे पाद्य, अर्घ्य, स्नान, चन्दन आदि से उनकी पूरी सेवा करते और तदनन्तर सुन्दर सुवर्ण पुष्पों से उनका शृङ्गार करते थे। धूप, दीप आदि समर्पण कर उन्हें प्रसन्न करते और भिन्न भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों का भोग लगा कर केवल उनके प्रसाद से ही अपने शरीर की रक्षा करते थे। अवशिष्ट समय में वे पवित्र नामों का स्मरण और भजन करते थे।

इस प्रकार कुछ काल तक आराधना करने पर शिवजी प्रसन्न हुए और कुवलयाश्व के सामने वृषभ पर सवार होकर आए। उनके बगल में जगन्माता पार्वती थीं और पीछे अनेक शिवगण चले आ रहे थे। उनके दर्शन कर राजा के उल्लास का ठिकाना नहीं रहा और वे उनके चरणों पर गिर कर स्तुति करने लगे।

उनकी स्तुति सुन कर शिवजी और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे राजन्! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूं; तुम्हें जो वर माँगना हो माँग लो। दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु भी मैं तुमको इस समय दे सकता हूं।

भगवान् के ऐसे उदार वचन सुन कर राजा कुवलयाश्व ने कहा कि हे महाराज! मुझे तो आपके दर्शनों ही से सब कुछ प्राप्त हो गया। अब मुझे संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसके पाने की अभिलाषा रह गई हो। भगवन्! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मेरे द्वारा संस्थापित इस शिवलिङ्ग में कृपा कर सदा निवास करें। इससे मेरा तो कल्याण होगा ही पर इसके साथ ही साथ इस दुःखमय भवसागर की अनन्त अपरिमित दारुण तरङ्गों में बारम्बार डूबते और उतराते हुए जीवों का भी उद्धार होगा। हे करुणानिधे! इस पुण्य कार्य से मुझे बड़ा सन्तोष होगा।

शिवजी ने राजा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा कि हे प्रिय भक्त! मुझे तुम्हारी यह प्रार्थना बड़ी प्यारी लगी। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। मैं प्रति वर्ष चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को इस लिङ्ग में निवास किया करूँगा और मेरे साथ में पार्वती भी सदा रहा करेंगी। इसमें लेश मात्र भी सन्देह न समझना। यहाँ की बावली में स्नान कर जो मनुष्य मेरी पूजा करेगा वह इस संसार में सब प्रकार के सुख भोग कर अन्त में मेरे लोक को चला जाएगा।

इतना कह कर शिवजी तो अन्तर्धान हो गए और राजा ने वहीं शिवजी की

आराधना में अपना शेष जीवन आनन्द पूर्वक बिता दिया। अन्त काल प्राप्त होने पर वे इस शरीर का परित्याग कर परम पद को प्राप्त हो गए।

धुन्धुमारेश्वर महादेव की आराधना करने का स्वयं महादेवजी ने अपने मुख से बड़ा माहात्म्य बताया है। स्कन्द पुराण में लिखा है कि:—

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां सांनिध्यं नृपसत्तम।
अहं सदा करिष्यामि गौर्या सार्धं न संशयः ॥१३॥
तत्र वाप्यां नरः स्नात्वा यो मां सम्पूजयिष्यति।
लिङ्गेऽस्मिन् संस्थितं भूप ! मम लोकं स यास्यति॥१४॥

नागर खण्ड ३८ अ०

उनसठवाँ रत्न

राजसिंह श्वेत

प्राचीन काल में एक बड़े प्रतापी श्वेत नाम के राजा हो गए हैं। अनेक प्रकार के राजभोग भोगते भोगते उनकी धर्म की ओर प्रवृत्ति हुई। उन्हों ने धर्मविहित रीति से सब काम करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वे पृथ्वी और प्रजा का पालन बड़े प्रेम और न्याय के साथ करने लगे। ब्राह्मणों के तो वे अनन्य भक्त थे। सत्य का पालन करना तो वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। शिव की साङ्गोपाङ्ग पूजा किए बिना वे जल तक ग्रहण नहीं करते थे। उनकी जिह्वा सदा शिव नाम का ही स्मरण करती रहती थी।

उनके शासन काल में आधि-व्याधि किसी को नहीं सताती थी। किसी प्रकार के उपद्रव किसी को दुःख नहीं देते थे। ब्राह्मण लोग तपस्या में ही निरत रहते थे। सभी लोग वर्णाश्रम धर्म के पालन में दृढव्रत थे। किसी को पुत्रमरण का दुःख तो कभी हुआ ही न था। दरिद्रता का वे लोग नाम भी नहीं जानते थे। किसी का कभी किसी ने किसी प्रकार का अपमान किया ही नहीं। तात्पर्य यह कि उसकी समस्त प्रजा सुख और शान्ति के साथ ही समय बिताती थी और किसी प्रकार के दुःख से दुःखित नहीं थी।

शङ्कर की आराधना करते करते राजा का बहुत समय व्यतीत हो गया।

उनकी आयु के अन्तिम दिन सन्निकट आगए। एक दिन वे शिवालय में बैठे भगवान् की आराधना कर रहे थे उसी समय यमराज ने अपने दूत उनके लाने के लिए भेजे। भयङ्कर कालपाश लिए हुए वे लोग वहाँ पहुंचे पर राजा को शिव-ध्यान में मग्न देख उन्हें पकड़ने का साहस नहीं हुआ और वे वहीं खड़े रह गए।

आवश्यकता से अधिक समय व्यतीत होते देख यमराज को आशङ्का हुई और वे स्वयं उसी स्थान में आकर उपस्थित हुए जहाँ राजा श्वेत ध्यान में आसन जमाए बैठे थे और यमदूत हाथ जोड़े खड़े थे।

राजा की शान्त और भस्मविभूषित मूर्ति देख प्रेतराज यमराज भी स्तब्ध हो गए और मूर्ति के समान निश्चल खड़े रह गए।

काल के लिए तो एक क्षण का भी इधर उधर होना कठिन है। वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। समय व्यतीत हुआ जाता था इस लिए काल दौड़ा हुआ आया। तीक्ष्ण खड्ग लिए हुए वह राजा के सिर पर आ धमका।

शिवालय के द्वार पर अपने दूतों समेत यमराज को खड़े देख कर। काल उनसे बोला कि हे धर्मराज! समय बीता जा रहा है, तुम राजा को अभी तक क्यों नहीं लाए। तुम्हारे सब दूत भी उपस्थित हैं फिर भी तुम डरे से प्रतीत होते हो इसका क्या कारण? देखो! देरी मत करो, बहुत शीघ्र सब काम समाप्त होना चाहिए।

यमराज ने कहा कि अब तो मुझे कोई सन्देह नहीं; अब मैं इन राजा का अन्त अवश्य कर दूँगा। हम सब अभी तक त्रिशूली भगवान् रुद्र के डर से मूर्तिवत् खड़े थे और इनको पकड़ने का साहस नहीं होता था।

यमराज के वचन सुन कर काल को बड़ा क्रोध आया और वह तलवार चमकाता हुआ राजा के मारने के लिए मन्दिर में घुस पड़ा। अपने भक्त के ऊपर आक्रमण करते देख उसकी रक्षा के लिए अपने तीसरे नेत्र से काल की ओर शिवजी ताकने लगे।

संसार में ऐसा कौन है जो उनके तीसरे नेत्र की अग्नि को सह सके। उनके ताकते ही समस्त संसार को अकेले भक्षण करने वाला भी काल क्षण भर में भस्म हो गया। राजा का जब ध्यान टूटा तो उन्हें सामने ही काल भस्म होता हुआ दिखाई दिया। पास ही में रुद्र अपना कालाग्निसदृश रूप धारण किए क्रोध से लाल आँखें किए दिखाई पड़े। राजा बहुत व्याकुल हुए और हाथ जोड़ कर शङ्कर भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि हे भगवन् रुद्र! आप सम्पूर्ण जगत्

के स्वामी हैं। आप ही माता, पिता, मित्र, स्वजन आदि सभी हैं। हे भगवन्! यह आप ने क्या किया? यह मेरे सामने कौन जल रहा है? मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं कि यह सब काण्ड किसने किया।

इस प्रकार विनती करते देख शिवजी ने राजा को आश्वासन देते हुए कहा कि हे राजन्! यह काल है तुम्हें समाप्त करने आया था। मैंने इसको जला डाला है। उसी की ज्वालामाला सामने दिखाई देती है। संसार में जितने पापी, अधर्मी और संसार का संहार करने वाले हैं उन्हें मैं सदा नष्ट कर दिया करता हूं।

रुद्र के वचन सुन कर राजा श्वेत ने कहा कि हे महाराज! काल के ही भय से संसार में लोग पुण्य करते हैं। जितने कर्मनिष्ठ हैं, जितने भक्तिपूर्वक देवों की आराधना करते हैं जितने उपासना में अपना समय लगाते हैं, जितने अध्यात्म विद्या का अध्ययन करते हैं वे सब काल के भय से भीत होकर ही करते हैं। वह सम्पूर्ण संसार का भक्षण भी करता है और उसका पालन भी करता है। उसी के भय से सम्पूर्ण संसार की स्थिति सुधरी हुई है अन्यथा पूर्ण अनर्थ हो जाय। इसलिए हे जगन्नाथ! आप इसको पुनः जिला दीजिए। विना काल के संसार का काम चल ही नहीं सकता।

महादेवजी ने अपने भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए काल को फिर जिला दिया और उसका रूप जैसा पहिले था वैसा ही कर दिया। वह लजाता हुआ शिवजी के सामने आया और हाथ जोड़ कर निम्न लिखित स्त्रोत्र से स्तुति करने लगा।

कालान्तक त्रिपुरेश त्रिपुरान्तकर प्रभो।
मदनो हि त्वया देव कृतोऽनङ्गो जगत्पते ॥ १ ॥

दक्षयज्ञविनाशश्च कृतो हि परमाद्भुतः।
कालकूटं दुःप्रसहं सर्वेषां क्षयकृन्महत ॥ २ ॥

ग्रासितं तत्त्वया शम्भो! अन्येषामपि दुर्धरम्।
लिङ्गरूपेण महता व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥ ३ ॥

लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं सर्वैरपि सुरासुरैः।
यस्यान्तं न विदु र्देवा ब्रह्म विष्णुपुरोगमा ॥ ४ ॥

लिङ्गस्य देवदेवस्य महिमानं परस्य च ॥
नमस्ते परमेशाय नमस्ते विश्वमङ्गल ॥ ५ ॥

नमो नमः कारण कारणाय ते नमोनमो मंगलमंगलात्मने ।
ज्ञानात्मने ज्ञानविदां मनीषिणां त्वमादिदेवोऽसि पुमान् पुराणः ॥ ६ ॥
त्वमेव सर्वं जगदेकबन्धो वेदान्तवेद्योऽसि महानुभावः ।
महानुभावैः परिकीर्तनीयस्त्वमेव विश्वेश्वर विश्वमान्यः ॥ ७ ॥
त्वं पासि लुम्पसि जगत्त्रितयं महेश स्त्रस्टासि भूतपतिरेव न कश्चिदन्यः ।

इस प्रकार स्तुति कर काल ने राजा श्वेत से कहा कि हे राजन्! इस संसार में आप से बढ़ कर और कोई मनुष्य नहीं । सम्पूर्ण सचराचर संसार को वश में करने वाले भगवान् महेश्वर को आपने अपने वश में कर लिया। आपने मुझे शङ्कर भगवान् से अभय दिला दिया इससे सम्पूर्ण जगत् को भी जीतने वाला मैं आपके वश में होगया ।

राजा ने मेघगम्भीर वाणी से कहा कि हे काल! आप तो शिवजी के एक रूप ही है। आप ही संसार की स्थिति और संहार के करने वाले हैं। इस लिए आप तो संसार भर के पूज्य हैं। इस प्रकार अनेक स्तोत्रों से स्तुति करते हुए महाकाल और यमराज अपने लोक को चले गए और वहाँ जाकर अपने दूतों से कहने लगे कि हे दूतो! जो मनुष्य भस्म रमाए हों, रुद्राक्ष धारण किए हों, जटाजूट से विभूषित हों और शिवजी को नियम से नमस्कार करते हों उन्हें तुम लोग कभी इस लोक में मत लाना। उनको दूर ही से नमस्कार कर छोड़ देना। जो लोग शिवजी की पूजा करते हैं वे साक्षात् शिव हैं। जो लोग एक भी रुद्राक्ष सिर पर धारण किए हों, ललाट में त्रिपुंड् लगाए हों और पञ्चाक्षर मन्त्र का जप किया करते हों उनका तुम लोग सदा सम्मान करना। जिस देश में, जिस राज्य में और जिस ग्राम में शिवभक्त न दिखाई दे उसे स्मशान से भी बढ़ कर समझना, वहां के लोगों का तुम यथेच्छ शासन करना । सब दूतों ने नम्र सिर से उनकी आज्ञा मान ली और उन्हीं के कथनानुसार कार्य करने का निश्चय कर लिया ।

शिवजी ने राजा श्वेत को अभय दिया और अनेक वर देकर अन्तर्धान होगए। उनका वर पा कर राजा श्वेत वहीं भगवान् की आराधना करने लगे। समय आने पर उन्हें सायुज्य मुक्ति मिल गई और वे परम पद को प्राप्त हो गए।

भगवान् शङ्कर संसार भर के भरण पोषण करने वाले हैं। सदैव जगत् का कल्याण करते हैं। संसार भर के दुष्टों का दमन करके वे इस संसार की

स्थिति सुधारे रहते हैं। स्कन्द पुराण में लिखा है:—

एवंविधो यो भुवनैकभर्ता सदाशिवो लोकगुरुः स एकः ॥
दाता प्रहर्ता निजभावयुक्तः सनातनोऽयं जगेदकबन्धुः ॥८८॥

माहेश्वर खं० केदार खं० ३२ अ०

साठवाँ रत्न

महाराज भरत

भरत नाम के एक बड़े प्रसिद्ध राजा हो गए हैं। आज तक अनेक प्रतापी चक्रवर्ती भूपाल इस देश का अखण्ड शासन कर गए पर किसी के नाम पर देश का नाम नहीं रक्खा गया। केवल इन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ।

उनके शासन से प्रजा बहुत सन्तुष्ट थी। सभी लोग उनको अपने पिता से भी अधिक मानते थे और उनके लिए प्राण देने को भी तयार रहते थे। उन्हें संसार के सभी सुख अनायास प्राप्त थे। किसी प्रकार के दुःख का वे नाम भी नहीं जानते थे। परन्तु ये सब सुख उन्हें फीके जान पड़ते थे। उनके घर का दीपक नहीं था। भविष्य एक दम अन्धकार में था। इस विशाल भारत वर्ष के साम्राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं दिखाई देता था। उन के एक भी पुत्र नहीं था। उन की रानियाँ सर्वदा पुत्र न होने के कारण चिन्ता में पड़ी रहती थीं।

अन्त में उन्होंने महर्षियों से इसका उपाय पूछा। उन्होंने विचार कर कहा कि हे राजन्! महेश्वर की आराधना से बढ़कर संसार में पुत्र प्राप्ति का और कोई सरल उपाय नहीं। आप उन्हीं की आराधना कीजिए। उनकी आराधना से परम दुर्लभ वस्तु भी सुलभ हो जाती है॥

महर्षियों के उपदेश के अनुसार उन्होंने प्रभास क्षेत्र में जाकर एक सर्वाङ्ग-सुन्दर शिवलिङ्ग स्थापित किया और षोडश उपचारों से उनकी पूजा करने लगे। वे भगवान् का ही एकाग्र चित्त से ध्यान किया किया करते थे। भगवच्चरण चिन्तन ही उनका एकमात्र व्यापार था। इस प्रकार भगवान् की आराधना करते करते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गए।

अन्त में भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और महाराज भरत के द्वारा संस्थापित लिङ्ग में से प्रकट हुए। उनके दर्शन पाकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और स्तुति

करने लगे। उनकी स्तुति से महादेवजी और भी अधिक सन्तुष्ट हुए और वर माँगने के लिए कहने लगे।

राजा ने हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहा कि हे महेश्वर! आप तो सर्वान्तर्यामी हैं, सबके हृदय की बात जानते हैं। भगवन्! पुत्ररहित घर भूतों का सा घर जान पड़ता है। पुत्ररहित मनुष्य के पितरों का उद्धार नहीं होता। पुत्र उत्पन्न किए बिना मनुष्य पितृ ऋण से मुक्त नहीं होता। इस लिए हे भगवन्! पुत्र प्राप्ति का वर देकर मेरे घर का अन्धकार दूर कीजिए।

राजा के ऐसे करुण वचन सुन कर शिवजी ने वर दिया कि हे राजन्! आठ बड़े प्रतापी पुत्र और एक परम सुन्दरी कन्या शीघ्र ही तुम्हारे घर में जन्म लेकर तुम्हारी चिन्ता को दूर कर देंगे। इतना कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गए।

महाराज भरत उनका वर पाकर कृतकृत्य हो गए और अपनी राजधानी में जा कर राज्य का सुख भोगने लगे। थोड़े ही समय के अनन्तर उनके क्रमशः आठ सर्व लक्षण सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए और एक चन्द्रमा के समान शीतल कान्तिवाली कन्या उत्पन्न हुई। अवशिष्ट जीवन में उन्होंने छप्पन अश्वमेध यज्ञ गङ्गातट पर किए और तीस यमुना के पावन कूल पर किए। चिरकाल तक अनेक सुख भोग अन्त में भगवान् शंकर की आराधना के प्रभाव से स्वर्गलोक को चले गए और देवों के समान सुख भोगने लगे।

महाराज भरत द्वारा प्रतिष्ठित भरतेश्वरजी के जो मनुष्य दर्शन करेगा उसे सब यज्ञ और सब दान करने का पुण्य प्राप्त होगा। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन जो नर इनके दर्शन करेगा उसे स्वप्न में भी नरक के दर्शन न करने पड़ेंगे। स्कन्दपुराण में इनके पूजन का बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

यस्तत् प्रतिष्ठितं लिङ्गं भारतं पूजयिष्यति।
स सर्वयज्ञदानानां फलं प्रापयिता ध्रुवम्॥ १४॥
कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यस्तं पश्यति मानवः।
न स पश्यति स्वप्नेपि नरकं घोरदारुणम्॥ १५॥

प्रभास खण्ड प्र० क्षे०मा० ७२ अ०

इकसठवाँ रत्न

महाराज वसुसेन और सत्यसेन

प्राचीन काल में वसुसेन नामक एक आनर्त देश के राजा थे। वे बड़े ही ऐश्वर्य सम्पन्न थे। उनके यहाँ हाथी घोड़े और रथ आदि कितने यान थे उनकी कोई गणना नहीं कर सकता था। शत्रुओं का उन्हों ने कभी नाम भी नहीं सुना था। दान करने में और भोग करने में वे अपने धनका समान रूप से व्यय करते थे। इन्द्रियों को वश में रखना तो वे ही जानते थे।

संक्रान्ति, व्यतीपात, सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण आदि पर्व कालों में सत्पात्र ब्राह्मणों को इन्द्रनील, महानील, विद्रुम, स्फटिक, माणिक्य, मुक्ता, हाथी, घोड़ा रथ और सुन्दर वस्त्र देकर अत्यन्त प्रसन्न कर देते थे। परन्तु अन्न और जल को अल्पमूल्य एवं सुलभ वस्तु समझ कर वे कभी किसी को नहीं देते थे।

इस प्रकार दान पुण्य करते हुए तथा चिरकाल तक अनेक प्रकार के राज्य-सुख भोगते हुए वे पूर्णायु बिता कर स्वर्ग को पधारे। अनेक अप्सराओं और गन्धर्वों से घिरे हुए सुन्दर विमान पर अरूढ़ हो कर सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहिने हुए वे भिन्न भिन्न लोकों में भ्रमण करते रहते थे परन्तु खाने पीने के लिए कुछ भी नहीं मिलता था।

एकदिन भूख प्यास से तड़पते हुए वे देवराज इन्द्र के यहाँ पहुंचे और बहुत लज्जित होते हुए कहने लगे कि हे भगवन्! इस स्वर्ग पुरी में मेरे सिवा और कोई भी भूखा प्यासा नहीं दिखाई देता। हे महाराज! मेरे लिए तो यह स्वर्ग नरक से भी अधिक कष्ट देने वाला दिखाई देता है। इन भूषणों, वस्त्रों और विमान आदि से मुझे क्या लाभ? क्षुधा के मारे यह स्वर्ग मुझे अग्न्यागार के समान दिखाई देता है। हे देवराज! मेरे ऊपर या तो ऐसी कृपा कीजिए जिसमें मुझे यह दारुण कष्ट न उठाना पड़े या मुझे रौरव नरक में ढकेल दीजिए।

इन्द्र ने कहा कि हे राजन्, तुम नरक के योग्य नहीं हो, तुमने असंख्य दान दिए हैं पर अन्न और जल का दान कभी नहीं किया। इसीसे तुम स्वर्ग के अन्य सब सुख भोगते हुए भी क्षुधार्दित रहते हो। यदि तुम्हारा कोई पुत्र तुम्हारे लिए प्रति दिन अन्न और जल का दान दे तो तुम्हारा यह कष्ट दूर हो सकता है। तुम्हारा पुत्र भी इस समय तुम्हारे समान ही अनेक रत्नों का दान करता है परन्तु कभी अन्नदान और जलदान नहीं करता। यदि वह तुम्हारे नाम पर अन्न और जल का दान करे तो तुम्हारा दुःख दूर हो सकता है।

इस प्रकार इन्द्र में और वसुसेन में वार्तालाप हो ही रहा था कि इतने में देवर्षि नारद ने आकर दर्शन दिए। इन्द्र ने उनका बड़ा स्वागत किया और आने का कारण पूछने लगे। उन्होंने कहा कि केवल तीर्थ यात्रा करता हुआ मैं ब्रह्म लोक से आ रहा हूं और भूलोक को जा रहा हूं।

नारद के वचन सुन राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे नारद जी से हाथ जोड़ कर कहने लगे कि हे महाराज! मेरा लड़का सत्यसेन आनर्त देश में राज्य कर रहा है। उससे जाकर कृपया कह दीजिएगा कि तुम्हारा पिता स्वर्ग में बैठा हुआ भूख और प्यास से मरा जा रहा है यदि तुम सच्चे पुत्र हो तो अन्न और जल का भरपूर दान अपने पिता के सन्तोष और तृप्ति के निमित्त करो।

उनकी प्रार्थना के अनुसार नारद जी राजा सत्यसेन के समीप गए और वसुसेन का सन्देश उन्हें सुना दिया। उसे सुन कर सत्यसेन को बड़ा दुःख हुआ और वह शोक से व्याकुल हो उठा। उसने उसी दिन से प्रति दिन एक सहस्र ब्राह्मणों का भोजन कराना आरम्भ कर दिया। जल पिलाने के लिए पौसरे बैठा दिए। इस प्रकार वह थोड़े ही दिन अन्नदान और जलदान करने पाया था कि इतने में भयंकर अनावृष्टि प्रारम्भ हो गई। बारह वर्षों तक आकाश से एक बूँद तक नहीं गिरी। पृथ्वी में न तो कहीं अन्न था और न कहीं जल। बिचारा राजा कुछ भी दान नहीं कर सकता था।

राजा वसुसेन ने अपने पुत्र को स्वप्न दिया और कहा कि हे पुत्र! तुम्हारे रहते हुए मैं भूख और प्यास से मरूँ यह क्या तुम्हें अच्छा लगता है? तुम मेरे निमित्त जल का और अन्न का दान कर मेरी रक्षा करो।

स्वप्न देख कर राजा को बड़ा दुःख हुआ। अन्न तो था नहीं जिसका वह दान करता। उसे कुछ उपाय ही नहीं सूझता था। अन्त में अपने मन्त्रियों की सलाह लेकर उसने भगवान् शङ्कर की आराधना करने का निश्चय किया।

वे अपने मन्त्रियों को राज्य के संचालन का भार सौंप कर हाटकेश्वर क्षेत्र में तपस्या करने चले गए। वहाँ उन्होंने एक सर्व लक्षण सुन्दर शिवलिङ्ग स्थापित किया और षोडशोपचारों से उनकी पूजा करते हुए आराधना करने लगे। उनकी तपस्या से आशुतोष भगवान् साल ही भर में प्रसन्न हो गए और उनके सामने आकर प्रकट हुए शिवजी ने कहा कि हे भक्त! मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हूं वर माँगो। राजा ने कहा कि हे महाराज! मैंने अपने पिता की तृप्ति के लिए अन्न की अभिलाषा से आपकी आराधना की

है। भगवन्! मुझे पूर्ण अन्न देकर कृतार्थ कीजिए। संसार में अनावृष्टि से बड़ा कष्ट हो रहा है। लोगोँ को न तो खाने को अन्न मिल रहा है और न पीने को जल। समस्त पृथ्वी तप्त हो रही है। दयानिधे! अब इस अवर्षण का अन्त कीजिए और पानी बरसा कर संसार का ताप शान्त कीजिए। हे दीनवत्सल! ऐसी कृपा कीजिए जिसमें मेरे स्वर्गीय पिता जी की अक्षय तृप्ति हो।

महादेव जी ने कहा कि हे राजन्! कुछ ही काल के अनन्तर पूर्ण वृष्टि होगी और सम्पूर्ण संसार सुखमय हो जाएगा। सब प्रकार के अन्नों से वसुधा भर जाएगी। हे राजन्! तुम अपनी राजधानी को जाओ और राज्य का सुचारु रूप से पालन करो। अपने पिताजी की चिन्ता छोड़ दो, अब उन्हें मेरे प्रसाद से भूख और प्यास कभी नहीं सताएगी। अन्य देवोँ के समान ही तुम अब स्वर्ग का अनुपम सुख भोगोगे।

जो व्यक्ति प्रातःकाल उठ कर इस लिङ्ग के दर्शन करेगा वह अमृत के समान स्वादिष्ट भोजन पाएगा। उसको जन्म जन्म में भोजन का सब प्रकार का सुख सदा प्राप्त होगा। ऐसा कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गए और राजा बड़े हर्ष से प्रफुल्लित होते अपनी राजधानी को चले गए और अकंटक राज्य करने लगे। उनके पिता की अक्षय तृप्ति हो गई और वे बड़े सुख से स्वर्ग के भोग भोगने लगे।

उसी दिन से उन शिवजी का नाम मिष्टान्नदेश्वर हो गया। इनके दर्शन करने का स्कन्दपुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

अद्यापि कलिकालेऽत्र सम्प्राप्ते दारुणे युगे।
यस्तं मिष्टान्नदं पश्येत् प्रातरुत्थाय भक्तितः॥ ५८॥
स मिष्टान्नमवाप्नोति यदि कामयते द्विजाः।
निष्कामो वा समभ्येति स्थानं देवस्य शूलिनः॥ ५९॥

नागरखण्ड १४१ अ०



पुस्तक मिलने का ठिकाना—

(१) रामचन्द्र गौरीशंकर,
गोरखपुर।

(२) रामचन्द्र गौरीशंकर,
महल्ला नन्दन साहु, बनारस सिटी।

(३) चौखम्बा संस्कृत सीरिज,
बनारस सिटी।

